रूस का आर्थिक विकास

[Economic Development of Russia]

डा० राजकुमार अग्रवाल,
डी० फिल० [इलाहाबाद],
कामर्स विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ।

कि ता ब म ह ल, इ ला हा बा द
बम्बई : दिल्ली · कलकत्ता . भोपाल हैदराबाद : जयपुर
१९६०

श्रद्धेय माता-पिता

को

सादर समर्पित

भूमिका

रूस का इतिहास, संसार के अन्य देशों की तरह जनता, परम्परा, प्रथा तथा संस्था का इतिहास नही है। इसकी उत्पत्ति और विकास के केवल दो श्रोत थे— राजा और पादरी। शक्ति का प्रतीक राजा था, आस्था का केन्द्र पादरी। समाजवाद आने के बाद इनका स्थान शासक और कम्युनिस्ट पार्टी ने ग्रहण कर लिया। आर्थिक विकास को समझने के लिये इनके बारे में जानना आवश्यक हो जाता है। यह वस्तुतः सत्य है कि रूसी आर्थिक कार्य प्रणाली और विचारधारा की जडे युद्ध और दास प्रथा में दिखलाई पडती है। आदिकाल से ही युद्ध के केन्द्र-बिन्दु पर रूस के आर्थिक तथा राजनैतिक ढाँचे की रचना हुई। एशिया और योरप के बीच पहाड़-सा अटल खडा रह कर इस देश ने विभिन्न एशियाई जातियों के हमले सहन किये। विध्वसकारी बर्बर शक्तियाँ अधिकतर रूस मे ही विलीन हो जाती अथवा अत्यन्त क्षीण होकर आगे बढ़ती। पश्चिमी योरप के शान्तिपूर्ण विकास का यह भी एक कारण था। युद्ध का रूसी विचारधारा पर सदा से ही अत्यन्त गहरा प्रभाव पडता आया है। देश का सामाजिक पुनर्सङ्गठन या तो पराजय से दुबारा उठने का प्रयत्न था, या अधिक शक्तिशाली बन कर दूसरों को जय करने की इच्छा। जब महान् पीटर नर्वा के युद्ध मे स्वीडेन से हारा तब सेना और समाज की नई नींव पडी। नैपोलियन के आक्रमण ने रूस को योरोपीय राजनीति का खिलाडी बना दिया। क्रीमिया में इङ्गलैंड और फ्रांस से पराजित होने पर दास मुक्ति व शासन सुधार का जन्म हुआ। 1905 की रूसी क्रान्ति का प्रमुख कारण था जापान के हाथो देश की करारी हार। प्रथम विश्व युद्ध और इन सब बातों ने मिल कर 1917 के राज्यक्रान्ति की भूमिका तैयार की जिसके विस्तार से आधुनिक रूस का निर्माण हुआ।

अनेको जातियों का मिश्रण होने से रूसी रक्त मे कुछ विलक्षण गुण उत्पन्न हुए। धर्म पर आस्था और अपने सम्राट पर अटूट श्रद्धा इनके शक्ति का रहस्य था। अपूर्व त्याग, आश्चर्यजनक सहनशक्ति, शारीरिक बल और चमत्कारी साहित्यकारों की प्रेरणा की सहायता से देश ने हर कठिनाई पर विजय पाई तथा हर पराजय के बाद दुगुने जोश से पुनर्निर्माण किया।

एकतंत्रात्मक जारशाही के अत्याचार और दास प्रथा के भयंकर त्रास ने रूसी जनता के लिए राजकीय दमन तथा सामाजिक शोषण स्वाभाविक-सा बना दिया। प्रत्येक देश के इतिहास ने कभी न कभी अपने मार्ग को बदला। किन्तु रूसी इतिहास राजकीय

दमन, कठोर अनुशासन एव जनता के मौन त्याग के मार्ग पर नियत गति से चलता आ रहा है । रूपान्तर हुए, परिवर्तन नहीं । चित्र का रङ्ग बदला, पृष्ठ-भूमि वही बनी रही ।

रूस का आर्थिक इतिहास एक रोचक एवं शिक्षाप्रद अध्ययन है। हर अविकसित अथवा कम विकसित देश के लिए इसमे अनेकों लाभपूर्ण संकेत तथा सदेश मिलते है। राजनैतिक मतभेद चाहे कितना ही गहरा क्यों न हो, प्रगति के क्षेत्र में रूसी अनुभव व प्रदेश के महत्व मे कोई अन्तर नही पड़ता।

जहाँ तक सम्भव हो सका वर्तमान अध्ययन में प्रयुक्त आँकड़ों को रूस के सरकारी सूत्रों से ही लिया गया है। अनेकों स्थान पर प्रोफेसर क्लूशेवस्की, लाइशेन्को, मेवर, वेब, हूवर, श्वार्ट्ज तथा डौब की छाया मिलने पर कोई आश्चर्य न होना चाहिये। इन उद्भट विद्वानो के प्रयास से ही रूस का आर्थिक इतिहास ससार के सामने सविस्तार आया।

यह अध्ययन रूसी इतिहास को हिन्दी मे प्रस्तुत करने का एक प्रयत्न है। इसकी प्रेरणा डा० एम० एम० मेहता, डाइरेक्टर आफ स्टैटिस्टिक्स, मध्य प्रदेश सरकार, से मिली, जिनसे इस विषय को पढ़ने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। मेरे विभागाध्यक्ष तथा प्रोफेसर, डा० अमर नारायण अग्रवाल, की कृपा और प्रोत्साहन से यह कार्य सम्भव हो सका। मेरे गुरु एव सुहृद् सहयोगी वाणिज्य विभाग के श्री डी० एन० एलहंस, तथा अर्थशास्त्र विभाग के श्री महेश चन्द के सक्रिय योगदान का यह प्रभाव है। मै इनका आभारी हूँ। उन सभी व्यक्तियों का मै कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रारूप की तैयारी तथा अन्य सम्बन्धित कार्यों मे सहायता किया।

कामर्स विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
नव वर्ष, 1960,

राजकुमार अग्रवाल

अनुक्रमणिका

विषय-विस्तार

प्रथम भाग

कृषि—व्यक्तिवाद का प्रसार—आबादी का भार—पुनर्बंटवारा—मीर का टूटना—किसानों के खेत—वैल्यूयेव कमीशन—बकाया कर मे अपार वृद्धि, **कृषि उत्पादन**—उत्पादन का विकास—कुलक वर्ग का उदय—कृषक भूमि बैंक—भू-स्वामियों के खेत—भूमि-स्वामित्व में परिवर्तन—अन्तर्राष्ट्रीय मन्दी—व्यापारिक कृषक—विस्तृत असन्तोष—व्यापारिक-पूँजीवादी कृषि मे प्रसार; **पीटर स्तोलाइपिन के कृषि सुधार**—जमीन की भूख—व्यक्तिगत स्वामित्व—मीर के अधिकारों मे कमी—जारशाही को सहारा—असफल प्रयोग—शोषण बढा—मजदूर वर्ग का निर्माण—1914 मे सुधार स्थगित; प्रथम महायुद्ध का प्रभाव- श्रम, उत्पादन, मशीन की कमी—अन्न-संकट—मुद्रा-स्फीति ।

[2] **रूसी उद्योग** [1861-1917] : सामन्त उत्पादन का पतन—व्यापारिक पूँजीपति—पूँजी-प्रधान कारखानों का उदय—भूमि से स्वतन्त्र मजदूर वर्ग—कुटीर उद्योग का पतन—सन्तोषजनक उत्पादन कृषि—मजदूरों की शोचनीय दशा—संयुक्त पूँजी कम्पनी—उत्पादन संस्था के आकार की वृद्धि—एकाधिकार तथा सयुक्तिकरण—1910-1913 की तीव्र प्रगति ।

द्वितीय भाग

ध्याय 6. राज्य क्रान्ति 73

[1] **क्रांति के समय आर्थिक स्थिति** . प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव, **वित्त-व्यवस्था**—मद्य-निषेध—अप्रत्यक्ष कर—मुद्रा-स्फीति का सहारा—विदेशी ऋण, **उद्योग**—विदेशों पर निर्भरता—राज्य की अयोग्यता—कोयले की कमी—1916 के बाद व्यापक विनाश; **कृषि**—राजकीय उदासीनता—अनिश्चित नीति—किसानों की सेवा मे भर्ती—पशुओं की कमी—अन्न की कमी—अकाल की स्थिति - केन्द्रीय निर्देशन का अभाव—किसानों की दयनीय दशा; **श्रमिक**—बेकारी—मूल्य-वृद्धि—राजनैतिक प्रचार ।

[2] **राज्य क्रांति : कारण**—1861 के सुधार—प्रथम ड्यूमा—निकोलस द्वितीय की दुर्बलता—प्रतिनिधि शासन—प्रथम विश्व युद्ध—जार द्वारा सिहासन त्याग—लेनिन—केरेन्स्की सरकार का पतन—बोल्शविक पार्टी की जिम्मेदारी—'शान्ति तथा सोवियत'—भूमि का बॅटवारा—राष्ट्रीयकरण—मजदूरों द्वारा औद्योगिक प्रबन्ध—वैतनिक श्रम वर्जित ।

[3] **राज्य क्रांति का प्रभाव** : अनुशासनहीनता निरर्थक विध्वंस—आर्थिक अधोगति—मुद्रा-स्फीति—व्यापारिक बैंकों तथा पूँजी का राष्ट्रीय-

रूप—मार्क्सवाद का उदय—बी० जी० प्लेखानोव—रूसी समाजवादी प्रजातंत्रात्मक मजदूरदल [Russian Soviet Democratic Labour Party]—बोलशेविक तथा मेनशेविक—सामाजिक क्रान्तिकारी दल—1905 की क्रान्ति—रविवार का रक्तपात—वैधानिक सुविधा और ड्यूमा।

[3] **लेनिनवाद अथवा बोलशेविकवाद** : मार्क्स के सिद्धान्तों का व्यवहारिक रूप—क्रियात्मक दृष्टिकोण—उत्कृष्ट अवसरवादिता—औद्योगीकरण और समुदायिक खेती, स्तालिनवाद—अन्तर्राष्ट्रीय वर्ग संघर्ष का परित्याग—प्रबल राष्ट्रीयता—औद्योगीकरण तथा अस्त्रीकरण—कठोरता की नीति—एक वर्ग का समाज।

[4] **पूँजीवाद तथा समाजवाद** : समाजवाद की श्रेष्ठता—पूर्ण आर्थिक साधन और श्रम का प्रयोग—सामाजिक आवश्यकता पूर्ति—उत्पादन की अव्यवस्था का अन्त—सामयिक संकट का नाश—श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि—निरर्थक प्रतिस्पर्धा का परित्याग—उत्पादन के साधनों का उत्पादन—समय की बचत—"जो काम नही करेगा वह खाना नहीं खायेगा"—माँग और पूर्ति की जगह सामाजिक आवश्यकता का सिद्धान्त—व्यक्तिगत प्रेरक—प्रतिस्पर्धा।

[5] **समाजवाद और साम्यवाद** : सोवियत रूस का इस सम्बन्ध में नया प्रयत्न—राज्य सम्पत्ति और सामुदायिक फार्म की सम्पत्ति का विलयन—अविभाजनीय कोष तथा निजी जमीन का त्याग—मजदूर और किसान का एक वर्ग—पूर्ण यन्त्रीकरण—बुद्धिजीवी और श्रमजीवी का भेद मिटाना—न्यूनतम और अधिकतम वेतन मे समानता का प्रयत्न—वस्तु तथा मुद्रा सम्बन्ध—वैज्ञानिक प्रवृत्ति तथा दृष्टिकोण—सर्वव्यापी राज्य स्वामित्व—समाजवादी प्रजातंत्र का आदर्श—अस्पष्ट तथा अपूर्ण।

[1] **आयोजन प्रणाली** : पूँजीवादी व्यवस्था की कमजोरियो को दूर करने का प्रयत्न—आयोजन की परिभाषा—व्यापक संतुलन—उत्पादन के साधनों का सामुदायिक स्वामित्व—निजी सम्पत्ति का उन्मूलन—व्यक्तिगत सम्पत्ति का स्थान—सामुदायिक निर्णय तथा संचालन—राजकीय योजना आयोग—योजना समाज का पवित्र कर्तव्य—उपभोक्ताओं की रुचि, स्वार्थ संघर्ष का परित्याग—प्रमापीकरण—निर्धारित प्राथमिकताएँ—उपभोग तथा उत्पादन उद्योग—कृषि तथा उद्योग—शक्ति संचय, औद्योगीकरण, समाजवादी

सगठन का उद्देश्य: **समाजवादी उत्पादन प्रणाली**—प्रतिस्पर्धा—समाजवादी प्रतिस्पर्धा—प्रेरणा—आर्थिक, व्यक्तिगत प्रभाव, सामाजिक सम्मान—लाभ—बाजार की प्रणाली—लाभ का नया अर्थ [Use value]—पूँजी—महत्व मे कमी—यन्त्र कौशल और प्रबन्ध का उत्कर्ष—अनुदान—बेकार करना तथा ह्रास—मूल्य निर्धारण—समाजवादी अर्थ के नियम—व्यापार—केवल वितरण का साधन; **सोवियत योजना प्रणाली मे नई धाराएँ**—केन्द्रीकरण—आर्थिक समितियाँ—दीर्घकालीन आयोजन—योजना का नया संगठन—क्षेत्रीय विशिष्टीकरण तथा प्रमापीकरण।

[2] **संगठन तथा प्रबन्ध** [I] **योजना संगठन :** उच्चतम आर्थिक समिति—राज्यकीय योजना आयोग अथवा गौस प्लान—इसका कार्य क्षेत्र—राज्य तथा क्षेत्रीय योजना समितियाँ—संघीय, प्रजातत्र राज्य और स्थानीय महत्व के उद्योग—जनवरी 1948 का पुनर्संगठन—1951 का परिवर्तन—योजनाओं का परिवर्तनशील स्वभाव,

[II] **औद्योगिक उत्पादन संगठन तथा प्रबन्ध :** औद्योगिक व्यवस्था की विशेषताएँ—अनुशासन शक्ति—राज्य शक्ति का पूर्ण केन्द्रीयकरण—कठोर आधिपत्य—विशेषाधिकार प्राप्त छोटा-सा समूह—कार्य क्षेत्र जीवन है, जीवकोपार्जन का साधन नहीं—सैद्धान्तीकरण—व्यक्तिवादी विचारों का समूल विनाश—बहुसूत्रीय प्रबन्ध व्यवस्था—अत्यन्त जटिल सचालन सगठन—1934 का प्रबन्ध सुधार—एक व्यक्ति प्रबन्ध, निर्णय की स्वतंत्रता, बाहरी हस्तक्षेप मे कमी, उत्पादन का क्षेत्रीय संचालन अर्थात् केन्द्रीय औद्योगिक प्रबन्ध समिति, प्रत्येक कारखाना एक स्वतंत्र आर्थिक इकाई; **सोवियत कारखाना संगठन**—त्रिसूत्री प्रबन्ध व्यवस्था—कारखाना प्रबन्धक—कारखाना साम्यवादी दल सगठन—कारखाना श्रमिक संघ समिति, अपूर्ण निर्माण कार्य—उत्पादन संगठन का गभीर असतुलन—विशाल अपव्यय—अनावश्यक देरी—इसके कारण,

[III] **कृषि उत्पादन संगठन तथा प्रबंध :** कृषक और राजनीति के आधार—सामुदायिक संगठन—किसानो के त्याग से औद्योगीकरण, **कृषि संगठन**—तोज—आरटेल—कम्यून—सामुदायिक फार्म या कोलखोज—राजकीय फार्म या सोवखोज—मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन, **कोलखोज**—विशेषताएँ—उद्देश्य—भूमि—उत्पादन के साधन—सदस्यता—भूमि तथा पशु के उत्पादन का प्रयोग—वार्षिक आय का बँटवारा—सगठन—ब्रिगेड तथा ज्वीनो—1950 की नीति—भुगतान—कार्य-दिवस का काल्पनिक

की दशा सुधार—नवीन आर्थिक नीति का पुनर्संगठन—विकास का औद्योगिक ढाँचा—कृषि का समूल परिवर्तन—विकास का किसानों पर बोझ—किसान-मजदूर सहयोग का अन्त—सचालित एव असतुलित लक्ष्य पूर्ति; कृषि—पूँजीवादी प्रवृत्ति का उन्मूलन—व्यक्तिगत स्वामित्व—प्रथा—अन्य स्वतन्त्रताएँ—बडी कृषि इकाइयाँ—सामुदायिक खेती—कुलक वर्ग का विनाश—कृषि का यन्त्रीकरण—किसानों द्वारा विरोध—"सफलता का उन्माद" [Dizzy with Success]—नवीनतम आर्थिक नीति (Newest Economic Policy)—प्रभाव - व्यापक पशु-बध—1931-32 का अकाल—स्तालिन क्रान्ति; पूँजीनिर्माण—पूँजी विनियोग की मात्रा—30·1% बचत—विनियोग का अर्थव्यवस्था मे वितरण—उद्योग—शक्ति—यातायात—कृषि—राजकीय क्षेत्र—सामुदायिक क्षेत्र—व्यक्तिगत क्षेत्र· उद्योग—आर्थिक आत्म-निर्भरता—सैनिक शक्ति—उत्पादन वृद्धि—इसके कारण—लागत घटी—किस्म खराब—विद्युतकरण पर जोर—गतिशील योजना लक्ष्य, श्रम—वेकारी का उन्मूलन - मजदूरो की कमी—प्रवास की प्रवृत्ति—कुशलता तथा अनुभव - प्रशिक्षण—समाजवादी प्रतिस्पर्धा—कठोर अनुशासन- -वैज्ञानिक प्रचार, व्यापार—उपभोग पर नियत्रण—राजकीय बँटवारा—काम का महत्व व मात्रा के अनुसार वितरण, संक्षिप्त समीक्षा—सन्तुलन की कमी—प्रतिष्ठा वृद्धि—अधूरे काम—ह्रास—आकार—प्रियता—मूल्य-वृद्धि—यातायात अविकसित—आंशिक सफलता।

[3] द्वितीय पंचवर्षीय योजना [1933-1937] : राष्ट्रीय शुद्धि [National purge]—जर्मनी का पुनः जागरण—युद्ध का भय, उद्योग—सैनिक शक्ति के लिए औद्योगीकरण—अधूरे निर्माण की पूर्ति—पूँजी का महत्व घटा—प्रमापीकरण—यान्त्रिक कुशलता तथा प्रशिक्षण—श्रमिक कुशलता तथा प्रबन्ध मे सुधार—"सब निर्णय कर्मचारी करे"—स्ताखनोव आन्दोलन—आर्थिक लाभ की आवश्यकता—व्यक्तिगत प्रयत्न—समान वेतन के सिद्धान्त का परित्याग—उपभोग का उत्पादन बढ़ा—निम्न कोटि का उत्पादन—सुधार के प्रयत्न, कृषि—समाजवादी संगठन की पुष्टि—राशनिग समाप्त—कृषि आरटेल के आदर्श नियम—अनाज वसूली में सुधार—कुलक वर्ग उन्मूलन—व्यक्तिगत सम्पत्ति की आज्ञा—"समस्त सामुदायिक किसानो को समृद्धिशाली बनाओ"—सैद्धान्तिक प्रचार का विस्तार।

[4] **तृतीय पंचवर्षीय योजना** [1938-1942] : साहसपूर्ण तथा व्यापक दृष्टिकोण—यातायात की उन्नति—वैज्ञानिक स्थानीयकरण नीति—सुरक्षा तथा शस्त्र उद्योग पर ध्यान—इनमे गुण का सुधार—पूँजी विनियोग—उत्पादन वृद्धि—समाजवादी प्रतिस्पर्धा मे विस्तार—आर्थिक पारितोषिक—श्रम-उत्पादकता मे सुधार—औद्योगिक प्रबन्ध मे सुधार—कारखाने की आत्म-निर्भरता—मौद्रिक मूल्यांकन—व्यवस्थित लेखा-प्रणाली—लाभपूर्ण उत्पादन—अंतर-कारखाना विनियोग को प्रोत्साहन—कुछ कमजोरियाँ—अफसरशाही—तत्कालीन निर्णय व उत्तरदायित्व—संतुलन तथा सम्पर्क—1940 मे योजना स्थगित—प्रगति का अनुमान

[5] **चतुथ पंचवर्षीय योजना** [1946 1950] : उद्देश्य—पुनर्निर्माण—1939-40 का उत्पादन स्तर प्राप्त करना—इससे अधिक प्रगति—यातायात—उद्योग—स्पात तथा लोहा पर जोर—विद्युत—कृषि मे युद्ध से हानि—लक्ष्य तथा पूर्ति ।

[6] **पंचम पंचवर्षीय योजना** [1950-1956] : विश्व युद्ध के प्रभाव को मिटाने का प्रयत्न—पुरानी परिपाटी—सुरक्षा—भारी उद्योग—यान्त्रिक प्रगति—उत्पादन वृद्धि पूँजी विनियोग—योजना पद्धति में उन्नति—आर्थिक निर्णय का विकेन्द्रीयकरण

[7] **छठवीं पंचवर्षीय योजना** [1956-1960] : स्तालिन पद्धति की अंतिम योजना—1957 मे सशोधित—1958 में स्थगित—स्वय-चलित यंत्रो [automation] का प्रयोग—उपभोग की वस्तुओं पर जोर—अव्यवहारिक लक्ष्य ।

[8] **सप्तवर्षीय सातवीं योजना** [1959-1965] : अवधि बढ़ी—आधारभूत परिवर्तन उद्देश्य—भारी उद्योग—शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतिस्पर्धा—प्राकृतिक साधनो की खोज तथा विकास—यान्त्रिक कुशलता पर जोर—श्रमिक-उत्पादकता—रहन-सहन के स्तर मे विकास—साम्यवाद की स्थापना, पूँजी निर्माण तथा विनियोग—विलक्षण पूँजी विनियोग का आकार—वर्तमान कारखानो का आधुनीकरण—सराहनीय यथार्थवादिता—प्राथमिकताएँ—विकास मे सामंजस्य—उत्पादन मे विशिष्टीकरण—लागत लेखा आधार, कृषि—उत्पादन वृद्धि से समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति—भोजन—कच्चा माल—कोलखोज व राजकीय खेत का विलयन—राजकीय फार्म के उत्पादन का विशिष्टीकरण—लागत मे कमी—पूर्वी प्रदेश की नई भूमि का विकास—पशु पालन—यंत्र एवं बिजली का प्रयोग—कृषक

अध्याय १

आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि

सोवियत रूस के प्राकृतिक साधन

भौगोलिक परिस्थितियों को राष्ट्रीय विकास का मुख्य अथवा निर्णायक कारण तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह निर्विवाद रूप से प्रगति की स्थायी आवश्यकता है। संयुक्त राज्य अमरीका के बाद सोवियत रूस के अतिरिक्त कोई ऐसा देश नही है जिसे प्रकृति ने मुक्तहस्त दान दिया हो। प्रचुर प्राकृतिक साधन, विस्तृत उपजाऊ प्रदेश तथा हर प्रकार की जलवायु रूस की विशेषता है। विशाल नदियाँ और प्रशस्त समतल भूमि के क्षेत्र यातायात के लिये आदर्श है। बहुत पुष्ट शरीर के अत्यन्त मेहनती लोग यहाँ बसते हैं। 22 5 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर 20 करोड से कुछ अधिक आबादी है जिसका 43% तो शहरों में रहता है और 57% ग्रामीण जनता है। 15 प्रजातंत्र राज्यों के सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र संघ [The Union of Soviet Socialist Republics : U. S S. R.] की जनता को तीन सामाजिक वर्गों में विभाजित किया जाता है : कारखाना, आफिस तथा अन्य कर्मचारी 58·3%; सामुदायिक तथा सहकारी किसान व कारीगर 41 2%, और व्यक्तिगत किसान तथा कारीगर जो सहकारी समितियों के सदस्य नही है 0 5%। तीसरे वर्ग में लगभग 10 लाख व्यक्ति रखे जाते हैं।

योरप और एशिया में फैले हुए इस देश का उत्तरी भाग शीत-कटिबंध में पडता है। योरप मे स्वीडन से लेकर एशिया मे बेरिंग समुद्र तक का भाग अधिकतर बर्फ का रेगिस्तान है। अगर यह छोटा-सा समुद्र बीच में जमीन काट न देता तो संयुक्त राज्य अमरीका का अलास्का राज्य रूस को छूता होता। उत्तर से दक्षिण तक 2700 मील और पूर्व से पश्चिम तक लगभग 7000 मील तक फैले इस देश का आकार संयुक्त राज्य अमरीका का तीन गुना अथवा ससार की भूमि का $\frac{1}{7}$ भाग है। इतने बड़े क्षेत्रफल का $\frac{1}{6}$ हिस्सा सदा बर्फ से ढका रहता है। यूराल, काकेशस, मध्य-साइबेरिया के पठार मुख्य पहाड़ी क्षेत्र है। इनसे निकली नदियाँ यातायात और सिचाई के लिये प्रसिद्ध हैं। खास नदियो मे कामा, द्विना, नीपर, नेस्तर, डान, वोल्गा, ओबी, यनीसी तथा लीना आती है।

औद्योगिक साधन

औद्योगिक शक्ति [industrial power] के क्षेत्र में आधुनिक उन्नति करने के लिये रूस के पास पर्याप्त कोयला, तेल, जल-विद्युत [Hydro-electricity] लकडी का कोयला और गैस पाई जाती है। इनमे से कोयले का महत्व अभी भी काफी है। पश्चिमी-दक्षिणी प्रदेश अथवा दोनेत्स् घाटी, पूर्वी दक्षिणी साइबेरिया में कजनेत्स्क घाटी और करागान्दा घाटी प्रमुख कोयला उत्पादन के क्षेत्र है। इसके बाद जल-विद्युत का स्थान आता है। पथरीले प्रदेशो पर साल भर बहने वाली तेज नदियो के झरने इतने काफी है कि जलविद्युत की उत्पादन क्षमता मे रूस को सबसे ऊँचा स्थान दिया जाता है। 280 मिलियन किलोवॉट जलविद्युत शक्ति होने पर भी इसका बहुत कम अश प्रयोग में लाया गया है। पेट्रोल का कोष भी रूस मे सब से ज्यादा है। काकेशस प्रदेश में बाकू, ग्राजनी, और क्यूबन के अतिरिक्त यूराल और वोल्गा नदी के बीच विशाल तेल-भंडार का पता चला है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से तेल के उत्पादन में 60% से अधिक उन्नति की गई है। गैस के प्रयोग को बढ़ाने का प्रयत्न हाल में शुरू हुआ है। इसमे भी देश के पास काफी बड़ा भंडार है। सब से सस्ती शक्ति का साधन होने के कारण इसका प्रयोग बढ़ता ही जायगा।

खनिज पदार्थों मे रूस के पास अपार भंडार की आशा की जाती है। कुछ विश्वस्त अनुमानो द्वारा संसार का 64% पोटैसियम, मैगनीज, और फासफेट के साथ 35% पेट्रोल और 53% लोहा है। धातु उत्पादन मे सब से अधिक महत्व लोहे को दिया जायेगा। काकेशस पहाड़ के आस-पास क्रीमिया और युक्रेन प्रदेश में 60% तथा यूराल प्रदेश मे 30% रूस का कोयला-भंडार मिलता है। जिन्क, सीसा, अल्म्युनियम, ताँबा और पीतल भी वर्तमान आवश्यकता से अधिक मात्रा में पाया जाता है। इनके अतिरिक्त अत्यन्त मूल्यवान धातुएँ जैसे, पारा, ऐन्टीमनी और यूरेनियम इत्यादि की कोई खास कमी होने का अनुमान नही मिलता। सोने के बारे मे आँकड़े तो प्रकाशित नहीं होते किन्तु यह आशा की जाती है कि रूस की गिनती ससार के सबसे बड़े सोना उत्पादक देशो मे होनी चाहिये।

कृषि-साधन

कृषि के उत्पादन के लिये तापक्रम, वर्षा और मिट्टी आवश्यक बातें हैं। अधिकतर रूस, कनाडा और सयुक्तराज्य अमरीका के समानान्तर पड़ता है। इसलिये कृषि के उपयोगी जलवायु व विस्तृत समतल भूमि के कारण कृषि की प्रायः सभी मुख्य वस्तुएँ यहाँ पैदा की जाती हैं, जैसे, गेहूँ, जौ, ओट [Oats], फ्लेक्स, चुकन्दर, कपास और तेलयुक्त बीज की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। विषुवत् रेखीय जलवायु के गर्म और नम प्रदेशों में होने वाली उपज जैसे, रबर और मसाले, यहाँ नही होती।

1955 में 286 मिलियन हेक्टर भूमि पर खेती की जाती थी। यह करीब-करीब रूसी क्षेत्रफल का एक तिहाई हिस्सा हुआ। बचे हुए दो-तिहाई भाग खेती के लिये अनुपयुक्त है क्योकि यह अधिकतर जंगल, घास के मैदान, रेगिस्तान, पहाड या दल-दल है। वैज्ञानिक साधनो से इसके बहुत बडे अंश को पॉचवीं और छठवीं योजना में खेती योग्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। देश के योरोपीय भाग में दूर तक फैले हुए काली मिट्टी के प्रदेश सबसे उपजाऊ हैं। औद्योगीकरण के साथ-साथ औद्योगिक फसलों का उत्पादन बढाने का प्रयत्न लगातार किया जा रहा है।

पश्चिमी साइबेरिया, कजाखस्तान-और यूक्रेन प्रदेश में पशु-पालन के केन्द्र हैं। रूसी कृषि में पशुपालन का महत्व बहुत अधिक है। जगलो से प्राप्त होने वाली वस्तुओं में रोयेदार ख़ाल सब से महत्वपूर्ण है। पूर्वी साइबेरिया और उत्तर का भाग रोयेदार ख़ाल के लिये संसार के बाजार में प्रसिद्ध है। सबसे आसानी से प्राप्त और सस्ता भोजन का साधन मछलियॉ होती हैं। कैस्पियन सागर मे मछलियॉ इतनी अधिक मिलती हैं कि उसे मछली का तालाब' [fish pond] के नाम से पुकारा जाता है। घनी आबादी के निकट होने से इसका महत्व और भी बढ़ गया। सुदूर पूर्व में कमचत्का का किनारा, आमूर का डेल्टा और दक्षिणी शाखालीन में विख्यात हेरिंग और सेमन मछलियाँ बहुत बड़ी मात्रा मे मिलती हैं। आर्कटिक महासागर पर मरमन्स्क के अलावा काला सागर और अजोव सागर भी मछलियों का अच्छा भडार है।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि रूस के विकास मे प्रकृति का इतना सहयोग होने पर, वहॉ के मजबूत और परिश्रमी जनता ने इसका पूरा लाभ समाजवादी सरकार के अन्तर्गत उठाया। इसी कारण पिछले तीस वर्षों मे सोवियत रूस संसार में सब से ऊपर पहुँचने के इतने नजदीक आ गया है।

राजनैतिक विकास

इतिहास को क्रमबद्ध परिवर्तनो का एक लेखा कहा जा सकता है। यह आवश्यक है कि किसी भी देश के वर्तमान का अध्ययन करने के लिए प्राचीन एव अर्वाचीन इतिहास को भी देखा-जाय। एशिया और योरप के बीच बसा यह देश, इन दोनो महाद्वीपो की अच्छाइयों तथा बुराइयो का अजीब मिश्रण है। इतिहासकार इस बात पर एकमत नही हो पाते कि रूस सास्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से एशिया के अधिक निकट है या योरप के।

आरम्भ में यह बराबर बदलती हुई जातियों का देश था। यह जातियॉ अधिकतर एशिया से आईं। ऐतिहासिक प्राथमिकता के साथ विशेष उल्लेखनीय इस्काइथियन [Scythian] जाति है। आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक दक्षिण और दक्षिण-पूर्व मे

इनका अधिपत्य जम चुका था। कृषि तथा पशुपालन मुख्य धंधा था। कई प्रकार के गुलाम रखने की प्रथा भी पाई जाती थी। इनके बाद कई जातियों का उदय हुआ किन्तु उनका कोई स्थायी प्रभाव न पडा। लगभग पाँचवी शताब्दी के निकट स्लाव [Slav] जाति का बढ़ता हुआ अस्तित्व दिखलाई पडता है। इनकी उत्पत्ति के बारे में काफी मत-भेद है। कुछ इतिहासकारो का विचार है कि यह जाति एशिया से आई और डेन्यूब नदी के किनारे-किनारे दूर तक फैल गई। दूसरे विचारक इनको रूस के दक्षिणी-पूर्वी भाग का आदिम निवासी मानते है। सामाजिक संगठन छोटे-छोटे समूह [Clans] से शीघ्र ही, सैनिक जत्थो मे बदल गया। खेती, पशुपालन और युद्ध इनका काम था।

सातवी शताब्दी मे स्लाव लोग तीन शाखाओ मे विभक्त होकर बिखर गये। इनके प्रवास की दिशा थी—पश्चिम मे वर्तमान जर्मनी-पोलैण्ड क्षेत्र; पूर्व में नीपर और वाल्गा नदी के किनारे-किनारे; दक्षिण मे कारपेथियन पर्वत और उसके पार बाल्कन प्रदेश। इनमे से पूर्वी शाखा सबसे अधिक सगठित और क्रियाशील थी। इसी का नाम "रस" [Russ] या रूसी स्लाव पडा। 1000 ईस्वी के निकट यह जाति बाई-जेन्टाइन [Byzentine] साम्राज्य के सम्पर्क मे आई। ईसाई धर्म के साथ-साथ बाइजेन्टाइन भाषा, लिपि और सभ्यता स्लाव लोगो ने स्वीकार किया। स्लाव जाति का शारीरिक बल और परिश्रम, बाइजेन्टाइन क्रूरता, तानाशाही और विकसित मानसिक शक्ति के साथ मिलकर, आने वाली रूसी जाति के गुणो का निर्माण होने लगा।

1236 से 1480 तक रूस मगोल जाति के प्रभुता मे रहा। चगेज खाँ के एक निकट सम्बन्धी ने बवडर की तरह रूस पर हमला किया और देखते-देखते सारे योरप पर छा गया। इन मगोल आक्रमणकारियों को रूसी "टारटार" कहते थे। लगभग ढाई सौ साल का मगोल राज्य रूसी समाज, विचारधारा, कार्य-प्रणाली, राजनीति तथा सभ्यता पर अमिट छाप छोड़ गया।

भिन्न-भिन्न जातियों से भरा हुआ यह विशाल प्रदेश धीरे-धीरे सगठन, शक्ति और स्वतन्त्रा की ओर अग्रसर हुआ। मास्को का छोटा-सा राज्य कई सदियों से सामत-वादी राज्य के रूप मे चला आ रहा था। व्यापारिक मार्गों पर स्थित होने से मास्को नगर का विकास बराबर होता रहा। आगे चलकर रूस के राष्ट्र-निर्माण का यह केन्द्र-बिन्दु सिद्ध हुआ। अनेक उपायो द्वारा मास्को के शासकों ने मगोल खानो [Khans] से विशेष सुविधाएँ प्राप्त कर रक्खी थी। मास्को के प्रतापी शासक आइवन तृतीय [1462-1505] ने 1480 मे मंगोल साम्राज्य की रही-सही शक्ति को नष्ट कर दिया। इस प्रकार प्रथम स्वतन्त्र रूसी राज्य की स्थापना हुई। आइवन चतुर्थ [1533-1584] ने "जार" की पदवी ग्रहण किया और छोटे-छोटे राज्यो को मास्को के केन्द्रीय शासन मे मिलाना आरम्भ किया। विजय और विलियन का यह क्रम आइवन चतुर्थ की ही देन

थी। इसकी दृष्टि एशिया की ओर भी गई। कजान [1552] और अस्त्राखाँ [1556] के समृद्धिशाली शहरों को जीतकर, इस विलक्षण जार ने प्रशान्त महासागर तक एशिया के विजय का रास्ता साफ कर दिया।

1613 में माइकेल रोमानोव ने मास्को में रोमानोव वंश की स्थापना किया। इनके तीन सौ सालों के राज्य काल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि राजा और प्रजा के बीच का अन्तर बराबर बढ़ता गया। समाज दो स्पष्ट वर्गों में बट गया—आश्चर्य-जनक धनी और विलासी उच्चवर्ग तथा अवर्णनीय दरिद्रता से घिरा हुआ कृषि-दास वर्ग। रूसी इतिहास का युगप्रवर्तक इस वंश के महान् सम्राट् पीटर प्रथम [1689-1725] को माना जाता है। इस छः फुट नौ इञ्च लम्बे, अद्भुत शारीरिक शक्ति वाले शासक में पाशविकता, दूरदर्शिता, कूटनीतिज्ञता, कार्य-कुशलता और संगठन की विल-क्षण क्षमता थी। देश को रूढ़िवादिता से निकाल कर आधुनिकता की ओर बढ़ाने का सारा श्रेय महान् पीटर को ही है। यह प्रथम रूसी सम्राट था जो योरोप के देशों में गया और उनकी उन्नति के नमूने और तरीके को देखा। पीटर के शासनकाल में रूस की सभी दिशाओं में उन्नति हुई। यूरोपवाद की एक ऐसी लहर देश में आई, कि पहली बार जर्मनी, फ्रांस और इंगलैण्ड की विचारधाराओं, सामाजिक संगठन और औद्योगिक विकास के ढाँचे में रूस अपने आपको बदलने की कोशिश करने लगा। विदेशों से राज-नैतिक और व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए, साम्राज्य की सीमा को समुद्र तट तक बढ़ाने के लिए पीटर जीवन भर युद्ध में लगा रहा। उत्तर के श्वेत सागर एवं बाल्टिक सागर और दक्षिण में काला सागर, कैस्पियन सागर और अजोब सागर इनके लक्ष्य थे।

पूँजीवादी औद्योगीकरण पीटर की सबसे बड़ी देन कही जा सकती है। योरप में उस समय प्रचलित वाणिज्यवाद के सिद्धान्तों ने सम्राट को बहुत ही प्रभावित किया था। यह कहना तो उचित नहीं होगा कि रूसी औद्योगीकरण का सूत्रपात्र ही पीटर ने किया। किन्तु पीटर के ही कारण राजकीय संरक्षता और प्रेरणा से उद्योगों की उन्नति में नया जोश, नया विचार, नया तरीका, नया संगठन, विदेशी कारीगर और पूँजी आई। व्यक्तिगत पूँजीवाद की मदद से उद्योग-धंधों को बढ़ाने के लिए औद्योगिक पूँजी, विशेष सुविधायें और टैरिफ संरक्षण राज्य ने पूरी तरह किया। राज्य को इस दिशा में इस सीमा तक अग्रसर करने के मूलतः दो कारण थे—पीटर ने स्पष्ट रूप से यह देखा कि उसकी सैनिक विजय देश में सैनिक सामान के प्रचुर उत्पादन पर ही निर्भर करती है; इसके अतिरिक्त यूरोप भ्रमण ने पीटर को विश्वास दिला दिया कि देश की संवृद्धि खेती से नहीं, उद्योगों से होगी।

पीटर की मृत्यु के बाद कई सम्राज्ञियों ने राज्य किया—कैथरीन प्रथम [1725-27], अन्ना [1730-40], एलिज़ाबेथ [1741-62] और कैथरीन द्वितीय [1762 1796] जिसको महान् कैथरीन भी कहा जाता है। इनके राज्यकाल के करीब-करीब हर क्षेत्र में पीटर की नीति को ही आगे बढ़ाया गया। एलिजाबेथ ने प्रथम रूसी विश्व-विद्यालय स्थापित किया [मास्को विश्वविद्यालय-1755]। कैथरीन द्वितीय इनमें सबसे अधिक प्रभावशाली शासक थी। अपने 34 साल के राज्यकाल में उसने पीटर प्रथम के करीब-करीब सभी अधूरे कामों को समाप्त किया। पृथकवाद की सकीर्णता को दूर करने के लिए कैथरीन ने यूरोप के प्रमुख दार्शनिक, कलाकार, कुशल कारीगर, वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञों को अपने दरबार में आकर्षित किया। संभव था कि रूस कैथरीन के निर्देशन में सचमुच योरप से मिल जाता किन्तु फ्रान्स की राज्य क्रान्ति ने इस दिशा की प्रगति को एकदम रोक दिया। रूस के शासक वर्ग को विश्वास हो गया कि उदार विचारधारायें ही क्रान्ति को जन्म देती है।

कैथरीन द्वितीय के बाद पूरी 19 वी शताब्दी में कोई भी उसके कोटि का शासक न हुआ। देश मे अमीर और गरीब, वंशपरम्परानुगत सामंत तथा किसान के बीच की खाई और चौड़ी होती गई। शासन भी एक चुने हुए कृपापात्र वर्ग के हाथ में था। भूमि के साथ बँधा हुआ किसान अब स्वतंत्र होने की कोशिश करने लगा। पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के प्रथम विकास की अत्याचारपूर्ण कमजोरियों ने मजदूरी करने वाले किसानों मे भी घोर असतोष पैदा किया। निकोलस प्रथम [1825-55] के राज्यकाल मे करीब 600 स्थानीय विद्रोह हुए जिनको अत्यंत क्रूरता से दबा दिया गया। यह दशा इतनी बिगड़ी कि अलेक्जाण्डर द्वितीय [1855-81] ने बड़े पैमाने पर सुधार करने की कोशिश की। 1861 मे रूसी किसान अपने बहुत से बन्धनों से मुक्त कर दिये गये। यह सुधार पूरी तरह लाभदायक न हो सके; क्योंकि स्वार्थी एवं प्रभावशाली सामतो ने जार को इनमें कई बड़ी कमजोरियाँ छोड़ देने को बाध्य किया। असर यह हुआ कि इस उमड़ते हुये असंतोष का निशाना ज़ार स्वय बना। 1881 मे उसकी हत्या कर दी गई। अंतिम ज़ार निकोलस द्वितीय [1894-1917] रोमानोव वंश के शताब्दियो के अत्याचार और जनता के क्रोध का बोझ अपने कमजोर कधों पर उठाने के लिए सर्वथा अयोग्य था। 16 जुलाई 1918 मे इस वंश का प्रकाशहीन अंतिम दीपक साम्यवादियो द्वारा सदा के लिए बुझा दिया गया।

1917 की राज्य क्रान्ति के बाद शासन की बागडोर लेनिन [V. I. Lenin] के हाथो में आई। इस चमत्कारी विचारक तथा राजनीतिज्ञ ने रूस मे एक नये सामाजिक संगठन की नीव डाली जो अपने तरीके का पहला प्रयोग था। लेनिन को वास्त-

विक रूप मे तानाशाह नहीं कहा जा सकता। इस पर लोगों की अपार आस्था थी लेकिन शासन में यह अकेला न था। तानाशाही की नींव इसके उत्तराधिकारी जोसेफ स्तालिन ने डाली। 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद धीरे-धीरे शक्ति संग्रह करने के प्रयत्न में, स्तालिन ने अपने सब प्रतिद्वन्द्वियो को मार्ग से हटा दिया। 1929 तक वह एकछत्र तानाशाह बन बैठा। अपनी योग्यता और लगन से 1952 तक के शासन काल में इसने रूस को अत्यन्त शक्तिशाली एव आधुनिक देश में बदल दिया। स्तालिन की मृत्यु के बाद एक साथ कई व्यक्ति राज्यशक्ति पाने के लिये प्रयत्न करने लगे। लेकिन अत मे निकिता खु्श्चेव की विजय हुई। खु्श्चेव का जन्म 1894 में कर्स्क के पास के एक गाँव में हुआ था। खान मे काम करते वाले एक मजदूर का पुत्र होने से विशेष शिक्षा बिना इसने भी कोयले की खान मे कम उम्र से मजदूरी शुरू किया। अत्यन्त चपल और चालाक होने के कारण मजदूरो के स्कूल में पढने के लिये चुना गया। 35 वर्ष की आयु में मास्को औद्योगिक विद्यालय में भर्ती होकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने का उसे अवसर मिला। तेज बुद्धि और कुशल राजनैतिक दावपेच से 1930 तक खु्श्चेव कम्युनिष्ट पार्टी मे अत्यन्त महत्वपूर्ण सदस्य बन चुका था। शक्ति प्राप्त करते ही स्तालिन के प्रभाव को घटाकर खु्श्चेव ने राष्ट्र की रुकती हुई प्रगति को नया जीवन दिया।

सामाजिक विकास

सामाजिक दृष्टि से रूसी जनता को दो वर्गों में रखा जा सकता है : शासकवर्ग तथा शासितवर्ग। यह वर्गीकरण इसलिये आवश्यक है कि रूसी इतिहास रूसी सरकार का इतिहास है जिसमें आम जनता के जीवन, विचार और अभिलाषाओं की कोई छाप नही मिलती। संसार में शायद और कही भी राजा और प्रजा के बीच इतनी अधिक दूरी नहीं पाई जाती। इसका कारण यह है कि इस देश मे शासक जनता पर राज्य जरूर करते हैं किन्तु वे कभी भी उनका एक अग नहीं बन सके। रूसी इतिहास के अध्ययन से उच्चतम वर्ग के छोटे से समूह के अतिरिक्त जनता की इच्छाओ की कोई अनुभूति नही होती। इस सामाजिक सगठन से परिचित न होने पर आर्थिक इतिहास की बहुत-सी बाते साफ समझ मे नहीं आती।

रूसी समाज आदिकाल से ही शोषण के वातावरण में रहता आया है। सेनाधिकारी, धर्माधिकारी और राज्याधिकारी सभी शोषण के कार्य मे सहयोग देते रहे। इस बात ने रूसियो के चरित्र पर गहरा प्रभाव डाला। सदियो से चले आते हुए धार्मिक और राजनैतिक शोषण ने आम जनता को बेबसी और गरीबी से इतना तोड दिया कि वे भाग्यवादी बन गये। परिवर्तन की आशा और प्रयत्न दोनो ही उन्हें बेकार दीखने लगा। पादरी तथा ज़ार का षड्यन्त्र इतना सफल रहा कि—[1] जनता के मन में

अटल विश्वास पैदा हो गया कि शासक और उसके कर्मचारियो को राज्य करने का दैवी अधिकार प्राप्त है। उसे बदलने की कोशिश ईश्वर के प्रति घोर पाप होगा। [2] पादरी उनके आत्मा का स्वामी और स्वर्ग का द्वारपाल होता है। उसकी कृपा किसी भी मूल्य पर पाना आवश्यक है। (धन देकर स्वर्ग मे स्थान सुरक्षित कराने की प्रथा बीसवी शताब्दी के आरम्भ तक पाई जाती थी)। इस प्रकार जनता की धर्म-भीरु, भाग्यवादी प्रकृति में साम्य-वादी नेताओ के सफलता का एक खास कारण छिपा है।

शिक्षित बुद्धिवादी वर्ग [The Intelligentia] का शासन से निकट सम्बन्ध जरूर था किन्तु उन्हे अपने प्रगतिशील विचारो को व्यवहारिक रूप मे लाने का अवसर कभी नहीं मिला। इसका प्रभाव यह पडा कि साहित्य और वाद-विवाद मे विचारो का जो ऊँचा स्तर पाया जाता था, वह केवल कोरा सिद्धान्त बनकर पडा रहा। पिछड़ी हुई जनता को इसका कोई लाभ न हो सका।

राज्य और जनता : विचार और व्यवहार में आपसी सम्पर्क न होने से आम जनता का व्यवहार और दृष्टिकोण संयत, स्पष्ट और सन्तुलित न हो पाया। ज़ार-काल मे धर्म, और आजकल प्रचार [Propaganda], को स्वतन्त्र तथा विवेचनात्मक रूप से न समझ सकने के कारण, रूसी जनता इतनी आसानी से क्रूर जारो और तानाशाह नेताओ के हाथों मे अपने को छोड़ देती है।

रूस की जनता के चरित्र-निर्माण पर दीर्घकालीन सामन्तवादी अत्याचार का ही प्रभाव नही पडा वरन् भौगोलिक[3] परिस्थितियो तथा धार्मिक विचारो ने भी काफी असर डाला। रूसी चरित्र की विशेषतायें समाज के शासकवर्ग अथवा बुद्धिवादियो मे न पैदा हुई और न उनके बीच पनप सकी। रूसियों के सम्पर्क मे आने वाले पुराने-से-पुराने पश्चिमी यात्रियो को उनमें अपार क्षमता और उन्नति की सम्भावनाओं का जो आभास मिलता था, उसका प्रादुर्भाव सदा से पददलित निम्नवर्ग मे हुआ। धैर्यपूर्ण परिश्रम, बिना शिकायत के कष्ट और दुःख सहने की आदत, एकदम अपरिष्कृत रूप मे मानवता का गहरा समावेश, भावुकता तथा भावावेश [sentimentalism and emotionalism] की प्रत्यक्ष कमी, पेचीदी चालाकी और लक्ष्य प्राप्ति के लिये नैतिक-अनैतिक विचारो का पूर्ण अभाव, उनके चरित्र की विशेषताओ मे मुख्य है। अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक नीव होने से उनमे स्वाभाविक गम्भीरता पाई जाती है। संसार के सम्पर्क से यहाँ की जनता इतनी दूर रहती आई है कि यूरोपीय आधुनिक सभ्यता के विपरीत इनकी अपनी संस्कृति बिना विशेष परिवर्तन के पूर्ववत् बनी है। रूस के बाहर पाये जाने वाले विचारो और तरीको के साथ इनमें सहानुभूति, उदारता और समझ प्रायः कम होती है। शायद यही कारण है कि रूस की सरकार और जनता हरएक विदेशी

बातों और चीजो के प्रति सन्देह तथा अमैत्री दिखलाती थी। अपनी सफलताओ को तुलनात्मक दृष्टि से न देखने के कारण गौरव के स्थान पर गर्व के उत्पन्न होने का भय है।

आधुनिक रूस के सामाजिक चित्र में आशापूर्ण और प्रभावशाली बाते मिलती हैं। विचारो मे अन्तर होने पर भी रूसियो के सम्पर्क मे आने वाला कोई व्यक्ति उनके अटल आत्मविश्वास, दूरदर्शी विचारधारा और स्पष्ट उद्देश्यों की प्रशसा किये बिना नहीं रह सकता। अन्त में यह कहना होगा कि यह देश अपनी तमाम कमजोरियों के साथ-साथ इतना सुसंगठित और कर्मठ है कि संसार के भविष्य-निर्माण में इसका बहुत बड़ा हाथ होना निश्चित मालूम पडता है।

अध्याय २

कृषि का विकास [१८६१ तक]

[Agricultural Development upto 1861]

प्राचीन रूस की आर्थिक व्यवस्था कृषि पर ही निर्भर करती थी। यहाँ की जनता गेहूँ, जौर, राई [Rye] और ओट्स [Oats] की कृषि सदियों से करती आयी है। विशाल भूखण्ड पर कम आबादी होने के कारण बड़े पैमाने पर विस्तृत खेती [extensive cultivation] प्रचलित थी। कृषि-विकास और सगठन समय-समय पर अपना रूप बदलता रहा। इसी कारण कृषि केवल आर्थिक महत्व न रखकर युद्ध सगठन का एक महत्वपूर्ण अग बन गयी। किसान और कृषि अनेक बातों से प्रभावित हुए। उनमें सबसे पहला स्थान निरन्तर होने वाले विदेशी हमले और सैकड़ो सालो की परतन्त्रता को दिया जाना चाहिये। विदेशी आक्रमणकारी शासकों ने अपनी सेना के लिए भोजन प्राप्त करने के अतिरिक्त और किसी प्रकार का ध्यान कृषि की ओर न दिया। विजेता होने के नाते अधिक से अधिक कर प्राप्त करना इनका ध्येय रहा। इसकी अमिट छाप रूसी खेती पर सदा के लिए पड़ी है। चूँकि स्थायी सेना रखने की प्रथा बहुत बाद मे शुरू हुई इसलिये खेती संगठन को सैनिको को अपने यहाँ रखने और उनको खिलाने की क्षमता उत्पन्न करनी पड़ी। युद्धकाल में आसानी के साथ देश के बिखरे हुये गाँवों से सैनिकों की भरती की जा सके इसकी भी जिम्मेदारी गाँवो पर ही थी।

भूमि स्वामित्व का उदय तथा विस्तार

मनुष्य जाति के बचपन की अवस्था बर्बरता थी। व्यक्तिगत अस्तित्व, खाना-बदोशी [nomadic] और शिकार इसके लक्षण थे। इस स्थिति का मध्य और अंतिम चरण था पाषाण तथा धातु-युग। धातु का प्रयोग जानने के बाद ही जंगली मनुष्य घरेलू [domestic] बना। जानवर को पालतू बनाना, शान्त स्थिर जीवन, गाँव और जाति गुट [clans] तथा खेती सभ्यता के विकास की श्रृङ्खला की पहली कड़ी थी। इस प्रकार आरम्भिक अर्थ-व्यवस्था [primitive economy] का जन्म हुआ। इस उत्पादन संगठन की विशेषता थी—उत्पादन के साधनों का सामूहिक स्वामित्व, सामूहिक श्रम तथा संयुक्त उत्पादन। इस समय तक सामाजिक वर्ग, शोषण एव व्यक्तिगत संपत्ति का उदय नहीं हुआ था।

प्राचीन रूस के आर्थिक इतिहास में दो मुख्य बातें लगभग आठवीं शताब्दी तक दिखाई पड़ती हैं—प्रथम–लोगों की पारिवारिक अथवा जाति-गुट [जन समूह या clan] में विभक्ति। स्लाव जाति में बहुत लम्बे अर्से से जाति गुट के आधार पर ही छोटे-छोटे जन-समूह बने थे। इनका शासन जन-समूह के वयोवृद्ध करते थे जिनका सदैव यही प्रयत्न रहता था कि उनका समूह स्वय शासित हो एवं निकटतम् आपसी सम्बन्ध से बँधा रहे। दूसरी विशेषता थी भूमि का सामुदायिक स्वामित्व। अपार भूमि निःशुल्क अवस्था मे पड़ी थी। हर जन-समूह अपनी इच्छा एव सुविधा के अनुसार जितनी जमीन चाहता था उस पर खेती आरम्भ कर देता था। इसलिये भूमि स्वामित्व की कोई समस्या ही न थी। नवीं शताब्दी तक यह व्यवस्था टूटने लगी। खेतीयोग्य भूमि की कमी अनुभव हुई। आर्थिक लाभ के लिये पारिवारिक तथा जाति-गुट के जगह पर क्षेत्रिक रूप से लोग संगठित हुये। यही गाँव का आरम्भ था। एक ही बड़ा परिवार या एक ही जाति के अतिरिक्त गाँव मे उन सभी लोगो को जगह मिली जो किसी न किसी प्रकार से एक-दूसरे के आर्थिक कार्य-शीलता मे सहयोग दे सकते थे। इस समय तक व्यक्तिगत भूमि स्वामित्व [private land ownership] का जन्म नहीं हुआ था। क्षेत्रिक समुदाय [territorial commune] बना अवश्य था पर इसका कार्य केवल शासन से ही सम्बन्धित माना जाता है। रूसी कृषि की सब से बडी विशेषता सामुदायिक भूमि स्वामित्व [land communes] का निश्चित लक्षण 15 वी शताब्दी से उपलब्ध होता है। दास प्रथा का आरम्भ इस प्रारम्भिक वर्ग-हीन समाज के नष्ट होने में बहुत सहायक हुआ। इस समय की दासता उत्पादन के लिये न होकर घरेलू [domestic] कामो के लिये ही थी।[1] आगे चलकर इनका उत्पादन कार्य में भी प्रयोग हुआ क्योंकि प्राचीन स्लाव समाज का एक मुख्य अग ओग्नीशान [ognitschane] अर्थात भूमि एवं दास-स्वामी वर्ग था।

नवी शताब्दी की प्रारम्भिक अर्थ-व्यवस्था [primitive economy] के पतन से सामंतवाद [Feudalism] का उदय हुआ जो कि लगभग दो शताब्दी के भीतर ही रूस का सामाजिक आर्थिक संगठन बन गया। इसके अन्तर्गत कृषि मुख्य धंधा थी। औद्योगिक वस्तु निर्माण [manufacturing] तथा कृषि का कार्य एक वर्ग ही करता था। निःशुल्क पड़ी हुई भूमि बहुत बड़े पैमाने में भूस्वामियो के हाथ मे चली गयी। व्यक्तिगत किसान और कारीगर अपने औजार की मदद से इन भूस्वामियो से जमीन लेकर काम करते थे। इस सुविधा के बदले में अपने उत्पादन का एक अंश [obrok] तथा अपने श्रम का निश्चित समय [bartschina] भूस्वामियो को देना पड़ता था। अपने श्रम और साधन के लाभपूर्ण प्रयोग के लिये दूसरे पर निर्भर रहने का यह बीज

1 Engels Origin of Family, Private Property and State, pp. 154—156

सदियों तक अपना विषाक्त प्रस्फुटन एवं प्रसार करता रहा। शोषण से किसान की बराबर बिगडती हुयी हालत का पूरा लाभ भूस्वामियों ने उठाया। उस पर तरह-तरह का आर्थिक व अनार्थिक बोझ बढ़ता गया। अन्त में दायित्व के अपार भार से बोझिल किसान को आसानी से भूमि के साथ बाँधने मे भूस्वामी सफल हुये और स्वतत्र किसान कृषि-दास मे परिवर्तित हो गया।

प्राचीन रूसी इतिहासकार यह नहीं मानते थे कि रूस मे कभी सामतवाद रहा हो। समकालीन यूरप के विकसित सामतवाद की कुछ छाया ही उनको रूस मे दिखाई पड़ती थी।[1] किन्तु लेनिन मेवर, लाइशेन्को, आदि विद्वानो ने इस विचारधारा को मिथ्या सिद्ध कर दिया है। सामतवाद के अन्तर्गत भूमि-व्यवस्था काफी सरल थी। देश के शक्तिशाली महासामतो ने भूमि पर अपना स्वामित्व घोषित कर रखा था। इस प्रकार के स्वामित्व को वोशीना [Votchina] अथवा वशानुगत भूसम्पति कहते है। वोशीना भूस्वामियों को बोयर [Boyer] अथवा विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति पुकारा जाता था। 18 वी शताब्दी तक इस श्रेष्ठ सामाजिक वर्ग का प्रभाव रूसी शासको पर अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। वैसे तो सर्वदा ही किसी न किसी प्रभावशाली भूस्वामीवर्ग के हाथ मे रूस का शासन खिलौना बना रहा। 16 वी शताब्दी मे कृषि की एक विशेषता यह थी कि आइवन तृतीय के नेतृत्व मे एक नये प्रकार के भूस्वामियो को प्रोत्साहन दिया गया। सामत भूस्वामियों के विपरीत छोटे और मध्यम किसान वर्ग का प्रभुत्व अर्थ-व्यवस्था मे बढ़ा। इन्हें पोमेस्ती भूस्वामी कहा जाता था। इनका काम सीमा-प्रदेश की रक्षा और राज्य की सैनिक सेवा था। इसके बदले में इनको जमीन दी जाती थी। लेकिन यह भूमि स्वामित्व स्थायी न था। इसका सीधा सम्बन्ध सैनिक सेवा से था। इसकी इतनी तीव्र प्रगति हुयी कि 16 वीं शताब्दी के मध्य तक 95% खेती योग्य भूमि इनके अधिकार में चली गयी। इस भूमि-व्यवस्था को प्रोत्साहन देने से कृषि उन्नति में सहायता हो सकती थी। ऐसा न होने का मुख्य कारण था कि पोमेस्टी वर्ग का भूमि-अधिकार स्थायी न था। अस्थायी भूमि स्वामित्व के साथ-साथ इनकी कमजोर आर्थिक स्थिति उचित श्रम इकट्ठा करके लाभपूर्ण खेती करने मे बाधक सिद्ध हुयी।

इस शताब्दी मे मुद्रा के प्रयोग और व्यापारिक विनिमय के आर्थिक व्यवस्था मे आ जाने से श्रम अधिक लाभपूर्ण धन्धो मे जाने की कोशिश करने लगा। श्रमिकों का खेत छोडकर भाग जाना एक सार्वजनिक समस्या बन गया था। चूँकि सामंतों [Feudal Lords] का प्रभाव श्रमिको को रोक रखने मे सफल न हो सका, इसलिये पोमेस्ती भूस्वामियों

---

[1] See notes no. 10 in Lyashchenko History of the National Economy of Russia. pp. 93—94

ने किसान को भूमि से बाँध देने की व्यवस्था करनी आरम्भ की। आगे चलकर किसानों को दिये गये कर्ज की वसूली का बहाना लेकर इस वर्ग के आन्दोलन तथा प्रभाव के कारण किसानो के भूमि छोडने पर प्रतिबंध लगा और उनकी दासता में नया युग आरम्भ हुआ।

17 वी शताब्दी मे देश मे ऐसी उथल-पुथल रही कि कृषि की दशा और बिगड़ती गयी। 1601–3 के महाकाल मे पोमेस्टी वर्ग की शक्ति इतनी कम हो गयी कि इन्होने अपने यहाँ रहने वाले श्रमिको को भोजन देने से भी इन्कार कर दिया। इस कुदरती कहत [Natural Calamity] के साथ-साथ आइवन चतुर्थ की लिवोनियन युद्ध [1858 से 1883] में असफलता से देश की आथिक स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी। दासता किसान को अपने बन्धन मे बाँधती जा रही थी। बिगडी हुई आर्थिक स्थिति से आक्रान्त होकर किसानो मे विद्रोह पैदा हुआ। विद्रोह तथा अनुशासनहीनता की भावना को पोलैंड द्वारा चढाई व मास्को पर कब्जा [1607–1612] से और भी प्रोत्साहन मिला। 1605, 1608, 1670 में कुछ प्रसिद्ध विद्रोह हुये। उचित नेतृत्व एव सगठन होने से इनको कठोरता ने दबा दिया गया। किसान विद्रोहो के अतिरिक्त शताब्दी के आरम्भ मे ही पोमेस्ती वर्ग ने किसानो की श्रम-शक्ति तथा शरीर पर कानूनी अधिकार अपने आप ग्रहण कर लिया। इनका प्रभाव और शक्ति इस बात से ही प्रकट होती है कि रोमानोव वश को जार चुना गया। यह स्वय बहुत बडे पोमेस्ती भूस्वामी थे। अब किसानो की स्वतन्त्रता का प्रायः पूर्ण विनाश हो चुका था। बारशीना पद्धति, कृषि दासता के यन्त्र के रूप मे बडे पैमाने पर प्रयोग होने लगी।

18 वी शताब्दी देश मे आनेवाले युगपरिवर्तन की अग्रिम सूचना थी। इस समय मे नया भविष्य तथा नये दिशा मे प्रगति के लिए कदम उठाया गया। इतना सब होने पर भी कृषि मे कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। महान पीटर की हिम्मत शक्तिशाली भूस्वामियो से टक्कर लेने की न पडी। एक ही बडा परिवर्तन दिखाई पड़ता है; मुद्रा तथा व्यापार मे उन्नति के कारण एक नये तरह का किसान वर्ग सामने आया जिनको व्यापारी किसान [Trading Peasant] कहा जाता था। कुछ समृद्धशाली किसानों ने लाभ की दृष्टि से गाँवो से अनाज खरीदकर पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्रो में बडे व्यापारियो के हाथ बेचना शुरू किया। इस अनाज का निर्यात होता था। यूरोप का प्रभाव तेजी के साथ बढ़ रहा था। इससे प्रेरित होकर यूरोपीय सस्कृति, कला और विलासिता ने रूसी भूस्वामियो मे धन की आवश्यकता को बहुत बढा दिया।[1] इसका सीधा प्रभाव किसानो पर पडा। बारशीना और अब्रौक का कठोर भार बढ़ने लगा। इसके विरुद्ध कई किसान-विद्रोह हुए जिनमे से मुख्य अस्त्राखाँ [1705] और डॉन [1707] का किसान विप्लव था। 18वीं शताब्दी के औद्योगिक विकास ने भी कृषि को प्रभावित किया।

किसान कारखानो में मिलनेवाली अच्छी मजदूरी से शहरो की ओर आकर्षित हुए। कृषि की तरफ से ध्यान हटाकर उन्होने अधिक से अधिक समय कारखानो मे बिताना आरम्भ किया। खेती मे केवल उतना ही समय देते थे जितने से उनके स्वय उपभोग का अनाज मिलता रहे। इतने अधिक किसान शहरो मे चले गये कि अत्यन्त उपजाऊ प्रदेशो में भी उपज घटी और अनाज का दाम दूना हो गया।

19वीं शताब्दी के मध्य तक कृषि समस्यायें प्रायः उसी प्रकार की रही जैसी कि पिछले 200 सालों से थी। अनुपस्थित भूस्वामी शहर के सुखों का आकर्षण, सैनिक सेवाएँ और दरबार की राजनीति को छोड़कर दुबारा कृषि की ओर आने के लिए बाध्य हुए। सालो तक स्वामी के स्वयं गावो में न रहने से भयकर कुप्रबन्ध और अत्याचार चल निकला था। गिरता हुआ उत्पादन एक समस्या बन गया क्योकि परिस्थितियो से लाचार होकर किसान ने केवल अपनी जीविका के लिए खेती करना शुरू कर दिया। अनाज का दाम बढ़ता गया। इससे लाभ उठाने के लिए भूस्वामियो ने अपने निरीक्षण मे उत्पादन कराने का सोचा। इसके अतिरिक्त नव-विकसित उद्योगों के अत्यन्त लाभपूर्ण आकर्षण ने पूँजी का महत्व और आवश्यकता बढा दिया। उस समय की आर्थिक व्यवस्था में पूँजी प्राप्त करने का एकमात्र साधन कृषि-उत्पादन में वृद्धि था। इंग्लैण्ड और फ्रास में नये-नये कृषि-यन्त्र और वैज्ञानिक तरीके निकाले जा चुके थे जिससे कृषि उत्पादन में आश्चर्यजनक प्रगति करना संभव मालूम पडने लगा। कृषि-दासता बहुत बडे रूप मे रुकावट बनकर खड़ी हुई। फिर भी नयी विचारधारा ने ग्रामीण क्षेत्र में कुछ परिवर्तन जरूर किये। दक्षिणी हिस्सो में भेड पालने और चुकन्दर [Suger Beet] की खेती में काफी पूँजी लगायी गयी। लेकिन 1825-1850 के बीच किसान और भूस्वामि दोनों की दशा बिगड़ती ही गयी। परिस्थिति को और गम्भीर बनाने मे, फसल न का होना बहुत बड़ा कारण था। भीषण अन्न-भाव और अकाल इस समय मे नियमित मेहमान बन गये। इनमे से मुख्य 1820-21, 1832-34, 1839, 1843-47 और 1850-51 के दुर्भिक्ष थे। कृषि की यह दुर्दशा पुराने ढग की खेती, तीन खेतो की पद्धति पर अनावश्यक जोर, केवल खाद्यान्न की उपज पर ध्यान, पशुपालन की ओर लापरवाही और खाद का अभाव था, और यह सब मूलतः दास प्रथा के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिणाम थे।

भूमि-स्वामित्व के प्रधान वर्ग

बौयर वर्ग का प्रभुत्व राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र से घटता गया। यह वंश-परम्परानुगत भूस्वामी अब अपने विशेष अधिकार खोकर पोमेस्ती वर्ग के चढ़ते सितारों के आगे प्रायः मिट गये। स्वामी वर्ग के इस परिवर्तन के साथ-साथ ही किसान भी

अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धो चुका था और दासता के बन्धनो में अब केवल श्रम ही उसका एकमात्र सामाजिक काम रह गया। खेती देश का मुख्य धन्धा थी किन्तु दासो द्वारा वस्तु उत्पादन कार्य की भी वृद्धि हो रही थी। लगातार युद्ध मे लगा हुआ देश किसानो के अधिकारो के लिए श्राप बन गया। युद्ध में भूस्वामी वर्ग की मदद आवश्यक थी। अतः उनके अधिकार बढते ही गये और दायित्व कम होता गया किन्तु किसानों पर बोझ का दबाव असह्य होने लगा।

इस समय के भूमि स्वामित्व के विचारधारा की बुनियाद यह थी कि मास्को राज्य जार की बोशीना सम्पत्ति है। किसानो के प्रवासी स्वभाव पर पूरी तरह कानून और प्रथा का कठोर अवरोध लग चुका था। बोशीना पर रहने वाले लोगो का स्वतन्त्र अस्तित्व, इस प्रकार, बोशीना मे ही विलय हो गया। भूमि के साथ उसपर रहने वाले किसान भी भूस्वामी की संपत्ति बन गये।

महान् पीटर ने बौयर वर्ग को नष्ट कर दिया। दूसरा प्रभावशाली परिवर्तन एक स्थायी सेना का निर्माण था। इसका सीधा प्रभाव भूमि-स्वामित्व पर पड़ा। अस्थायी भूमि-स्वामी [पोमेस्ती] की आवश्यकता ही समाप्त हो गयी। सीमा प्रदेश की देख रेख अब सेना का उत्तरदायित्व था। 18वीं शताब्दी के आरम्भ तक इस नई प्रगति ने इस भूस्वामी वर्ग का अस्तित्व प्रायः समाप्त कर दिया। 1684 तक बोशीना वंशानुगत सपत्ति थी और इसका विभाजन नही हो सकता था; पोमेस्ती भूमि-अधिकार जो कि केवल सेवाओं के बदले मे ही रखा जा सकता था, वशानुगत नही था। 1684 और 1714 के आज्ञा द्वारा इन दोनो को मिला दिया गया। सभी भूसम्पत्ति वशानुगत, अविभाजनीय व पारिवारिक बनी, तथा इन सबको राज-सेवा करना अनिवार्य हो गया।

1782 तक सामन्तो ने निम्नलिखित अधिकारो द्वारा अपना प्रभाव काफी बढ़ा लिया था। [1] बोशीना या वशानुगत सपत्ति को बेचना। [2] दास रखने का एकाधिकार। [3] कानूनी और पुलिस अधिकार मे वृद्धि। [4] किसानों को भूमि से पृथक बेचने का अधिकार। [5] अचल सम्पत्ति को सरकार के पास गिरवी रखकर सस्ता उधार प्राप्त करना। इसके लिए सामन्त बैंक [Nobles Bank] 1753 में स्थापित किये गये। इनकी पूंजी 7,50,000 रुबल थी। जिस समय बाजार में गिरवी रखने का ब्याज 20%, था यह बैंक केवल 6% पर सामन्तो को उधार देते थे।

18वीं शताब्दी के अन्त में भूमि स्वामित्व इस प्रकार था।

[1] चर्च स्वामित्व [Church Ownership]

[2] दरबार भूमि-स्वामित्व [Court Ownership]

[3] जार स्वामित्व [Tzar Ownership]

[4] राज्य स्वामित्व [State Ownership]
[5] अन्य स्वामित्व [Other Ownership]

चर्च स्वामित्व

कैथरीन द्वितीय—[1760] के समय मे करीब १० लाख व्यक्ति अर्थात रूस और साइबेरिया की ग्रामीण आबादी का करीब 14% इस श्रेणी में था। बड़े धर्माधिकारी और गिरजे भी दास रखते थे। मठो की भूमि कई बार राज्य ने ले लिया पर बार-बार यह उसे प्राप्त कर लेने मे सफल हुये। 1649 में जार एलेक्जी, 1701 में महान् पीटर, [1762] में पीटर तृतीय तथा [1864] में कैथरीन II ने इनको राज्य के अधिकार मे ले लिया। कैथरीन ने इस भूमि और दासो के प्रबन्ध के लिये एक अर्थ-विभाग [Economic Collegium] बनाया। इसके नाम के कारण इसके आधीन रहने वाले किसानो को आर्थिक किसान [Economic Peasants] कहा जाता है। इनका संगठन प्रायः उसी प्रकार था जिस तरह वोशीना संपत्ति का होता था। इस संगठन में भी किसानो की दशा बहुत अच्छी न थी। पहले इनको साल मे काफी कठोर बारशीना करना पड़ता था। कुछ जगहो पर 163 दिन प्रति वर्ष किसानो को मठ की भूमि पर काम करना होता और साथ ही साथ ओब्रोक भी मुद्रा में चुकाना पड़ता था। कैथरीन ने 1764 में बार्शीना उठा दिया। राज्य कर [Poll tax] के साथ अब हर किसान को $1\frac{1}{2}$ रूबल प्रति व्यक्ति ओब्राक देना निश्चित हुआ। इसका प्रभाव करीब २० लाख किसान परिवारों पर पड़ा। यह नयी व्यवस्था किसानो की दशा सुधारने मे विशेष मददगार न हो सकी। 1783 तक ओब्रोक बढ़कर करीब $3\frac{3}{4}$ रूबल हो गया। मठो की भूमि लेने का काम कठिन और पेचीदा था। ईमानदार शासन के न होने से 1764 की राजाज्ञा के बाद करीब २२ साल इस काम को पूरा होने में लगा। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन आर्थिक किसानो [Economic peasants] की दशा व्यक्तिगत भूस्वामियो के किसानो से अच्छी थी।

दरबार भूमि स्वामित्व

दरबार भूमि स्वामित्व काफी प्राचीन समय से प्रचलित था। 14-15 शताब्दी में मध्य रूस के काफी विस्तृत प्रदेश उनमे सम्मिलित किये गये। इनमें विशेष कर वह भूमि थी [Black Lands] जो कि उस समय तक व्यक्तिगत तथा दरबार स्वामित्व मे नही थी। दरबार भूस्वामित्व 18वी शताब्दी के अंत तक बढ़ता गया। 1772 मे दरबार के अंतर्गत 3,57,328 और 1782 में 5,97,238 पुरुष [Souls of male sex] थे। इस भूमि का मुख्य कार्य दरबार के प्रमुख राजकुमारो [princes] तथा कर्मचारियो को दी जाने वाली राजकीय अर्थ सहायता इकट्ठा करना था। इस

भूमि पर वारशीना और ओब्राक दोनों ही लिया जाता था। मुद्रा के प्रचलन के बाद इनको अधिकतर धन में ही वसूल किया गया। किसानो की स्थिति पोमेस्ती किसानों से अच्छी थी। इनको कम ओब्राक और श्रम देना पड़ता था। दरबार इन किसानों को आवश्यकतानुसार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे भेज दिया करता था जिससे बहुत असतोष था। इनका शासन दरबार के एक विभाग द्वारा होता था, जिसके प्रतिनिधि गाँव का प्रबंध करते थे। धीरे-धीरे कैथरीन द्वितीय के समय से दरबार की भूमि राज्य स्वामित्व में बदल गयी।

राज्य स्वामित्व

राज्य के प्रशस्त भूमि पर जो किसान बसे थे वे राज्य की सम्पत्ति थे। इन किसानो की मदद से महान पीटर ने अपनी औद्योगिक संस्थाओ के लिये श्रम शक्ति प्राप्त की। यह लोग राज्य की सम्पत्ति थे इसलिये राजाज्ञा के अनुसार इनको किसी भी काम पर भेजा जा सकता था। प्रोफेसर मेवर के अनुसार अगर इन कृषको का उचित प्रबंध किया जाता तो रूसी भूमि स्वामित्व पद्धति का यह उत्कृष्ट एवं उच्चतम आदर्श रूप बन सकता था।[1] कैथरिन द्वितीय ने इनकी दशा सुधारने का काफी प्रत्यन किया। इस समय के किसान आन्दोलन से डर कर, इन सुधारों को स्थायी रूप देने की जगह जारिना [Tzarina] ने इनको दासता में और अच्छी तरह जैकड़ना ही उचित समझा। 1742 तथा 1762 के जनगणना के बीच राज्यस्वामित्व मे 5,54,425 से बढ़कर 6,27,027 पुरुष हो गये।

जार स्वामित्व

महान् पीटर के समय में कुछ भूमि जार ने अपने परिवार वालों को वंशानुगत स्वामित्व में दे दी थी। इनको ज़ार की व्यक्तिगत सम्पत्ति माना जाता था। इसका प्रबंध एक अलग विभाग बनाकर या व्यक्तिगत रूप से किया जाता था। दरबार के किसानों के तरह ज़ार के भूमि और किसानो पर एक-सा केन्द्रीय नियंत्रण नही था। अलग-अलग सदस्य अपनी भूमि को अपने विचार और तरीके से चलाते थे। यहाँ पर कर की इकाई भिन्न थी। अर्थात प्रति पुरुष व्यक्ति के स्थान पर चार दम्पत्ति [four couples] पर एक साथ कर लगता था। अपने स्वामी के धन की आवश्यकताओं के अनुसार इनका ओब्राक घटता और बढ़ता रहता। कही-कहीं पर इस प्रकार की भूमि पश्चिमी योरप की कृषि प्रणाली का प्रयोग केन्द्र बनी। कुछ दशाओ में इससे लाभ हुआ किन्तु अधिकतर प्रयोग आरंभ होने के कुछ दिन बाद बंद कर दिये जाते थे।

---

[1] James Mevor : An Economic History of Russia, Vol. I, p. 267.

इसका कारण था कि कुछ दिनो बाद या तो स्वामी का शौक समाप्त हो जाता था, या उसे कोई नई चीज आकर्षित कर लेती थी। किसानो की मुसीबत का अन्दाज लगाया जा सकता है।

अन्य भूमि स्वामित्व

रूस और साइबेरिया के कुछ भागो मे किसानो का नया वर्ग 18वी शताब्दी में सामने आया जिसको पोलोव्नीकी [Polovneke] कहते है। यह किसान खेती करते थे, और उत्पादन को भूमि स्वामी के हाथ बॉट लेते थे। इस वर्ग की वृद्धि 18वी शताब्दी से आरम्भ हुई जब कि बहुत बडी सख्या मे भूमिहीन किसान इस वर्ग में शामिल हुये। इनको बिना आज्ञा के भूमि छोड़ कर चले जाने का अधिकार था। इस तरह रूस मे एक अजीब-सी परिस्थिति पैदा हो गयी। ऐसे देश मे जहॉ कि भूमि छोड़ कर जाने पर कितने ही प्रकार का प्रतिबध था, पोलोव्नेकी की स्वतत्रता पर एकदम रुकावट न थी। यह किसान अधिकतर स्वतत्र थे। शीघ्र ही इनके उधार लेने की प्रवृत्ति ने स्वतत्रता नष्ट कर दी। 18वी शताब्दी के मध्य से इनकी संख्या घटने लगी। इनको अपने उत्पादन का आधा भाग भूस्वामी को देना पडता था। इसके अतिरिक्त फसल काटना, भूसा निकालना, जंगल साफ करना, कपड़ा बुनना इत्यादि यह भूस्वामी के लिये करते थे। स्त्रियॉ और बच्चे उनके घरो पर काम करने के लिये बाध्य थे।

स्वतंत्र किसान उन किसानो को कहते हैं जिनको कि देश की सीमा की रक्षा के लिये सैनिको के रूप में रखा गया था। इस सेवा के लिये इनको भूमि दी जाती थी। इनका दायित्व दूसरे किसानो के समान था। एक विशेषता यह थी कि इनको अपने परिवार से कपड़े, हथियार और घोड़े से सुसज्जित, 15 वर्ष से अधिक के पुरुषो को फौज मे भेजना पड़ता था। इनके अतिरिक्त एक और प्रकार का भूमि स्वामित्व था। 'पुराने सैनिक' ऐसे व्यक्ति थे जिनका काम केवल सैनिक श्रम था। हर दूसरे साल इनको सेना में जाना होता था। जो लोग घर पर रह कर खेती करते थे उनको एक खास टैक्स देना होता था। इनका दायित्व स्वतत्र किसानो से इतना मिलता-जुलता है फिर भी 1762 की जनगणना मे इनको अलग स्थान दिया गया।

किसान की स्वतंत्रता

रूसी कृषि का संगठन आरम्भ मे किस प्रकार का था और इसका क्रमिक विकास लगभग 14 वीं शताब्दी तक किस प्रकार हुआ इस पर इतिहासकारो में मतभेद है। 14-15 वीं शताब्दी के बाद से यह कहा जा सकता है कि अग्रेजी ढॉचे से मिलती-जुलती तीन खेतो की पद्धति तक कृषि की प्रगति हो चुकी थी, लेकिन न तो इनमें एक-

रूपता थी और न व्यापकता। मास्को के आस-पास के क्षेत्रों में तो यह तरीका स्थापित हो चुका था लेकिन देश के दूसरे फैले हुए हिस्सो मे इसके पूर्ण विकास की ओर अलग-अलग स्तर की प्रगति ही दिखलाई पड़ती थी।

इस समय तक किसान धरती के स्वतंत्र पुत्र थे। अपनी इच्छा व सुविधा के अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की भूमि पर जाकर काम कर सकते थे। अधिकतर कृषियोग्य भूमि राजा की व्यक्तिगत सपत्ति थी या बड़े-बड़े सामंतो और सेनापतियो के हाथ बॅटी हुई थी। प्रसिद्ध रूसी इतिहासकार लाइशेंको के अनुसार कही-कही पर कुछ किसान परिवार एक ही भूमि पर बहुत दिन तक बसे रह गये इसका कारण वृद्धावस्था, बडा परिवार या सुविधाजनक वातावरण हो सकता है। धीरे-धीरे प्रवास-प्रिय स्वतंत्र किसान जगह-जगह पर अपनी जड़े जमाने लगे। किसानो के एक जगह पर बस जाने की प्रवृत्ति का एक कारण यह भी हो सकता है कि बढ़ती हुई आबादी से बिगड़ी आर्थिक दशा ने उनको ऋणी बना दिया। किसान अपनी एकमात्र सपत्ति—श्रम शक्ति के द्वारा एक जगह रहकर इन ऋणो को चुकाने के लिए बाध्य हुए। जिन ऋणो के भुगतान के लिए किसान जगह-जगह पर बसने लगे थे अनेको कारण से वे ऋणमुक्त न हो सके। ऋणो की बलात् वसूली से बचने के लिये यही किसान खेतो को छोड़कर भागने लगे। उत्पादन और धन की हानि ने शक्तिशाली भूस्वामियो को इस दिशा मे कठोर कदम उठाने के लिए उत्साहित किया। सोलहवी शताब्दी मे भागे हुये किसानों पर कानूनी प्रतिबन्ध लगे। अब इस कानून के पॉच बरस पहले तक के भागे हुये किसानों को पकड़ मॅगवाने का अधिकार भूस्वामियो को प्राप्त हुआ। इसमे कोई संदेह नहीं कि उस समय के शासन सगठन मे यह आसान काम नही था। इसी से कुछ विद्वानो का मत है कि किसानो को जमीन से सदा के लिए बॉध देने का कानूनी प्रयत्न एक खोखली-सी चीज थी।

स्वतंत्रता के ऊपर प्रतिबंध बढ़ता गया और 17 वी शताब्दी के आरम्भ मे इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से जनता पर पड़ने लगा। भूस्वामियो ने किसानो के इस तरह बॅध जाने का लाभ समझा और अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए लालायित हो उठे। सरकार में उनका प्रभाव बहुत गहरा था। कानूनी प्रतिबन्ध को वे अपने इच्छानुसार बढ़ाते गये। इसकी प्रतिक्रिया किसानो पर भी हुई और 17 वी तथा 18 वी शताब्दी में इसके विरुद्ध जगह-जगह लगातार कृषक विद्रोह होने लगे। उस समय तक मजदूरों और किसानो का कोई राजनैतिक और आर्थिक संगठन न होने से ओजस्वी नेताओ ने जिस उत्साह के साथ विद्रोह कराया, उससे कही भीषण कठोरता के साथ राज्य ने उन्हें दबा दिया। 1649 में "सोबर नियम" बना जिसके अंतर्गत जमीन छोडकर भागे हुये किसानो को [चाहे वे जब कभी भी भागे हो] फिर से वापस बुला लेने का अधिकार मिल

ही गया। स्वतन्त्र किसानो के भूमि का अधिकार बराबर कम होता गया और वह करीब करीब एक विशेष प्रकार के गुलाम बन गये जिनको "सर्फ "या" कृषी-दास" कहते हैं। एक विचित्र संयोग है कि रोमानोव वश ने ही किसानो को दासता की बेडियाँ स्थायी रूप से पहनाई जिसको तोड फेकने मे इन्ही मजदूर किसानो ने इस वंश का नाश कर दिया। दो महान् शासको ने (पीटर प्रथम तथा कैथरीन द्वितीय) जो अमर प्रयत्न देश की उन्नति के लिए किया उस पर सबसे बड़ा कलुष कृपिदासता को रूसी अर्थ-व्यस्था का एक अग बनाना है। जार सम्राटो के शासन मे खेती योग्य भूमि सामंतो के हाथ में इकट्ठा होती गई। इस भूमि पर लाभपूर्ण खेती करने के लिए श्रमशक्ति प्राप्त करना आवश्यक हो गया। इस कारण कृषी दासो की सख्या बराबर बढ़ती रही। यहाँ तक कि रूसी कृषी का यह एक विशिष्ट अग बनी।

17 वी शताब्दी के आरम्भ तक राज्य की भूमि [State domain] पर के किसानों को पूरी तरह जमीन के साथ बाँधा जा चुका था। वोशरीना और पोमेस्ती भूस्वामियों द्वारा भी वह बन्धन लागू किया गया किन्तु इसे अभी तक कानूनी अनुमति नहीं मिल पाई थी। किसानों की गरीबी के कारण उनके कर्ज का भार बहुत बढ़ा। इससे मुक्त होने के लिए उन्होने भूमि छोड़कर जाने का अधिकार बेच दिया और स्वामी के यहाँ काम करने का वादा किया। इसके बदले में स्वामी ने उनको ऋणमुक्त कर दिया। जो किसान इस प्रकार अपने को बेच देते थे वे किसान वर्ग से गिर कर गृह-दास के स्तर पर आ जाते थे। धीरे-धीरे किसान और गृह-दास का कार्य क्षेत्र और अधिकार आपस में मिलता गया। 17 वी शताब्दी के आरम्भ मे इनमें अन्तर बताना कठिन हो गया। भूस्वामियो की शक्ति बराबर बढ़ती रही। यहाँ तक कि 1765 तक किसानों के आचरण की जिम्मेदारी, साइबेरिया में निष्कासन तथा अपराधियों को कठोर कारा-वास [Hard Labour] देने का अधिकार प्राप्त हो गया। किसानो और भूस्वामियो का पारस्परिक सम्बन्ध एक विशेष व्यक्तिगत समझौता द्वारा निश्चित होता था। इसकी अवधि अधिकतर उसे 5 वर्ष और कभी-कभी 10 से 12 वर्ष होती थी। इसी माध्यम द्वारा वैधानिक रूप में भी किसानो को अपने मनचाहे तरीके से भूस्वामी बाँध लेता था। इस समझौते के अतर्गत भूमि के साथ साथ किसान को आवश्यक बीज, खाद और दूसरी वस्तुएँ मिलती थी। इन सुविधाओ के भुगतान मे कई प्रथाएँ थी जैसे वस्तु, श्रम, अथवा धन भुगतान।

वस्तु तथा मुद्रा भुगतान [Obrek]

भूस्वामी और किसान के आपसी सम्बन्ध के अनुसार सम्पूर्ण किसान वर्ग को बाँटा जा सकता है। इसका मापदण्ड होगा कि किस प्रकार किसान भूस्वामी के प्रति अपना उत्तरदायित्व पूरा करता था। इसमें मुख्य थे ओब्राक, बारशीना तथा द्वोरोवी

ल्यूद [obrok, bartshina and dvorovie lyude]। आदि काल से संसार में प्रायः सर्वत्र कृषि अधिकारों के भुगतान का साधन खेत में उत्पन्न वस्तु थी। जब प्रसंविदा [Contrac] बनता था तो उसी में इसका अंश निश्चित कर दिया जाता था। मध्यकालीन यूरोप में [14वी शताब्दी] प्रथा के अनुसार मजदूरी करने के दायित्व से किसान कुछ वस्तु देकर छुटकारा पा जाता था।1 इस वस्तु भुगतान को ओब्राक कहते हैं। एक किसान परिवार में पुरुष सदस्यों की संख्या [number of souls of male sex] पर निर्धारित यह एक निश्चित भुगतान था जोकि एक गाँव या गाँवों के समूह के लिए अलग-अलग लगाया जाता था। इसको पूर्ण तरह किसान और भू-स्वामी के समझौते पर छोड़ दिया गया था। यह किसी भी प्रकार कृषि आय से सम्बन्धित न था। अधिकतर इसकी मात्रा इतनी अधिक होती थी कि किसान अपनी कृषि-आय से उसका पूर्ण भुगतान न कर पाता या भुगतान के बाद उसके पास अपने लिये कुछ भी न बचता। दोनों हालत में उसे दूसरे कामों का सहारा लेकर धनोपार्जन करना आवश्यक था। यह प्रथा अधिकतर कम उपजाऊ जमीन पर प्रचलित थी जहाँ भू-स्वामी स्वयं खेती करके अधिक नहीं कमा सकता था। इस प्रथा में किसानों को काफी आर्थिक स्वतन्त्रता थी और साथ ही साथ अधिक से अधिक मेहनत और सफल उत्पादन करने के लिये प्रोत्साहन मिलता था। इसके अतिरिक्त स्वामी के आवश्यकता की सभी वस्तुएँ चूँकि ओब्राक से ही प्राप्त होती थी इसलिये भूमि-स्वामी का स्वार्थ और रुचि दोनों ही खेती और किसानों में बनी रहती थी। इस प्रथा के इतने बड़े पैमाने पर लागू होने का एक और कारण था। देश की अव्यवस्थित राजनैतिक स्थिति, और सदा होने वाले युद्धों से बाध्य होकर भूस्वामियों को अधिकतर राजधानी में या युद्धस्थलों में ही रहना पड़ता था। भूमि की देख-रेख और प्रबन्ध की झंझट से बचने के लिये ओब्राक भुगतान प्राप्त करना सबसे सुविधाजनक सिद्ध हुआ। लगभग 16वीं शताब्दी तक देश में मुद्रा का प्रयोग राजधानियों और शहरों को छोड़कर गाँवों तक बहुत कम पहुँचा था। इसलिये सभी ओब्राक भुगतान वस्तु या उपज में होते थे। सोलहवी सदी से मुद्रा का प्रचलन बढ़ता गया। उसी अनुपात में यह भुगतान भी वस्तु और उपज की जगह मुद्रा में लिया जाने लगा।

श्रम-भुगतान [Bartshina]

दूसरे तरह के भुगतान को बारशीना कहते हैं। इसके अन्तर्गत हर एक किसान को हफ्ते में निश्चित दिन अपने खेतों के अलावा स्वामी के खेतों पर काम करना पड़ता था। भारत में प्रचलित बेगार प्रथा से यह काफी मिलता-जुलता है। अन्तर केवल इतना

1 Clive Day : Economic Development in Europe, p. 538.

है कि बेगार की अवधि किसान और भूस्वामी के प्रसंविदे में नही लिखी होती। इसका निश्चय प्रथा के अनुसार होता है। बारशीना भूस्वामी का एक कानूनी अधिकार था जोकि एक प्रकार से किसानो को दिये गये अधिकारो का शुल्क था। इसमें भी कोई नियम या सामान्य प्रथा नहीं पाई जाती। अलग-अलग क्षेत्र में काफी अन्तर था। फिर भी 1780-1790 तक तीन दिन का बारशीना औसत माना जा सकता है। किन्तु कहीं-कहीं 5 या 6 दिन तक किसान को भूस्वामी के खेत पर काम करना पड़ता था।

स्वामी के खेतो में काम करने का अर्थ बराबर व्यापक होता गया और 17वी शताब्दी मे बारशीना में मछली पकड़ना, लकड़ी काटना, बगीचो की देखरेख, घर का काम, यातायात और दूसरी सभी सेवाएँ सम्मिलित हो गयी। आरम्भ में ओब्राक के समान यह प्रथा प्रचलित न हो सकी क्योंकि इसमें स्थायी संगठन और निरीक्षण की आवश्यकता पड़ती थी। थोड़े से बड़े-बड़े खेत ही इसका प्रयोग करते थे। ज्यों-ज्यों सामंतो और मठो के स्वामित्व में भूमि बढ़ती गयी, इस भूमि पर काम करने के लिये श्रम की आवश्यकता बढ़ी। किसानो की सदा बढ़ती हुयी गरीबी ने उनका अधिकतम शोषण सम्भव बनाया। यह देखा गया कि ओब्राक के साथ-साथ बारशीना के मिला देने से किसानो का अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नही कि इस प्रथा ने कृषि दास पद्धति के निर्माण और प्रचलन में बहुत मदद किया।

आवश्यक श्रम को स्थायी रूप में अपने भूमि से बाँध लेने का सबसे सुगम साधन बारशीना सिद्ध हुआ। स्वामी के खेतो पर और दूसरे कामो में किसान का इतना समय लगने लगा कि अपने खेत की देखभाल करने की शक्ति और सुविधा दोनो ही घटती गयीं। किसानो की गरीबी ने अपने शिकजे कसने शुरू किये। लाचारी का स्वार्थपूर्ण लाभ उठाकर स्वामियो ने किसान को बीज और औजार उधार दिया जिसका भुगतान उसे धन, उपज या मेहनत से करना था। छोटे-छोटे बिखरे खेत इतना बोझ न उठा सके। किसान को अपने खेत से भी हाथ धोना पड़ा। अब स्वामी उनको खेत भी किराये पर देता था। किराये की वसूली मालिक के खेतो पर काम करने के रूप मे होती थी। इस तरह आर्थिक रूप से स्वतत्र किसान सदा के लिये दासता में चला गया।

गृह-दास [Dvorovie lyude]

18 वीं शताब्दी में रूस के अलावा यूरप में कहीं भी आजीवन गृह-दास नही पाये जाते थे। यह दास और दासियाँ स्वामी के घर पर रह कर उनके सभी काम करते थे। इनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व अथवा अधिकार एकदम शून्य था। स्वामी के क्रोध, और क्रूरता का पूरा बोझ यही दास और दासियाँ उठाते थे।[1] बढ़ई, लुहार, जुलाहा,

1 Mevor Op. Cit. pp. 204-208

गायक, राजगीर इत्यादि सभी आवश्यक कार्यों के लिये इनमें से ही व्यक्ति चुने जाते थे कैथरीन द्वितीय के राज्यकाल मे [1862-1896) इनको अकेले या परिवारो में जानवरों के हाट पर ले जाकर बेचा जाता था। वास्तव में यह भी भूतपूर्व किसान थे। आर्थिक पतन के कारण हार कर अपनी स्वतत्रता का इन्हे पूर्ण परित्याग करना पड़ा। धीरे-धीरे वह स्वामी की सम्पत्ति बन कर रह गये।

सह-कृषि [Share-cropping]

एक अन्य प्रकार का भी किसान स्वामी सम्बन्ध था जिसको सह-कृषि कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत किसान स्वामी के साथ एक सहयोगी के रूप मे खेती करता था और सुविधाओं के लिये उपज का एक निश्चित अश स्वामी को देता था। यह प्रथा बड़े पैमाने पर लागू न हो सकी क्योंकि भूस्वामियो ने उपज का इतना बड़ा भाग लेना शुरू कर दिया कि खेती करना असम्भव हो गया। 16वीं शताब्दी तक यह प्रथा देश में यदाकदा ही पाई जाती थी।

राज्य और कृषि

विश्व सम्पर्क से दूर रहने वाला जारो का देश, रूस, कृषि के बारे में एक स्वतंत्र विचारधारा एवं स्पष्ट नीति निर्धारण कभी न कर सका। देश का राजनैतिक सगठन बहुत देर में शुरू हुआ। छोटे-छोटे राज्यों और सरदारो में विभक्त होने के कारण आपसी लड़ाई ही शासक वर्ग का सारा समय ले लेती थी। आरम्भ से ही कृषक और किसान के प्रति उच्च वर्ग के व्यक्ति उदासीन थे। उनके विचार से कृषि ऐसा धंधा था जिसको निम्न कोटि के व्यक्ति स्वभावतः ही करते है। इसमें खोज, विज्ञान, समझ या सुधार की कोई सम्भावना नही हो सकती। पृथकवाद का प्रभाव रूसी शासकों पर इतना अधिक था कि यूरोप के कृषि पद्धति के विकास से रूसी भूस्वामी और किसान दोनों ही 19वीं शताब्दी तक अनभिज्ञ रहे। सत्रहवीं शताब्दी में रूस एक राष्ट्र का स्तर प्रात् कर सका। केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की स्थापना का प्रयत्न आरम्भ हुआ। राजधानी में बैठा सम्राट दरबार के षड्यंत्र और राज्य-विस्तार में व्यस्त था। कृषि सम्बन्धी किसी 'नीति' की आवश्यकता होती है इसका अनुभव ही न हुआ।

सामंतशाही पर आधारित शासन इस परिस्थिति का मूल कारण था। ज़ार का संपर्क केवल सामतो तक सीमित था। उसके कार्य की परिधि भी यही सामंत निश्चित करते थे। प्रचलित विचारधारा भी इन प्रभावो से विकृत हो चुकी थी। लोगो को विश्वास था कि किसान कम समझ, आलसी तथा दरिद्र व्यक्ति है जोकि मूलतः काम नहीं करना चाहता। चूंकि अनाज का उत्पादन देश के लिये आवश्यक है इसलिये इनसे काम लेना ही होगा। किसान से काम करा लेने का अनुभव और प्रणाली केवल भूस्वामियो के पास

है। इसलिये सम्राट को इस दिशा में उन्नति करने के लिये इतना ही करना होगा कि भूस्वामियों को किसान और खेती का पूरा प्रबन्ध देना भी श्रेयस्कर है। इसमें किसी प्रकार का प्रतिबंध या हस्तक्षेप आर्थिक दृष्टि से हानिकारक होगा।

इसके अतिरिक्त जार तथा सामंत भूस्वामियों को अकाट्य रूप से विश्वास था कि किसान को सही मार्ग पर चलाने के लिये कठोर अनुशासन अनिवार्य है। इसका सबसे आसान और सुरक्षित उपाय है उनको दासता से जकड़े रहना। किसानों के स्वतन्त्रता का विचारमात्र अराजकता तथा अनुशासनहीनता को आह्वान देना है। राजनैतिक ढाँचे को बनाये रखना किसान की दासता से ही सम्भव है। असंतुष्ट एवं शोषित किसान द्वारा समय-समय पर होने वाले विरोध तथा विद्रोह इन विचारों का प्रमाण माने जाते थे। इस पृष्ठभूमि में कृषि सम्बन्धी नीति और इनकी विफलता को समझ सकना आसान हो जाता है। महान पीटर, कैथरीन द्वितीय तथा निकोलस प्रथम के सद्भावनाओं को निरर्थक सिद्ध होने का मुख्य कारण था कि वे दो परस्परविरोधी धाराओं को एक साथ चलाना चाहते थे। दासता और भूस्वामी के विस्तृत अधिकारों को बनाये रखने के साथ उन्होंने किसानों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। वे यह न समझ न सके कि किसानों की दासता ही उनकी प्रगति में इतना बड़ा अवरोध है कि बिना उसे दूर किये उन्नति असम्भव होगी। एलेक्जेन्डर द्वितीय ने जब यह समझा और दासों की मुक्ति के लिये उद्यत हुआ, उस समय तक दशा इतनी बिगड़ चुकी थी कि बिना समूल परिवर्त्तन किये किसानों को संतुष्ट नहीं किया जा सकता था। सम्राट को घेरे हुए स्थायी सलाहकारों ने मुक्ति अधिनियम [Emancipation act 1861] को इस तरह विकृत कर दिया कि सारा प्रयत्न ही विध्वंस हो गया और असीमित सद्भावना तथा सहृदयता लिये हुये उस नेक सम्राट को अपने जीवन की आहुति देनी पड़ी।

यह कहना अनुचित न होगा कि आदि काल से ही सभी शासक और ज़ारों की कृषि नीति का मूलाधार था—अधिकतम कर व उसकी वसूली में सुविधा जिससे उनकी विलासिता और सैनिक कार्यवाही का खर्च निकल सके।

पहला काम जो रोमनोव वंश ने शासन भार सँभालते ही किया वह था मीर का पुनर्संगठन और कर वसूली के लिये आपसी आश्वासन [Mutual guarantee] को फिर से संगठित रूप से प्रयोग में लाना। सुविधा का ध्यान रख कर हर करदाता को रजिस्टर करने का प्रयत्न किया गया जिससे कि वह एक क्षेत्र से ही सदा टैक्स दिया करे। पीटर महान् ने अपने समय में कर की वसूली के लिये अपनी सेना का प्रयोग किया। इनके अत्याचार के कारण बहुत से किसान अपनी जमीन छोड़-छोड़ कर भाग गये। इससे खेती में अव्यवस्था पैदा हुई। किसान की गरीबी और असन्तोष की वृद्धि में सहायता मिली। पीटर के कर-व्यवस्था के अनुसार स्वतन्त्र किसान, कृषि दास, गृह दास इत्यादि

में कोई अन्तर न रह गया। गृहदास [khorop] अभी तक कर नहीं देते थे। अब उन पर भी कर लगाया गया।

पीटर ने एक और बहुत बड़ा परिवर्तन कर-व्यवस्था में किया। उस समय तक कर उस भूमि पर लगता था जिस पर खेती की गयी हो। परिणामस्वरूप विस्तृत पैमाने पर भूमि खेती के बाहर चली गयी। इस कमी को दूर करने के लिये पीटर ने भूमि के जगह परिवार [Household] पर कर लगाया। यह भी सफल न हुआ क्योंकि लोगों ने बचने के लिये एक ही परिवार में बहुत से व्यक्ति शामिल कर लिया। कर-वृद्धि तो कम हुई पर गाँव की व्यवस्था बिगड़ने लगी। दुबारा फिर पीटर ने नई पद्धति चलाई। परिवार [Household] के स्थान पर प्रति व्यक्ति [per soul] पर कर लगाया। कर की मात्रा आबादी के साथ सम्बन्धित हो गयी और कम भूमि पर खेती करने की प्रवृत्ति भी न रही। 18 वी शताब्दी में खेती के क्षेत्रफल और किसानों तथा भूस्वामियों की समृद्धि में काफी प्रगति हुई जिसका मुख्य कारण पीटर की कर-व्यवस्था ही मानी जाती है। इन परिवर्तनों के साथ-साथ करवसूली का तरीका भी बदला। दो व्यक्तियों की जिम्मेदारी प्राप्त करने के लिये, सीधे किसान के बजाय, भूस्वामियो से कर लिया जाने लगा। भूस्वामी इसे अपने क्षेत्रो के किसानों से इकट्ठा करते थे। इस प्रकार भूस्वामी केवल भूमि और दासो के मालिक होने के साथ-साथ ज़ार के प्रतिनिधि के रूप में टैक्स-वसूली भी करने लगे।

उत्पादन संगठन तथा प्रणाली

रूसी कृषि के उत्पादन संगठन की अभी तक एक निराली पद्धति थी जिसे मीर अथवा ओबशीना [mir or obtschina] कहते हैं। यह ग्रामीण संगठन कितना पुराना है अथवा रूस में इसकी उत्पत्ति और विकास किस प्रकार हुआ इसमें बहुत मत-भेद है। लगभग 1550 के पहले के कृषि संगठन से 18 वीं शताब्दी के कृषि संगठन में कुछ सादृश्य अवश्य पाया जाता है किन्तु यह अत्यन्त अस्पष्ट ही रहा। बाद मे भी इसका रूप और कार्य-प्रणाली समय-समय पर और भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग-अलग रही। यह भिन्नता इतनी प्रबल है कि किस समय या स्थान पर पाया जाने वाला कौन-सा ग्रामीण संगठन मीर का सच्चा प्रतिनिधि रूप माना जाय, यह कहना प्रायः असम्भव है। 1861 तक के मीर सङ्गठन में मोटे तौर पर यह विशेषताएँ थीं—

1. इसकी सदस्यता वंशानुगत थी लेकिन नये सदस्य भी बनाये जाते थे।

2. सदस्य खेतो पर परिवार सहित काम करते थे और पट्टियो का सामयिक बँटवारा [periodic distribution] किया जाता था। यह बँटवारा श्रमशक्ति अर्थात् वयस्क काम करने वाले पुरुष, या परिवार में रहने-खाने वालो की संख्या के अनुसार होता था।

3. ग्रामीण सङ्गठन के सदस्य सार्वजनिक चरागाह, मछली के तालाब, जंगल इत्यादि का प्रबन्ध करते थे। इसके साथ अनावश्यक सार्वजनिक भूमि का इस्तेमाल, नई जमीन खरीदना अथवा विशेष अधिकार प्राप्त करना सामूहिक रूप से मीर के द्वारा होता था।

गाँव के इस सार्वजनिक भूमि स्वामित्व और उत्पादन पर मीर सङ्गठन की नीव थी। इसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई; उतना ही अस्पष्ट है जितना कि उसकी उत्पत्ति का कारण। प्राचीन रूसी परम्परा और प्रथाओं को आदर्श मानने वाले स्लाव भक्तो [Slavophils] के विचार से कृषि के क्रमिक विकास के साथ सम्मिलित रूप से मीर का भी जन्म और विकास हुआ। किसान की सहकारी प्रवृत्तियो का यह ग्रामीण सङ्गठन स्वाभाविक परिणाम था। इस प्रकार इस वर्ग के लोग यह नही मानते कि राज्य अथवा शासन की सुविधा से मीर का कोई भी सम्बन्ध रहा हो। दूसरे वर्ग के विचारक 16 वी शताब्दी से लगातार बढ़ते हुए राज्य के वित्त और शासन प्रबन्ध के कार्यक्रम का सीधा प्रभाव मीर सङ्गठन को मानते है। उनके अनुसार दास प्रथा पर आधारित भूस्वामित्व के कारण यह प्रथा विस्तृत रूप से प्रचलित हो गयी। सन्तुलित दृष्टि से दोनों विचार-धाराओं का अध्ययन करने पर मालूम पड़ता है कि मीर रूसी कृषि की अत्यन्त प्राचीन सङ्गठन प्रणाली थी जिसका विकास राज्य और दास स्वामित्व द्वारा मुख्य रूप से प्रभावित होकर 16 वीं शताब्दी के बाद हुआ। कीव रूस [Kiev Russia] तथा मंगोल काल में कृषि की यह विशेषता थी कि खास-खास कामो को सामूहिक रूप से किया जाता था जैसे भूमि का हस्तातरण; नये निवासियो को लेना, बेकार भूमि का प्रयोग इत्यादि। इस सङ्गठन का जो रूप 19 वी शताब्दी के प्रथम भाग मे पाया जाता था उसकी रूपरेखा 15 वी शताब्दी के अन्त तथा 16 वी शताब्दी के आरम्भ मे बनना शुरू हुई। भूमि का पुनर्बटवारा, सामुदायिक भूमि स्वामित्व तथा श्रम, और भी बाद मे इसका अग बने। किन्तु सदा से प्रथा पर अवलंबित विधान, सिद्धान्त और अधिकार इसका मूलाधार थे। समय एवं बाहरी रूप परिवर्तन इसमे कोई बुनियादी अन्तर न ला सके। दुर्बल राज्य सङ्गठन तथा सैनिक आवश्यकताओ के दबाव के कारण 17 वी और 18 वीं शताब्दी मे मीर पर ही राजकीय करो की वसूली का कार्य सौप दिया गया। यद्यपि 19 वी शताब्दी के मध्य तक सामान्य रूप से बकाया कर की वसूली का उत्तरदायित्व मीर पर नही आया था, शासन की सुविधा ने शीघ्र ही यह काम भी मीर के ऊपर लाद दिया। इस प्रकार यह कृषि-सङ्गठन राजकीय वित्त शासन प्रबन्ध का एक हिस्सा बन गया।[1]

---

[1] John Maynard Russian Peasant and Other Studies. p. 30.

रूसी भाषा मे गाँवो को 'मीर' कहा जाता है जिसका कि दूसरा अर्थ 'ससार' भी होता है। यह गॉव आत्म-निर्भर, बाहर की दुनिया से एकदम पृथक एव स्वशासित सङ्गठन था। इस सङ्गठन की प्रमुख विशेषता, सामुदायिक उत्तरदायित्व [mutual guarantee system], लगभग 16 वी शताब्दी से सामने आने लगा। इसके अंतर्गत उत्पादन, भूमि स्वामित्व, श्रम और आय का बॅटवारा और विशेषकर कर का बँटवारा व भुगतान की जिम्मेदारी अलग-अलग व्यक्तियो पर न होकर सामूहिक रूप से सारे गॉव अथवा मीर पर होती थी। कर के भुगतान के साथ दासों का भी दायित्व मीर सम्मिलित रूप से उठाता था। गॉव समुदाय या मीर अपने ऊपर लगे कर को उस क्षेत्र मे रहने वाले लोगो पर बॉट देते थे। सामुदायिक उत्तरदायित्व होने से अगर कोई सदस्य निजी कर-भाग न दे सके तो मीर को मिल कर उस कमी को पूरा करना पड़ता था। यह इतना बड़ा दबाव था कि किसान द्वारा कर न देना, सामाजिक बहिष्कार का आह्वान करना था। साथ-साथ यह भी था कि अगर मीर का किसान गॉव छोड़कर शहर में नौकरी करना चाहे तो भी उसे अपने हिस्से का कर अदा करना ही होता था। इस बात की छूट थी कि सदस्य किसान अपने खेत पर काम करने के लिये किसी दूसरे व्यक्ति से तय कर ले और स्वतः बाहर जाकर नौकरी करे। किन्तु यह प्रबन्ध उसका व्यक्तिगत प्रबन्ध होगा। मीर अथवा राज्य अपना सम्पर्क उस किसान से ही रखेंगे। इस तरह रूसी किसान जमीन के साथ ऐसा बँध गया कि उसका छूट निकलना किसी भी प्रकार सम्भव न था।

प्रसिद्ध यात्री मिकैञ्जी वैलेस ने लिखा है कि मीर सङ्गठन [जिसमें देश की 5/6 जनता बसती थी] वैधानिक प्रजातन्त्र शासन का उत्कृष्ट एवं अनूठा नमूना था। न केवल टैक्सो का विभाजन और भूमि का बॅटवारा इनका उत्तरदायित्व था वरन् सदस्यों द्वारा सामाजिक कर्तव्यो का पालन कराना भी इनका अधिकार था। न्याय का कार्य इनकी अधिकार-सीमा के बाहर था। पर छोटे दोषो और दुष्कर्मों का दंड निर्धारण मीर करते थे जैसे जुर्माना, जेल और कोड़े लगाना। गॉव का 2/3 मत प्राप्त करने पर किसी दुश्चरित्र अथवा समाजद्रोही को निष्कासन भी दे सकता था। इसके अतिरिक्त मीर के प्रतिनिधि को शासन में काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वह अपने क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार के अफसरो का सहायक माना जाता था। जिले का टैक्स निर्धारण, नये बसने वालो मे बेकार भूमि का वितरण इत्यादि कार्यों मे वह मदद करता था। अपने क्षेत्र की ओर से वह स्थानीय अदालत का सदस्य था और आवश्यकता पड़ने पर क्षेत्रीय समस्याओ को केन्द्रीय सरकार तक ले जाता था।

मीर के आतरिक शासन का कोई एक निश्चित रूप सभी जगह नहीं पाया जाता। प्रत्येक वयस्क पुरुष को भूमि के बॅटवारे के लिये एक इकाई माना जाता था।

1906 तक हर एक परिवार एक इकाई होता था न कि उस परिवार का कर्त्ता। 1906 के बाद परिवार के कर्ता को ही भूमि के बँटवारे और कर के हिस्से के लिये इकाई माना गया। इस दिशा में यह भी ध्यान रखा जाता था कि परिवार कितना बड़ा है और उसके पास कितने पशु हैं। भूमि बँटवारे का अर्थ यह नहीं हुआ कि गाँवो की भूमि ही किसानों को मिल जाती थी। किसान को केवल गाँव के भूमि का एक हिस्सा दिया जाता था जिस पर कि वह काम कर सके। उसका स्वामित्व मीर के पास ही रहता था। भूमि का विभाजन अनेक प्रकार से होता था। सबसे प्रचलित रूप यह था : गाँव के सभी परिवारों को उनमें वयस्क काम करने वालो की संख्या के अनुसार भूमि दी जाती थी। गाँव की जमीन को पट्टियों में विभाजित करके, श्रम शक्ति के अनुसार परिवारो में बाँट दी जाती थी। मकान, फ्लैक्स, तरकारी और दूसरी ऐसी आवश्यकताओं के लिये एक छोटा-सा बगीचा प्रत्येक परिवार की पैतृक सम्पत्ति होती थी। इस पर मीर समुदाय का अधिकार न था। घास के मैदान और जंगल या तो आवश्यकतानुसार बाँटे जाते थे या फिर सारा गाँव मिलकर उनका प्रयोग करते थे। खेतों का सङ्गठन प्राचीन तीन-खेत पद्धति पर था। यूरोप के दूसरे देशों के विपरीत रूसी तीन-खेत पद्धति में पट्टियों का बँटवारा आबादी में परिवर्तन के साथ-साथ बार-बार होता रहता था।

सामुदायिक कृषि पद्धति की एक विशेषता है जिसको आरटेल [artel] कहते हैं। शताब्दियों से आक्रांत और शोषित किसान संरक्षण और आत्मविश्वास की खोज में धीरे-धीरे इतना आपस मे बँध गया कि रूसी कृषि की एक निराली कार्य प्रणाली का जन्म हुआ। सुख और दुख, काम और आराम सभी में उन्होने साथी और साथ का सिद्धान्त अपनाया। इस प्रकार जीवन के विविध क्षेत्रों में सहकारिता का सहारा लेना काफी प्राचीन रूसी परंपरा है। किसी भी काम करने के लिये किसान सहकारी समिति अथवा आरटेल बनाता था। इनकी रूप-रेखा और काम का ढंग समय तथा स्थान के अनुसार बदलता रहा है। कृषि मे इनका सबसे विस्तृत प्रयोग मीर के सामुदायिक कृषि के तरह होता था। 1917 के क्रान्ति के बाद साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रेरित होकर उसकी श्रेष्ठता एवं व्यापकता दोनों ही निखर उठीं। आरटेल कार्य प्रणाली में उत्पादन सामूहिक रूप से होता था और अधिकतर उत्पादन के साधनो का सामूहिक स्वामित्व बना रहता था। मिलकर खेती करने से होने वाली उपज को आपस में बाँट लिया जाता था। व्यक्तिगत स्वामित्व का इसमे काफी स्थान था। निवास स्थान, निजी बगीचे के लिये जमीन, पशु इत्यादि किसान का अपना होता था। इनसे होने वाली आय उसकी निजी सम्पत्ति थी।[1]

1. For details abour Artel see Maurice Dobb, Economic Deve-

अब रूसी ग्रामीण संगठन अथवा मीर पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डाली जा सकती है। रूसी कृषि की इस समय मे कई त्रुटियॉ दिखलाई पड़ती है। इनका आधार मीर और आरटेल ही कहा जायेगा। खुले खेतो की पद्धति यूरोपीय कृषि की एक बहुत बड़ी कमजोरी थी। खुले खेतो के साथ-साथ जमीन का तीन हिस्सो में बॅटवारा करके अज्ञानतावश किसान खुद अपनी आय कम कर लेता था। जमीन के एक-तिहाई हिस्से पर कुछ भी उत्पादन नही होता। फसल की उचित अदला-बदली न होने से उत्पादन और कृषि का लाभपूर्ण होना दोनो ही घट जाता। मीर की बढ़ती हुई आबादी के कारण भूमि का पुनर्बटवारा बराबर होता रहा। इससे सभी सदस्यों को भूमि तो जरूर मिली लेकिन भूमि का परिमाण कम होता गया। पुराने किस्म की खेती का तरीका और अवैज्ञानिक खाद के साथ जब यह कमजोरी भी मिल गयी, तो किसानो की दशा पर बहुत बुरा असर पड़ा। यह जोत की कमी कितने बड़े पैमाने पर हुई, इन ऑकड़ों से विदित होता है।[1]

	1860	1880	1890
केन्द्रीय क्षेत्र	4	3·3	2·6
उत्तरी पूर्वी क्षेत्र	8·4	5·3	3·2

इसके अलावा किसी भी किसान को निश्चित रूप से भूमि के प्रति अपनापन अनुभव न होता था। वह नहीं जानता था कि चन्द वर्षों में उसकी जमीन किसके पास होगी। हो सकता है कि अगर उसने जमीन की बहुत अच्छी देख-रेख की तो अगले बंटवारे में किसी अन्य अधिक प्रभावशाली व्यक्ति को वह दे दी जाय। इसलिये जोतो के छोटे होने के साथ-साथ पुनर्बटवारे के डर ने उस छोटे से खेत को भी पूर्ण उपजाऊ अवस्था में बनाये रखने का प्रोत्साहन किसानो से छीन लिया। इससे भूमि की उत्पादकता पर गहरा असर पड़ा। वंशपरंपरानुसार संयुक्त परिवार के एक कार्यकर्त्ता के पूर्ण अनुशासन मे रहने की पद्धति ने रूसी कृषि मे रूढ़िवाद और पुराने विचारों को बड़े व्यापकता के साथ भर दिया। यह कर्त्ता परिवार पर पूर्ण अधिकार रखता था और अधिकतर परिवार का सबसे बूढ़ा सदस्य होता था। सामूहिक कृषि प्रथा के कारण सभी को अपनी फसल एक ही समय पर एक-सी विधि द्वारा बोना और काटना पड़ता था। इससे व्यक्तिगत उत्साह और प्रगति-प्रेम प्रायः नष्ट-सा हो जाता था।

---

lopment of Russia Since 1917 pp 223-224; L C. A. Knowles. Economic Development in the 19th century, p. 78, H. Schwartz Russia's Soviet Economy pp. 258 260.

1. Figures are in Desyantine. One desiantine=2 7 acres—Knowles, op. cit, p. 79.

मीर के द्वारा प्राप्त सुरक्षा और संरक्षण इतना विस्तृत और पूर्ण था कि किसानों को अपनी पूर्ण बुद्धि और कार्य शक्ति के साथ काम करने की इच्छा ही नहीं होती थी। संयुक्त दायित्व ने किसान को लापरवाह और आलसी बना दिया। वह कम से कम उतना ही कार्य करता था जितने मे दूसरे सदस्य उस पर उँगली न उठा सकें। खेत छोटे होने के साथ-साथ इतने बिखरे हुए थे कि उनका लाभपूर्ण प्रयोग होना बहुत कठिन हो जाता। एक व्यक्ति के पास बहुत-सी पट्टियाँ भी होती थी। 20 या 30 से लेकर कभी-कभी 100 तक एक व्यक्ति या परिवार के पास पट्टियाँ होती थी। केवल इतना ही नही, इनकी आपसी दूरी 51-20 किलोमीटर तक होती थी। ये दूरियाँ इतनी काफी थी कि एक पट्टी से दूसरी पट्टी तक जाने में अक्सर किसानो को सारे दिन की यात्रा करनी पड़ती थी। इससे होने वाली श्रम-हानि किसान के लिये असह्यनीय भार था।

आबादी के बढ़ जाने पर मीर पास की भूमि खरीद कर अपनी सीमा-विस्तार करते थे। नयी भूमियो के बँटवारे मे पुनर्बंटवारे के ही तरह बड़े पैमाने पर पक्षपात होता। प्रभावशाली व्यक्तियो को अच्छी जमीन पास की पट्टियो मे मिल जाती थी। एक तरह से देखा जाय तो मीर मे दिये गये शक्तिशाली सामूहिक अधिकारों का ग्रामीणो द्वारा स्वय न्यायपूर्ण प्रयोग करना प्रायः असभव-सा था। ससार के आधुनिक स्वायत्त शासन और ग्रामीण संगठनो में इसका पर्याप्त उदाहरण मिलता है। इस पक्षपात ने मीर की जनता को दो वर्गों में तोडना शुरु किया। धनवान और सफल किसान तरक्की करते गये लेकिन उनसे कम भाग्यशाली साथी आगे न बढ़ सके। इस परिवर्तन ने मीर की आंतरिक संगठन शक्ति को बहुत कम कर दिया।

सामुदायिक ग्राम संगठन मे कुछ बुराइयाँ भी थी। कृषक की कुशलता तथा अधिकतम मेहनत करने का उत्साह कभी बढ़ नहीं पाया था। वह केवल इतना ही काम करना पसन्द करता था कि मीर के दूसरे सदस्य आपत्ति न कर सकें। कृषि के ढंग में भी रूढ़िवादिता आ गयी और नये तरीके का अपनाना प्रायः असम्भव बन गया। भूमि के समबंटवारे से किसान सदा के लिये बँध गया। खेती को छोड़ कर या खेती के साथ और किसी काम को करने की बात वह नही सोचता था। इससे उद्योग तथा शहरों की उन्नति मे अवरोध पैदा हुआ। भूस्वामी तथा किसान संसार से दूर अपने गाँवों की सीमा को ही अपनी सीमा मान बैठे। इनका देश तथा विश्व से सम्पर्क न रहा। सामाजिक प्रगति तथा विचारों का उत्कर्ष ऐसी परिस्थिति में कदापि सम्भव न था। मीर संगठन के ऊपर बताये गये लाभ भी स्वार्थपूर्ण, अकुशल प्रबन्ध के कारण पूरे न मिल पाते थे। बाहर रहने वाले भूस्वामी अपने रिश्तेदार अथवा कर्मचारी पर ही सम्पत्ति का प्रबन्ध छोड़ देते थे। अगर उनको आवश्यकतानुसार धन मिलता रहा

तो सब कुछ ठीक समझ कर संतुष्ट रहते थे। असर यह हुआ कि कर्मचारी निरंकुश होकर मनमानी करने लगे। किसान को राज्य-कर तथा भूस्वामी के शोषण के साथ-साथ इन कर्मचारियो के लालच का भी बोझ ढोना पडता था।

इन सब बुराइयो के साथ-साथ मीर संसार की प्राचीनतम सामाजिक सुरक्षा पद्धति कहा जा सकता है। हर एक व्यक्ति को उसके आवश्यकतानुसार सुविधाये देने का प्रयत्न, विपद मे सहायता और कार्य मे सहयोग, मीर की सबसे बड़ी देन थी। कोई भी यह नही अनुभव कर पाता था कि वह अनाथ, निराश्रित या बेकार है। जन्म-सिद्ध अधिकार के रूप मे भूमि के पुनर्बंटवारे का नियम किसी भी सदस्य को बिना जीविका के साधन के न रहने देता। आत्मनिर्भरता [Self Sufficiency] और प्रजातंत्रात्मक ढॉचा लोगो में शान्ति और सतोष उत्पन्न करने के लिये आदर्श कहा जा सकता है। सामुदायिक श्रम काल के बाद, व्यक्तिगत रूप से अतिरिक्त परिश्रम द्वारा आयवृद्धि की छूट किसानो को सर्वदा अधिकतम प्रयत्न के लिये उत्साहित करती थी। यह प्रयास विशेषकर कुटीर उद्योग की उन्नति मे दृष्टिगोचर होता है। मीर संगठन से किसानो को बहुत लाभ तथा सुविधाये मिलती थी। सदस्यो के बीच भूमि के बराबर बँटवारे से सभी को लाभ था। भूस्वामी को कर मिलने में सुविधा होती थी आलसी अशक्त व्यक्तियो का आर्थिक भार समुदाय पर पड़ता था। किसानो को इसका सबसे बड़ा लाभ यह था कि समाज मे कोई भी भूमिहीन नही हो सकता था। सभी को जीविकोपार्जन का साधन - भूमि—प्राप्त थी। कोई किसान दूसरे से अत्यधिक अमीर नही हो सकता था। आपस में इतने निकटता से बँधे होने के कारण, किसानो में अत्याचार का विरोध करने की शक्ति भी मिलती थी। अप्रत्यक्ष रूप से भी अनेको लाभ थे। सामान्य श्रम, गरीब और वृद्ध की मदद तथा आपसी उदारता उनको सुन्दर सामाजिक सुरक्षा बीमा प्रदान करती थी। एक सामाजिक अन्न कोष का निर्माण किया जाता था जिससे निराश्रित का पालन होता था। मीर सामुदायिक साख पर राज्य या भूस्वामी से जमीन पट्टे [lease] पर लेता था। इससे सदस्यो को अधिक भूमि मिलना सम्भव हो जाता था।

मीर सगठन का महत्व तथा प्रभाव उन सम्पत्तियो पर अधिक था जहॉ बारशीना न होकर ओब्राक पद्धति थी। इनकी शक्ति उन स्थानो पर बहुत विकसित थी जहॉ पर भूस्वामी अधिकतर राज्य सेवा मे बाहर रहता था। ऐसी दशा मे मीर के आतरिक प्रबन्ध में किसानो को अच्छे पैमाने पर स्वायत्त शासन [Self Government] प्राप्त था। १९वीं शताब्दी के आरभ में बहुत विस्तृत रूप मे यही दशा पाई जाती थी।

ऐलेक्जाण्डर द्वितीय के दास-प्रथा सम्बन्धित सुधार के प्रयत्नो ने मीर को रूसी कृषक का एकमात्र संगठन बना दिया। इनको भूमि का पूर्ण प्रबन्ध सौप दिया गया। एक

वैधानिक शक्तिप्राप्त सस्था की तरह मीर किसान और भूस्वामी के बीच मध्यस्थ बना। 1861 के दास-मुक्ति तक तो इस समुदायिक ग्राम सगठन को मीर कहा जाता था, पर उसके बाद इसे ओबशीना [obtschina] की संज्ञा दी गयी। इसकी चार मुख्य विशेषताएँ थी।

1. भूमि का सामान्य अधिकार [common possession]
2. खेत की अनिवार्य समानता
3. समाज का कठोर वर्ग विभाजन
4. कर भुगतान का आपसी आश्वासन अथवा उत्तरदायित्व [mutual guarantee]

अत मे यह कहना अनुचित न होगा कि मीर संगठन रूसी कृषि और कृषकों की एक उल्लेखनीय विशेषता थी। लेकिन आधुनिक मुद्रा विनिमय युग में मीर उपयुक्त न सिद्ध हो सका और 19वी शताब्दी के अत मे वर्त्तमान शताब्दी के प्रथम चन्द वर्षों में यह प्रभावहीन होकर नष्टप्राय हो गया।

अध्याय ३

वस्तु निर्माण तथा उद्योग [१८६१ तक]

[Manufacturing and Industry] [upto 1861]

रूसी औद्योगीकरण की पूर्व कथा का लगभग वही क्रम रहा है जो कि संसार के दूसरे देशों में पाया जाता है। अर्थ-व्यवस्थाओं की शृङ्खला के अनुसार [प्रारम्भिक, सामंतवादी, पूँजीवादी, तथा समाजवादी] इसका भी रूप और क्षेत्र बदलता रहा। वस्तु उत्पादन [Manufacturing] तो मनुष्य की आवश्यकताओं से जुडा एक ऐसा कार्य है जो कि रूसी जनता सदा से करती आई है। इसके अंतर्गत अपने स्वय की आवश्यकताओं के लिए अथवा पास-पडोस वालो के लिए छोटी-छोटी चीजो का निर्माण करना आता है जैसे कपडा, चमडा और छोटे औजार। किन्तु उद्योग के अंतर्गत कारखाना उत्पादन पद्धति को रखना होगा जिसकी व्यापकता [उत्पादन तथा बाजार] बहुत अधिक थी और इनके काम का ढङ्ग भिन्न था। औद्योगिक पूँजीवाद के विकास तक इस क्षेत्र में [आर्थिक क्षेत्र के एक विशिष्ट अग की तरह] कारखाने नही बन सके थे। उलझन को हटाने के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु-उत्पादन [Manufacturing] तथा कारखाना उत्पादन [Factory] में अंतर किया जाय।

वस्तु-निर्माण का क्रमिक विकास

नवी, दसवी शताब्दी तक छोटे पैमाने पर स्वय के प्रयोग के लिए कुछ उद्योग पाये जाते थे जिनमें से मुख्य बढ़ईगीरी, कनवास बनाना, चमडा, कच्चा लोहा और औजार निर्माण था। इसकी प्रगति इतनी धीमी थी कि लगभग 17 वीं शताब्दी तक शहरो में वस्तु उत्पादन छोटे पैमाने पर केवल समाज के निम्न वर्ग के लोगों द्वारा किया जाता था। इस उत्पादन मे मुख्य प्रोत्साहन, संगठन एव आर्थिक सहारा व्यापारियो द्वारा प्राप्त था। व्यापार को और अधिक लाभप्रद बनाने के लिए इन्होंने अपने बाजार की आवश्यकता की चीजो का निर्माण कराना आरम्भ किया। इस तरह व्यापारिक-पूँजी पूँजी के ऐतिहासिक रूप मे प्रयोग होने लगी। इसमें विशेषता यह थी कि उत्पादन में पूँजी का पूर्ण प्रभुत्व आने में कई सौ वर्ष की देरी थी।

कारखानो की स्थापना तथा वस्तु-उत्पादन की वृद्धि दोनो पर समकालीन राजनैतिक स्थिति तथा सैनिक दृष्टिकोण का बहुत गहरा प्रभाव था। 17वीं शताब्दी तक देश

राजनैतिक रूप से अत्यन्त अस्थिर तथा असंगठित था। परिणामस्वरूप सभी शहरों का निर्माण योरप से एकदम पृथक तरीके से हुआ। योरप के शहर व्यापारिक मार्गों पर स्थापित हुये और धीरे-धीरे औद्योगिक रूप से भी विकसित हुये। इसके विपरीत, रूस के शहर केवल शासन नियंत्रण केन्द्र तथा सेना का गढ़ मात्र बने। शहरों का विकास केवल देर मे ही नही हुआ, इसका उत्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं था। अतः वस्तु-निर्माण के लिए स्थायी केन्द्र न होने से इस दिशा मे प्रगति बहुत कम हो गई। जिस समय योरप में कारीगर सघ [Craft guilds] का निर्माण हो चुका था; रूस के शहरो में औद्योगिक वर्ग का जन्म भी नहीं हुआ था।

निर्मित वस्तुओं की माँग अत्यन्त कम थी। गरीब ग्रामीण जनता अपनी चन्द माँगो की पूर्ति आत्मनिर्भर ग्राम सगठन [Self-sufficient Village economy] मे कर लेती थी। शहरों मे बसे लोग अधिकतर सरकारी या फौजी अफ़सर थे। धनवान लोग विलासिता की विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते थे और अन्य व्यक्ति अपनी आवश्यकता स्थानीय कारीगर द्वारा पूरी कर लेते थे। इस परिस्थिति में वस्तु-निर्माण का पिछड़ जाना स्वाभाविक था। इस समय तक अधिकतर उत्पादन कार्य समाज के कुछ वर्ग ही करते थे। प्रथम तो गाँव की प्राचीन वस्तु-निर्माण व्यवस्था थी। इसमें अपनी या पड़ोसियों की आवश्यकता के लिए धातु, फ्लैक्स, सिल्क तथा ऊन का सामान तैयार होता था। इसकी स्थानीय बाजार थी। 15 वी और 17 वी शताब्दी के बीच अधिकतर उत्पादन कृषक द्वारा अपने स्वयं के उपभोग के लिए होता था। किसान इस उत्पादन को खेती से बचे समय में करता। 16 वीं शताब्दी के अन्त तथा 17 वी के आरम्भ मे एक दूसरे प्रकार का बडे पैमाने पर उत्पादन आरम्भ हुआ। इसे भूस्वामी वर्ग अपने-अपने क्षेत्र मे अपने ही किसानो द्वारा चलाता था। किसानो से श्रम भुगतान [Bartschina] कारखाने में काम के रूप में वसूल करके, इन कारखानों का श्रम प्राप्त किया गया। बाद मे वस्तु या धन भुगतान [Obrok] करने वाले किसानों से भी इन पर काम कराया जाने लगा। इनके अतिरिक्त समृद्धिशाली किसानो में एक नया वर्ग सामने आया जिसने उन उद्योगों को चलाना आरम्भ किया जिनमे साल भर उत्पादन होता था और बड़े पैमाने पर श्रम की आवश्यकता पडती थी। इस क्षेत्र में सबसे पहले लोहा और नमक उद्योग किया गया। बाद मे खान, पोटास और धातु निर्माण [Metallurgy] भी सम्मिलित हो गया। कुछ सामत भी इस ओर आकर्षित हुये। इस समय की एक विशेष उन्नति उल्लेखनीय है। खानो और फौजी उत्पादन के क्षेत्र में राजकीय कारखाने बने। कुशल विदेशी कारीगरो को निमन्त्रित करके पश्चिमी यूरप की प्रगति का लाभ उठाने का श्रेय इन राजकीय कारखानो को ही प्राप्त है।

भूस्वामी, व्यक्तिगत तथा राजकीय कारखानो में कृषक-दास [Serf] द्वारा ही

श्रम प्राप्त होता था। जार, भूस्वामी और गिरजाघरो के भूमि से बँधे कृषि-दासो को खेती से हटाकर कारखानो में काम करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस प्रकार रूस के प्रायः सभी महान् उद्योगो की नीव दास श्रमिको के द्वारा पड़ी। इसका मुख्य कारण था कि उस समय स्वतन्त्र श्रमिक वर्ग का निर्माण नही हुआ था। किसान जमीन और खेती छोड़कर कारखाने मे काम करने को तैयार नही थे। इतना ही नहीं, भूस्वामी भी उनको छोड़ना नही चाहते थे क्योकि उनकी खेती के काम के लिए भी भारी आवश्यकता थी। यह स्पष्ट है कि आरम्भ से ही किसान कारखाने के बन्धन का विरोध करता था। यह विरोध दास-मुक्ति [Emancipation 1861] तक लगातार चलता रहा। कृषि से किसानो को बलात् हटा लेने से कमजोर आर्थिक कृषि एकदम अव्यवस्थित हो गई। किसानो के इस असतोष को दास-मुक्ति का मुख्य कारण कहा जा सकता है। बलात् कारखाना श्रम [Forced factory labour] की प्रथा लगभग 200 सालों तक चली। इस सम्बन्ध मे सरकार की नीति सदा अस्पष्ट रही। श्रमिको की दशा सुधारने के सभी प्रयत्न असफल हुए क्योकि यह प्रथा अभिन्न रूप से दास-प्रथा से जुड़ी थी। राज-कीय सरक्षण तथा प्रोत्साहन प्राप्त होने पर भी इसी प्रथा के कारण रूस का औद्योगिक विकास आशातीत रूप से न हो सका।

वस्तु निर्माण के क्रमिक विकास मे 15 से 17 वी शताब्दी के बीच कुछ विशेष परिवर्तन पाये जाते हैं : श्रम का सामाजिक विभाजन, मुद्रा अर्थ-व्यवस्था का विकास तथा वस्तु विनिमय बाजार का निर्माण। इन परिवर्तनो ने देश के औद्योगिक प्रगति मे प्रोत्साहन दिया।

पीटर प्रथम अथवा महान् पीटर के आने से इस दिशा मे मौलिक परिवर्तन हुआ। इस समय उपभोग के अतिरिक्त बड़ी मात्रा में वस्तु-निर्माण आरम्भ हुआ। विकास की यह दशा 19 वी शताब्दी के मध्य तक चलती रही जबकि पूँजीवादी कार-खाना पद्धति का उदय हुआ। यह कहना तो उचित न होगा कि रूसी उद्योग की नींव केवल महान् पीटर द्वारा डाली गई किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि वस्तु-निर्माण की आवश्यकता को अत्यन्त प्रभावशाली रूप में पीटर ने सामने रक्खा। आरम्भ से ही सम्राट पीटर और उसके सहयोगी योरप के व्यापारवाद के सिद्धान्त से प्रभावित थे। एक विलक्षण कुशल कारीगर होने के साथ साथ योरप भ्रमण से महान् पीटर में रूस के प्रगति की उत्कृष्ट इच्छा प्रकट हुई। योरप के उन्नतिशील देशों को देखकर रूस के इस लौह पुरुष ने तेजी के साथ देश की फौज तथा सुरक्षा को सुधारने के लिए मिल और कार-खाने बनाने शुरू किये। इस समय उत्पादन कार्य करीब-करीब पूरी तरह राज्य के द्वारा ही किया जाता था। इसलिए इस क्षेत्र की उन्नति राज्य के अतिरिक्त साधनों पर निर्भर थी। किसान के शोषण द्वारा भूस्वामियों ने विशाल धन-राशि एकत्र की, लेकिन औद्योगिक

विकास को उसका सहारा आगे चलकर ही मिल सका। कृषि-दासता के ढाँचे में बँधी हुई रूस की अर्थ-व्यवस्था में उपभोग के लिए उत्पादन होता था। साथ-साथ श्रम का सामाजिक वर्गीकरण न होने से उपभोग की वस्तुओं की माँग भी बहुत कम थी। पश्चिमी योरप तथा रूस के औद्योगिक विकास मे एक विशेष अन्तर था। पश्चिमी योरप की तरह, बढ़ते हुये उद्योगों को स्वतन्त्र औद्योगिक श्रमिक कृषि दासता के कारण प्राप्त न हो सके।

18 वी शताब्दी में दास-श्रमिक [Serf labour] उत्पादन की उन्नति में सबसे बड़ी रुकावट थे। श्रम प्राप्त करने की समस्या सम्राट पीटर ने दास-प्रथा के रूपांतर से हल करना चाहा। 1721 में एक राजाज्ञा द्वारा व्यापारियो को यह अधिकार मिला कि वे फैक्टरी मे काम कराने के लिए निवासियोंसहित पूरे गाँव को खरीद सकते है। ये गाँव सदा के लिए कारखाने के एक अङ्ग माने जायेंगे। इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों को कारखाने मे काम करने के लिए आज्ञा दी जाती थी। इस तरह के श्रम को नियत अथवा नियुक्त श्रम [Assigned or ascribed labour] पुकारा जाता था। इससे यह विदित होता है कि उद्योग की प्रगति हो तो रही थी पर धीमी थी। पीटर प्रथम के समय से पहले भी कुछ उद्योग थे किन्तु उनको वास्तविक प्रोत्साहन पीटर के राज्यकाल में मिला। इनमें से लोहा, हथियार, जहाज-निर्माण, ऊनी व सूती कपडा, सीसा, चमड़ा तथा रेशम विशेष उल्लेखनीय है। इनकी सख्या के बारे में कोई भी विश्वस्त आँकडे नही मिलते। फिर भी इतना माना जा सकता है कि पीटर प्रथम के राज्यकाल के अंत तक रूस मे करीब 200 बडे कारखाने थे। इनमें से अधिकतर राजकीय सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से ही बनाये गये थे। अर्थ और प्रबन्ध की दृष्टि से यह काफी कमजोर थे।

कैथरीन द्वितीय के राज्यकाल में [1762 1796] उन्नति का क्रम बराबर चलता रहा किन्तु इसके पक्के आँकड़ो मे भारी मतभेद है। इतना निर्विवाद है कि खनिज उद्योग [लोहा-कोयला] मे उत्पादन बहुत बढ़ा। यूराल पर्वत की विशाल खानो पर काम आरम्भ हुआ। इस क्षेत्र से रूसी उत्पादन का 90% ताँबा और करीब 95% लोहा प्राप्त होता था।

आधुनिक उद्योग की नींव तो 19 वी शताब्दी के प्रथम बीस वर्षों के बाद पड़ी। सम्राट नेपोलियन के वापस जाने पर [1812] जब देश स्थिर हुआ, तभी योरप से नयी औद्योगिक प्रणाली का रूस में प्रवेश हुआ, इसके आगमन से ही औद्योगिक विकास ने नई करवट ली। 1805 मे प्रथम वाष्प इंजन [Steam Engine] सूती कपड़ा उद्योग में लगा। 1817 में प्रथम वाष्प-नौका [Steam boat] बनी। 1836

में रेल तथा तार [Telegraph] का आरम्भ हुआ। 1857 में स्पात बनाने का बेस्मर प्रणाली पर परीक्षण आरम्भ हुआ। इस प्रकार कृपि-दासता के अवरोध के होने पर भी काफी बड़े पैमाने पर उद्योगों ने पुराना सगठन छोड़कर पूँजीवादी उत्पादन की ओर कदम बढ़ाया।

दास-मुक्ति अर्थात् मध्य 19वीं शताब्दी तक आते-आते सामन्ततवादी अर्थ-व्यवस्था तथा औद्योगिक उन्नति की आपसी तनातनी व विरोध सामने आ चुका था। उसमें किसी को सदेह नहीं रह गया था कि औद्योगिक अकुशलता, खराब उत्पादन और पिछड़ेपन का अकेला दोषी दासता है। यह प्रभाव इतना अधिक था कि ऊँचे टैरिफ से सुरक्षित होने पर पश्चिमी योरप के माल से घरेलू बाजार में भी सफल प्रतिस्पर्धा नहीं हो पाती थी। गृह-उत्पादन की प्रथा, पिछड़े हुये समाज का अल्प उपभोग, और गरीबी के कारण निर्मित वस्तुओं की माँग अत्यन्त कम थी। कुछ उद्योग तो इन कठिनाइयों के बावजूद भी विकास कर गये किन्तु इनकी संख्या बहुत थोडी थी। इतना विकास होने पर भी पश्चिमी यूरप की तुलना मे देश बराबर पिछड़ता जा रहा था। सूती कपड़ा उद्योग के अतिरिक्त (जिसमे 1866 मे 42 आधुनिक मिले और 94600 मजदूर थे) लोहा निर्माण उद्योग का विकास बंद था। 1840 मे शुरू होने पर भी रेल यातायात ने नाममात्र की उन्नति किया। आधुनिक साख संस्थाएँ लगभग नही के बराबर थी और प्रथम स्कंध प्रणाली व्यापारिक बैंक [Joint stock commercial bank] 1844 मे स्थापित हो सका। चलन मुद्रा [currency] अस्थिर होने के साथ-साथ विघटित पत्र-मुद्रा [Depriciated paper currency] होने से उद्योग और व्यापार पर बहुत धक्का पहुँचा।

उत्पादन संगठन

रूस के औद्योगिक विकास का संगठन किसी एक निर्दिष्ट पथ पर नही चला। कई दिशाओं से इसका सूत्रपात व विकास आरभ होकर 1861 तक इन मुख्य विभागों में परिणित हो गया।

१. राजकीय उत्पादन प्रणाली [State manufacture]

महान् पीटर की सैनिक, नौ-सेना तथा संरक्षण की आवश्यकताओं ने राज्य को वस्तु-निर्माण करने को उद्यत किया। देश के कुछ बहुत बड़े-बड़े कारखाने इस प्रकार बने। राजकीय उत्पादन को तीन मुख्य भागो मे बाँटा जा सकता है : पहाड़ी प्रदेश में लोहे के कारखाने, जहाज निर्माण की लकड़ी प्राप्त करने के लिये जंगल तथा अस्त्राखाँ [Astrakhan] का रेशम उद्योग।

राजकीय उत्पादन क्षेत्र में काम करने वाले किसान राजकीय कृषक [State

peasants] से भिन्न थे। राजकीय कृषकों को पोल टैक्स [Poll tax] तथा मुद्रा में ओब्राक देना पड़ता था किन्तु जो राजकीय किसान उत्पादन-क्षेत्र मे काम करने के लिये नियुक्त किये जाते थे उनको केवल श्रम में भुगतान करना होता। 1769 के बाद उन्हें इतनी सुविधा और मिली कि श्रम-भुगतान का एक अंश धन से भी चुका सकते थे। अधिकतर राजकीय गॉवो के आधे व्यक्ति कारखानों में कार्य करने के लिए बाध्य थे। बहुत अधिक विरोध होने पर राज्य की ओर से इसे घटाकर एक-तिहाई कर दिया गया। किसानो को केवल राजकीय कारखानो के अलावा उन व्यक्तिगत उद्योगो मे भी नियुक्त किया जाता था जिनको कि राज्य प्रोत्साहन देना चाहता हो। इस प्रकार के श्रम [Ascribed labour] की दशा [1741–1761] के बीच अत्यन्त शोचनीय हो गयी क्योकि साम्राज्ञी एलिजावेथ ने अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र के राजकीय उद्योगों को व्यक्तित प्रबन्ध मे देने की नीति अपनाई। कैथरीन द्वितीय ने इन उद्योगों को दुबारा राज्य के संरक्षण में लेकर बिगडी हुयी दशा को कुछ सम्हाला।

1724 मे पीटर प्रथम ने एक राजाज्ञा द्वारा देश भर के औद्योगिक श्रमिको का वेतन निश्चित कर दिया। राज्य द्वारा श्रमिको की मजदूरी निश्चित करने का संसार मे यह पहला उदाहरण है। राज्य यह प्रयत्न करता था कि इन सभी श्रमिकों पर एक-सा कर-भार पड़े। वास्तविकता में यह सफल न हो सका। फिर भी श्रमिको पर कर का बॅटवारा उन्हीं के द्वारा नियुक्त एक प्रतिनिधि-मण्डल करता था। अधिकतर राजकीय उद्योगो का प्रबन्ध तथा संचालन एक केन्द्रीय संस्था द्वारा होता था।

(2) हस्तान्तरित उद्योग [Possessional Manufacture]

इस वर्ग के कारखानो का जन्म 1721 की राजाज्ञा द्वारा कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्यक्तियो अथवा व्यापारियो के कारखाने तथा वह उद्योग आते हैं जिन्हें राज्य ने इनको हस्तातरित किया। इस वर्ग के उद्योगपतियो को राज्य-सेवा और कर से मुक्ति तथा अन्य सुविधाये भी दी गयी थीं। इस प्रकार के उत्पादन-सगठन की विशेषता यह थी कि गॉवो [और उसमे रहने वाले किसान] कारखाना मालिक से बॅधे न होकर उद्योग अथवा कारखाने की सम्पत्ति थे। उनका अस्तित्व कारखाने से पृथक नहीं किया जा सकता था। कारखाने के साथ ही साथ उन्हें भी खरीदा और बेचा जाता था। दूसरी विशेषता यह थी कि इन कारखानों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण होता था। उत्पादन, मूल्य, वेतन और काम का तरीका राज्य नियंत्रित एवं संचालित करता था। इस प्रकार यह विचारधारा सही नहीं मालूम पड़ती कि यह कारखाने पूँजीवादी उत्पादन के अग्रदूत थे। दासता के अन्त [1861] तक यह उत्पादन सङ्गठन पाया जाता था। दास-मुक्ति के साथ-साथ इस तरह के कारखाने भी विलीन होने लगे।

इस वर्ग के कारखाने की नींव उनके प्रशस्त अधिकारों में थी जिसे महान् पीटर ने प्रदान किया था। इनमे से सबसे बड़ा अधिकार भूमि के साथ उन पर बसे हुये किसानों को भी खरीद सकने का था। इसका विरोध होना स्वाभाविक था। साम्राज्ञी अन्ना ने 1740 मे इन पर प्रतिबन्ध लगाया। कारखाना मालिक भूमि के साथ किसानो को नहीं खरीद सकता ; किन्तु किसान भूमि के बिना खरीदे जा सकते थे। इस प्रतिबन्ध के विरुद्ध स्वामियों ने ऐसा आन्दोलन किया कि 1744 में उनको यह अधिकार दुबारा मिल गया। लगभग पूरे 18 वी शताब्दी में कारखाना स्वामी और भूस्वामियो के बीच इस विषय में अपने-अपने अधिकारो के लिये झगडा चलता रहा। 1762 मे पीटर तृतीय ने कारखाने के लिये पूरा गाँव खरीदने पर रोक लगाई। कैथरीन द्वितीय ने गद्दी पर आने के बाद इस प्रतिबन्ध को बनाये रखा। 1802 तथा 1808 मे कारखानो द्वारा किसानो के खरीदे जाने के अधिकार पर और अधिक रुकावटे लगीं। इस समय के विचारधारा के प्रभाव से 1796 में कारखानो द्वारा किसानो को खरीदना वर्जित कर दिया गया। इन सब प्रतिबंधो का असर यह हुआ कि कारखानो के लिये श्रम प्राप्त करना एक समस्या बन गई। 18 वी शताब्दी के अन्त तक अधिकतर कारखाने ऐसे व्यक्तियो के हाथ मे चले गये जिनको दास रखने का वशानुगत अधिकार था अर्थात् सामंत वर्ग [Boyer]।

(3) **भूमि स्वामी उत्पादन प्रणाली** [Votchinal manufacture]

इस प्रकार के उत्पादन व्यवस्था की मुख्य विशेषता यह थी कि भूस्वामियो द्वारा अपनी भूमि पर छोटे तथा मध्यम कोटि के कारखाने स्थापित होते थे जिनमे बोशीना के कृषि-दास काम करते थे। इनको कारखाना मजदूर का स्तर नही मिला था। परिवर्तन केवल इतना ही था कि अपना निश्चित श्रम-भुगतान [Bartschina], मालिक के खेत पर काम न करके, मालिक के कारखाने मे काम द्वारा चुकाना पडता था। अधिकतर किसी प्रकार का वेतन न दिया जाता। इस प्रकार के अवैतनिक श्रम के अलावा, इन कारखानों को और भी कई लाभ थे जिसके कारण इनकी इतनी उन्नति हुई। भूस्वामी के पास प्रचुर मात्रा में श्रम था जिसको वह मनमाने तरीके से प्रयोग कर सकता था। इसमे कोई सन्देह नही कि यह श्रम अकुशल, आलसी और लापरवाह था। किन्तु इसमे विशेष रुकावट न होती। उस समय के उत्पादन-कला मे कुशलता अपना बहुत अधिक महत्व नहीं रखती थी। इनके अतिरिक्त भूस्वामियो को अपना कच्चा माल निर्मित वस्तु के रूप मे बेचना अधिक लाभप्रद था। बोशीना मे अथवा उसके आस-पास के क्षेत्रो में बाजार आसानी से मिल जाते थे। माल के मुफ्त यातायात का भार कृषिदासों पर था। 18 वी शताब्दी के अन्त एवं 19 वी शताब्दी के आरम्भ मे प्रायः सभी वशानुगत भूस्वामी [Boyers] इस प्रकार के उत्पादन की ओर आकर्षित हुये। इसके प्रचलन का अन्दाजा प्रोफेसर क्लाइव के द्वारा सकलित इन आँकडों से लग सकता है। 1826

में कुल 2,10,568 श्रमिकों में से स्वतन्त्र श्रमिक 1,14,515, हस्तान्तरित श्रमिक 29,328 तथा बोशीना श्रमिक 66,725 थे।[1]

इन श्रमिकों की दशा बहुत ही खराब थी। इन पर भूस्वामी का पूर्ण निरंकुश अधिकार था। स्वार्थपरायण लोगों ने सरकार को यह विश्वास दिला रखा था कि सङ्गठन तथा अनुशासन के हित में सरकार के लिये किसी भी प्रकार उचित नहीं है कि वह भूस्वामी और कृषक के व्यक्तिगत सम्बन्ध में हस्तक्षेप करे। बोशीना सम्पत्ति—कृषि और उद्योग—उसके विशेषाधिकार प्राप्त स्वामी की निजी सम्पत्ति मानी जाती थी इसलिये सरकारी नियम से इनको मुक्त रखा गया। रूसी सरकार के संरक्षण का लाभ उठाने के लिये अट्ठारहवीं शताब्दी में इनका प्रचलन खूब बढ़ा। लगभग 1840–50 तक नये बनते हुये औद्योगिक श्रमिक वर्ग में अशान्ति, असंतोष एवं कारखाने के प्रति घृणा के बीज बोकर इस प्रकार की उत्पादन पद्धति का लोप होने लगा।

(4) **रूसी कुटीर उद्योग** [Russian kustar industry]

रूस के औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था में कुटीर उद्योग का बहुत महत्व है। इसके विकास में रूस तथा अन्य पश्चिमी योरप के राष्ट्रों में मौलिक भिन्नता मिलती है। प्रायः सभी स्थानों पर कारखाना उत्पादन शहरों में केन्द्रित कुशल कारीगर [Master Craftsman] तथा उत्पादकों के संघ [Craft-guilds] से हुआ। किन्तु रूस में एक स्थान पर केन्द्रित उत्पादक संघों की जगह दूर दूर तक फैले हुये घरेलू उद्योग [Household kustar Industry] ही उत्पादन व्यवस्था के सङ्गठन की नींव थे। कुस्तार उद्योग कृषि के साथ-साथ किये जाने वाले उस उत्पादन को कहते हैं जिसे किसान अपने घर पर ही चलाता था। उसमें और अंग्रेजी घरेलू उत्पादन प्रथा [Doméstic System] में विशेष अन्तर यह है कि कुस्तार उत्पादन में एक कारीगर वर्ग नहीं होता जो कि केवल वस्तु उत्पादन का ही काम करता हो। यहाँ पर उत्पादन ऐसे किसानों द्वारा होता था जिनको किसी प्रकार के उत्पादन में दक्षता प्राप्त हो किन्तु उनका मुख्य धन्धा खेती ही रहती थी। दूसरी विशेषता यह थी कि उत्पादन का ध्येय प्राचीन कृषक उत्पादन की तरह उपभोग न होकर विक्रय तथा लाभ था।

सदा से ही किसान अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को तैयार करता रहा है। किन्तु यह कहना उचित न होगा कि इसी से आगे चलकर कुस्तार उद्योग का जन्म हुआ। कुस्तार उद्योग का व्यापक प्रचलन 18 वीं और 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में पाया जाता है। प्रोफेसर जेम्स मेवर तथा प्रोफेसर टूगन-बरानोवस्की जैसे विद्वानों के अनुसार इस संबंध में रूस में अजीब प्रगति पाई जाती है। स्वयं उपभोग के लिये

---

[1] Clive Day, Op. Cit, p. 536.

प्राचीन तरह की उत्पादन-व्यवस्था पर, पीटर महान् ने आधुनिक उत्पादन कारखाना लाद दिया। स्वाभाविक था कि विकास के क्रम को तोडने का यह प्रयत्न पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सका। असफल कारखाना उत्पादन प्रयोग के अवशेषो मे कुस्तार उद्योग ने अपने प्रसार की शक्ति पाई। बहुत नीचे तरह की यान्त्रिक कुशलता और उत्पादन स्तर होने के कारण रूसी फैक्टरी एक प्रकार का विशाल गृह उद्योग था, जहाँ पर किसानो को कारीगर के रूप में इकट्ठा करके, अधिकतर बिना मशीन तथा वैज्ञानिक कुशलता के, उत्पादन कराया जाता था। इसलिये यह स्वाभाविक था कि अपना घर, जमीन और परिचित वातावरण छोडकर दूर शहरो मे जाने के बजाय किसान आसानी से कारखाने के तरह का उत्पादन अपने घर पर ही कर सकता था। 19 वीं शताब्दी के आरम्भ मे [1812] सम्राट नेपोलियन की चढाई से बहुत बडे पैमाने पर कारखाने विध्वंस हो गये। उनमे काम करने वाले कारीगरो ने अपने-अपने घर आकर बाजार के लिये उत्पादन शुरू कर दिया। आर्थिक कमजोरी तथा कुप्रबन्ध के कारण भी काफी कारखाने बंद होते रहते थे। इन सबमे काम करने वाले व्यक्तियो को अपनी कुशलता को प्रयोग करने का एकमात्र अवसर कुस्तार उद्योग मे मिलता था। किसानो की सबसे बडी सपत्ति उनकी कुशलता थी। कारखानो मे काम करके विदेशी विशेषज्ञो से शिक्षा पाकर यह उच्चतम कोटि के कारीगर बन गये। कुस्तार उद्योग मे इन्होने अपने उत्पादन के उच्च स्तर से कारखानो के लिये मुकाबला करना अत्यत कठिन बना दिया। पोमेस्ती भूस्वामी भी अपने-अपने किसानो को उस दिशा मे अग्रसित होने के लिये उत्साहित करते थे। इन सब बातों ने मिल-जुलकर कुस्तार उत्पादन पद्धति को बहुत आगे बढ़ाया। इनकी प्रतिस्पर्धा इतनी विकट हो गयी कि 19 वी शताब्दी के प्रथम 20 वर्षों मे इनका सामना न कर सकने से अधिकतर कारखाने व्यक्तिगत कुस्तार उत्पादन केन्द्रों में परिणित हो गये।

19 वी शताब्दी के आरम्भ से ही कुस्तार उद्योग का स्वर्ण युग चालू हुआ और निकोलस प्रथम के राज्यकाल मे अपने शिखर पर पहुँच गया। इसके साथ-साथ ही बड़े पैमाने के कारखाना-उत्पादको द्वारा इसका विरोध आरम्भ हुआ। कई बार सरकार पर दबाव डाला गया कि इस पर रोक लगा दी जाय लेकिन कोई विशेष सफलता न मिली। लगभग 19 वी शताब्दी के मध्य तक इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव रूस तक पहुँचा। मशीन, भाप का इंजन और पेचीदे वैज्ञानिक तरीको के आगे कुस्तार उद्योग को झुकना पड़ा। इन नवीन परिवर्तनो का लाभ उठाना बडी पूँजी पर आधारित, एक केन्द्रीय स्थान पर स्थापित कारखानो की ही सामर्थ्य थी। 1835-1855 के बीच मशीनो का प्रयोग इतने विस्तृत रूप से प्रचलित हो चुका था कि हाथ से काम करने वाले कारीगरो का महत्व तेजी से घटने लगा। महत्व घटने के साथ-साथ कुस्तार कारीगर अपनी बिगड़ी हुई दशा के कारण करीब-करीब पूरी तरह व्यापारियो के आर्थिक सहायता

पर आश्रित हो गये। कितने तेजी के साथ यह रूस के आर्थिक चित्र से उठे हैं, यह इस बात से पता चलता है कि 1866 मे अनुसूचित कारखाना तथा घर पर काम करने वाले कारीगरों में कुस्तार कारीगरो की संख्या प्रायः 70% थी। 1894 में यह घट कर केवल 8% रह गयीं। आगे चल कर उनको फिर से पनपाने की कोशिश हुई किन्तु इनका क्षेत्र केवल कलात्मक वस्तुओं के निर्माण तक ही सीमित रहा।

राज्य तथा औद्योगिक विकास

पूरे 18 वीं शताब्दी मे अधिकतर सभी उत्पादन राज्य की आवश्यकता पूर्ति के लिये तथा केवल कुछ अशो मे उच्चवर्ग के लिये किया जाता था। इससे समाज के सबसे बड़े अश ग्रामीण क्षेत्र के अपने घरेलू उत्पादन पर कोई प्रभाव नही पड़ा। इस समय मे वस्तु-विनिमय बाजार भी विकसित न हो पाये थे। लेकिन 19 वी शताब्दी में इन कारखानो का उत्पादन इतना काफी बढ़ गया कि जनता की छोटी-सी माँग को पूरा करने के बाद भी अतिरिक्त उत्पादन हुआ। पश्चिमी योरप से रूस यान्त्रिक कुशलता तथा उत्पादन व्यवस्था मे इतना पिछड़ा था कि माल का निर्यात संभव न हो सका। वह एक विशेष कारण बन गया जिससे सरकार तथा उत्पादक वर्ग यह अनुभव करने को बाध्य हुये कि उत्पादन पद्धति में समूल परिवर्तन किये बिना उद्योग उन्नति नहीं कर सकता।

रूस में राज्य एव उद्योगो का बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा है। दुनिया के दूसरे देशो के विपरीत रूसी उद्योग व्यक्तिगत लाभ के लिये आरम्भ नहीं हुये वरन् राज्य द्वारा निर्मित होने से इनका मुख्य ध्येय राजकीय आवश्यकताओ का पूरा करना था। पीटर प्रथम के समय निर्धारित औद्योगिक नीति अपने मूलरूप में, छोटे-मोटे परिवर्तनो के साथ, 19 वीं शताब्दी के मध्य तक चलती रही। राजकीय प्रोत्साहन तथा संचालन की मदद से, व्यापारवादी सिद्धान्त पर, औद्योगिक उन्नति करना इस समय की मुख्य नीति रही। साथ-ही-साथ हर प्रकार से व्यक्तिगत पूँजीपतियो की मदद भी राज्य करता था। बड़े उद्योगो के निर्माण में राजकीय खजाना पूरी सहायता देता था। इतना ही नही, बहुत बड़े तथा अत्यंत महँगे उद्योगो को राज्य ने पूर्ण रूप से चलाया। देशी उद्योगो को सहारा देने के लिये ऊँची टैरिफ नीति तथा बहुत से वस्तुओ के आयात पर पूर्ण प्रतिबंध लगा। श्रमिक प्राप्त करने की समस्या बलात् श्रम [Forced labour] तथा कृषि दासो का कारखानों में हस्तातरण के द्वारा हल की गयी। जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है कि वैतनिक श्रमिक पद्धति [paid labour system] की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित हो चुका था। पीटर प्रथम ने उद्योगों को प्रोत्साहन देने के जोश में ऋण तथा एकाधिकार [loans and monopoly] देने की भी नीति अपनाई

जिसके द्वारा केवल सामंत लोग ही लाभ उठा सके। एलिजाबेथ और अन्ना के समय में पक्षपात का बाजार गरम था, परिणामस्वरूप विस्तृत औद्योगीकरण की नींव न पड़कर समस्त अधिकार कुछ कृपापात्र व्यक्तियों के हाथ मे इकट्ठा हो गये।

कैथरीन द्वितीय के राज्यकाल मे [1760 से] भूस्वामी सामन्तों की शक्ति को फिर से बढ़ाया गया। महान् कैथरीन ने व्यापारिक तथा औद्योगिक स्वतन्त्रता को अपने औद्योगिक नीति का सिद्धान्त बनाया। अनेको एकाधिकार छीन लिए गये। अतर्देशीय संरक्षण मे औद्योगिक विकास होने के कारण उद्योगो पर इतने नियम लादे गये कि उत्पादन-व्यवस्था के उन्मुक्त विकास में रुकावट पैदा होने लगी। कैथरीन द्वितीय द्वारा आवश्यकता से अधिक नियमो को जब कम कर दिया गया तो बड़े पैमाने पर औद्योगिक निर्माण आरम्भ हुआ। ये प्रतिबन्ध इतने अधिक थे कि किसी भी फैक्टरी स्वामी को कारखाने का आन्तरिक प्रबन्ध तथा उत्पादन नीति स्थिर करना प्रायः असम्भव हो जाया करता था। राजकीय नियन्त्रण के कम होने के अतिरिक्त कुछ और भी कारण थे जिनके द्वारा 18 वी शताब्दी के अन्त तथा 19 वी शताब्दी के आरम्भ में औद्योगिक उत्पादन को बहुत सहारा मिला। एकाधिकार मे पले हुए उद्योगो के अंतर्गत एक कुशल कारीगर का वर्ग उत्पन्न हुआ जिनका महत्व बड़े कारखाने के लिए इतना अधिक था कि उन पर विशेष दबाव न डाला जा सकता था। एक स्वतन्त्र वैतनिक श्रमिक वर्ग बनना आरम्भ हुआ। खेतो पर काम करने के बदले में धन-भुगतान [Obrok] देने की प्रथा ने जोर पकड़ा। बड़े पैमाने पर किसान गाँवो को छोड़कर शहरो के तरफ रवाना हुये। 1796 की जनगणना के अनुसार 20 प्रतिशत ग्रामीण व्यक्ति 18 वी शताब्दी के अन्त तक खेती छोड़कर वस्तु उत्पादन में लग चुके थे। इस समय [1830-1840] उद्योगों की विशेष उन्नति में कृषि उत्पादन का मूल्य घट जाना भी काफी सहायक हुआ। 1830 तक भयंकर मंदी आई जिससे बहुत बड़ी संख्या में अनार्थिक [Uneconomic] भूमि छोड़कर किसान वैतनिक श्रमिक की तरह कारखाने में काम करने लग गये। नेपोलियन की चढ़ाई [1812] ने औद्योगिक उन्नति मे विशेष मदद किया।

18 वी शताब्दी में दास-श्रमिको की गिरी हुई दशा के कारण बराबर श्रमिक-अशान्ति बनी रही। जब तक कि उत्पादन का मुख्य साधन श्रम था, और वस्तु उत्पादन मे विशेष कुशलता की आवश्यकता न थी, बलात् श्रम [Forced labour] सुस्त होने पर भी लाभपूर्ण था। किन्तु जब से यन्त्रो का प्रयोग बढ़ा, कुशल तथा अनुभवी श्रमिको की आवश्यकता पड़ने लगी। बलात् श्रम की दशा में इस प्रकार के मजदूर मिलना प्रायः असम्भव था। 20 वी शताब्दी के आरम्भ तक यूरोप औद्योगिक क्रान्ति से गुजर रहा था। रूस के उद्योग के मार्ग मे दासता उसी प्रकार रुकावट बनी जिस प्रकार यह कृषि उन्नति में थी। 1824 में एक कानून द्वारा कृषको का अस्तित्व कारखाने से पृथक कर

दिया गया। 1835 में इनको फैक्टरी छोडने की भी आज्ञा मिली। इससे यह स्पष्ट है कि कारखाना मालिक दास-श्रमिको को लाभपूर्ण न पाकर उनको हटा रहे थे; क्योंकि उनके सहमति बिना इस तरह के कानून तथा 1840 की राजाज्ञा कभी पास न होती। 1840 मे सम्राट निकोलस प्रथम ने राजकीय किसानो को कारखाने से मुक्ति दिलाने के लिए आर्थिक मुआवजे का प्रबन्ध किया। इसका लाभ उठाकर करीब 15 हजार व्यक्तियो ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। अनिवार्य से एच्छिक श्रम का यह परिवर्त्तन काफी विरोध के साथ हुआ। इस दिशा मे प्रगति प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट हो जाती है।[1]

1	2	3	4
वर्ष	कारखाना सख्या	मजदूर-सख्या (हजार मे)	वैतनिक मजदूर सख्या 3 का प्रतिशत
1770	260	55·3	32.
1804	2,402	95 2	47
1812	2,322	119·0	50
1820	4,578	179·6	58
1825	5,261	210·6	54
1860	14,388	565·1	88

18 वी शताब्दी के अन्त तक उद्योग के विकास मे अनेको दिशाओ से मदद मिली। हालॉकि ओब्राक प्रथा ने किसानो को कुछ स्वतन्त्रता प्रदान की किन्तु दासता-प्रथा, संयुक्त परिवार, आपसी आश्वासन [Mutual guarantee] तथा अन्य बाधाओं ने किसानो को पूर्ण रूप से औद्योगिक श्रम मे न बदलने दिया।

19 वीं शताब्दी मे अधिकतर वह सभी कारण पाये जाते थे जिन्होने उस समय तक के औद्योगिक विकास को सहारा दिया था। इनके साथ-साथ कुछ विशेष घटनाओं ने इस प्रगति को और तीव्र बना दिया। सम्राट नेपोलियन की योरप विजय ने सभी देशो के औद्योगिक विकास में युद्धकालीन तीव्र उन्नति किया। अँग्रेजी और फ्रांसीसी माल का देश में आना एकदम बंद हो गया। इसके अलावा सम्राट पॉल प्रथम, एलेक्जेण्डर प्रथम तथा निकोलस प्रथम ने रूस की सीमाओ को काफी बढ़ाया। युद्ध और सीमा विस्तार ने अंतर्देशीय बाजार के विकास एवं संगठन पर बहुत प्रभाव डाला। 18 वीं शताब्दी की अँग्रेजी औद्योगिक क्रान्ति रूसी उद्योग मे संगठन एवं संचालन के नये विचार और नई पद्धतियाँ ले आई। उस समय का सबसे विकसित औद्योगिक देश इंगलैंड पुराने व्यापारवाद को छोडकर स्वतन्त्र व्यापार की नीति अपनाने लगा। इससे इंगलैंड ने मशीनो का निर्यात फिर से आरम्भ किया [1842] रूस ने बहुत बडे पैमाने पर मशीनें मँगा कर अपनी उत्पादन शक्ति को बढ़ाया।

[1] Lyashehenko Op Cit. p 337

अध्याय ४

कृषि-दासता तथा दास-मुक्ति

[Serfdom and Emancipation]

दास-प्रथा का विकास

रूस मे अत्यन्त प्राचीन काल से ही दास-प्रथा का उल्लेख मिलता है। प्राचीन रूसी कानून मे विशेषाधिकारप्राप्त सामाजिक वर्ग को 'ओग्नीशान' [Ognitschan] अर्थात् दास-स्वामी कहा गया था। इस प्रथा का प्रादुर्भाव युद्ध के कारण माना जाता है। छोटे-छोटे सरदारो तथा राजाओ मे विभक्त यह देश सदा ही आपसी लडाई से ग्रस्त था। युद्ध-बन्दी को दास बनाना सर्वमान्य परम्परा थी। इस प्रकार के युद्ध-दास तथा उनके वंशज 'केलाद' [Chelad] कहलाते थे। यही समाज की नीव थे। 12वीं शताब्दी मे इन दासो की सहायता से कृषि आरम्भ हुई। इससे पूर्व 11वी शताब्दी तक इनका निर्यात आय का मुख्य साधन था। बिना दासो के भूमि बेकार थी। अतः भूमि-स्वामित्व का उदय ही दासता को लेकर हुआ। समकालीन सामाजिक नियम था : 'यह भूमि मेरी है, क्योंकि जो व्यक्ति इस पर खेती करते है वे मेरे है।' दासो का खेती के लिये प्रयोग होने के कारण इनका नाम भी बदल गया। केलाद (युद्ध-दास) खोलौप (दास-कृषक) बन गये। इनका महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। हर प्रकार से स्वतन्त्र व्यक्तियो को दास बनाने की एक प्रचड लहर आई जोकि उस समय के अव्यवस्थित राजनैतिक सगठन मे बिना अवरोध बढ़ती ही गई।

यह खोलौप इतने लाभप्रद सिद्ध हुए कि भूमिधरो की लालच और भी बढ़ी। स्वतंत्र कृषको को भी किसी प्रकार भूमि से बाँधने का प्रयत्न होने लगा। १६वीं शताब्दी मे वोशीनी व पोमेस्ती भू-स्वामियो की विशेष वृद्धि हुई। इनमें से जो अधिक अमीर थे वे कम अमीर भू-स्वामियो के किसानो को लोभ देकर अपने यहाँ बुला लेते थे। किसानो के इस प्रकार स्थान बदलने से राज्य को उचित सेवा प्राप्त करने मे और कर-वसूली मे असुविधा होती थी। इसलिये स्वतत्र किसान के प्रवास पर अवरोध लगाया गया। प्रवास की स्वतत्रता से विहीन किसानो की व्यक्तिगत स्वतत्रता के छिन जाने में भी अधिक देर न हुई। इस प्रकार देश के एकमात्र आर्थिक कार्य–कृषि–में लगी हुई जनता दो वर्गों मे विभक्त हो गई—[१] भू-स्वामी वर्ग तथा [२] दास [खोलौप] एवं कृषि-दास [सर्फ] वर्ग। किन्तु प्रोफेसर मेवर, क्लूशेवस्की के विचार से सहमत है,

कि 'कृषि-दासता [Serfdom] का आरम्भ किसी भी कानून के द्वारा न होकर आर्थिक कारणों से हुआ।'[1] किसान अधिकतर बहुत गरीब था। जब कभी वह किसी भू-स्वामी के यहाँ काम करने जाता तो उसके पास औजार, घोड़े तथा आवश्यक पूँजी न होती। यह सब उसे भू-स्वामी उधार देता था। इस प्रकार हर किसान को राज्य-कर, भू-स्वामी की भूमि का लगान तथा उससे प्राप्त ऋण का ब्याज चुकाना पडता था। सब मिल-जुल कर यह इतनी बडी रकम हो जाती थी जिससे उऋण होना प्रायः असभव था। जब तक वह इसे चुका न दे, किसान स्वयं ही भूमि से बँध गया। इसके अतिरिक्त, कुछ किसान [old-livers] एक ही भूमि-स्वामी के यहाँ इतने अधिक समय कार्य कर चुके थे कि उन्होंने स्वयं ही कभी अपने प्रवास का अधिकार प्रयोग नही किया, जिससे वह धीरे-धीरे नष्ट हो गया।

फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि इन मौलिक आर्थिक कारणों को वैधानिक सहमति प्राप्त होने से कृषि-दासता के तीव्र विस्तार मे बहुत सहायता मिली। 15वी तथा 16वीं शताब्दी मे अनेको राजाज्ञाएँ जारी हुई जिन सब का केवल एक उद्देश्य था कि बिना अपना ऋण चुकाये किसानो द्वारा भूमि छोड़ कर जाने के अधिकार पर रुकावट लगाई जाय। जार फ्योडोर की प्रसिद्ध 1597 की राजाज्ञा से 5 वर्ष पूर्व तक के भूमि छोड़ कर भागे हुए किसानो को वापस बुलाया जा सकता था। 1607 में यह अवधि बढ़ा कर 15 वर्ष कर दी गई। लेकिन उनका प्रवास का अधिकार बना रहा। उनके ऊपर दो प्रकार की रुकावट लगी। प्रथम, भू-स्वामी के साथ अपना समस्त दायित्व चुकाये बिना किसान भूमि छोड कर नही जा सकता था। द्वितीय, कोई किसान अपने ऋण-भार से मुक्त होने के लिये अपने को भू-स्वामी के हाथ खोलौप [दास] की भाँति नही बेच सकता था। इस रुकावट का कारण यह था कि खोलौप पर राज्य-कर नहीं लगता था।

इस समय मे ही दासता प्रथा के कुछ अन्य रूप सामने आये जिनमें से विशेष उल्लेखनीय है बँधक-दास [Kabala Kholop], यह अस्थायी दास वर्ग था। किसान भू-स्वामी से लिये हुए ऋण का भुगतान हो जाने तक अपने आपको उसके यहाँ 'बंधक [Mortgage] रख देता था अर्थात् खोलौप की भाँति कार्य करना स्वीकार करता था। ऋण के भुगतान हो जाने के पश्चात् वह स्वतंत्र हो जाता था। कही-कहीं पर समझौते के अन्तर्गत बंधक-दास स्वामी के जीवन-काल तक ही दासता में रहता था। यदि कुछ परिस्थितियों मे वे अपना कर्ज चुकाने में असमर्थ रहते तो आपसी समझौते द्वारा पूर्ण दास [Full Kholop] की अवस्था स्वीकार कर लेते थे।

---

[1] Mevor Op. Cit., Vol. I. p. 62.

17वी शताब्दी मे रोमानोव वश [1613–1916] के आरभ से ही दासता की रूपरेखा और विस्तार का प्रसार हुआ। राज्य-कर की वसूली के हेतु जनगणना की गई जिसमे किसानो को भूमि-दास के साथ-साथ व्यक्तिगत-दास के वर्ग में रखा गया। राज्य की ओर से कर-वसूली की सुविधा के लिये यह प्रयत्न किया गया कि किसान एक निश्चित भूमि पर स्थायी रूप से बना रहे। इसके अतिरिक्त राज्य ने किसी भी प्रकार से वैधानिक दबाव के द्वारा दासता को बढ़ाने मे प्रत्यक्ष सहायता न दी। अप्रत्यक्ष रूप से यह अवश्य कहा जायगा कि राज्य ने दासता की वृद्धि को एकदम भूस्वामियो तथा किसानो का व्यक्तिगत समझौता मान कर अनियत्रित छोड़ दिया। किसानो की दीन दशा से नाजायज लाभ उठा कर बंधक-दासो [Kabala Kholop] की सख्या तेजी से बढ़ी। सम्राट एलेक्जी ने 1649 ई० में कुछ नियम बनाये जिनका गहरा प्रभाव पड़ा। अब भागे हुए किसानो को पकड कर वापस बुलाया जा सकता था चाहे वे कभी भी भागे हो। किसानो को दास-कृषक [Kholop] मे बदलने की गति और तीव्र हो गई। इतना ही नहीं, किसान के दायित्व का भार उसका वशानुगत [Hereditary] भार बन गया जिसे उसके बच्चे भी ढोते रहेंगे। 1649 ई० के नियम कृषि-दासता से सम्बन्धित अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग कहे जा सकते हैं। इन्होने एक पेचीदी एवं विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी। किसान के वैधानिक स्तर को निश्चित रूप से स्थिर न करके भू-स्वामी के ऊपर ही छोड दिया गया। किसान की स्थिति एकदम अस्पष्ट बनी रही। इसके पास संपत्ति [Possessior] थी किन्तु इसका स्वामित्व भू-स्वामी को प्राप्त था। इस प्रकार किसान अपने अधिकारो के लिये पूर्ण रूप से भू-स्वामियों पर आश्रित हो गया। किसान पर लगे राजकीय कर को भी, भू-स्वामी को मिलने वाले भुगतान का एक भाग बना दिया गया। इससे राज्य को कर-वसूली में बहुत सुविधा हो गई। प्रो० क्यूशेवेस्की के अनुसार इन्ही गॉठो से मिल कर वह भयंकर फदा बना जिसने किसानों को दासता मे जकड़ दिया।[1]

महान् पीटर ने अपनी सेना के लिये सैनिक प्राप्त करने के उद्देश्य से कृषक दासो मे से भर्ती शुरू किया। धन की आवश्यकता ने कृषक दासो पर भी कर लगाने के लिये पीटर को बाध्य किया। स्वतत्र किसान भूमि-दास [Serf] तथा कृषक-दास [Kholop] इन सब को एक वर्ग मे बॉध कर सम्राट पीटर ने अनजाने मे ही दासता का क्षेत्र अधिक विस्तृत किया। देश को नवीन दिशा मे ले जाने का श्रेय उसी सम्राट को प्राप्त है; किन्तु साथ ही दासता को व्यापकता तथा कठोरता प्रदान करने का दायित्व भी इन्ही पर है।

1 Mevor, Op Cit., p. 91.

साम्राज्ञी कैथरीन द्वितीय ने दासता को देश की आर्थिक व्यवस्था की नींव माना और इस दिशा मे कोई ठोस कदम उठाने से सदा बचती रही। 1825–1861 के बीच निकोलस प्रथम एवं एलेक्जेडर द्वितीय दोनो ने अपने राज्य-काल मे इस ओर ध्यान दिया। नैपोलियन के युद्ध के साथ प्रचुर मात्रा में फ्रान्स के प्रगतिवादी विचार रूस को प्रभावित कर चुके थे। जार दास-प्रथा मे सुधार करना चाहते थे किन्तु वे यह न निर्धारित कर पा रहे थे कि न्यूनतम अवरोध का मार्ग क्या होगा। अत में परिस्थितियो ने स्वयं इसका निर्णय कर दिया। 1861 में सरकारी तौर पर दास-प्रथा का उन्मूलन हुआ।

कृषक आन्दोलन एवं दास-मुक्ति

1762 ई० मे पीटर तृतीय ने एक राजाज्ञा द्वारा पोमेस्ती और बोशीनी भूस्वामियो को अनिवार्य राज्य सेवा से मुक्त कर दिया। इस सुधार से किसानो मे यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि अब शीघ्र ही उनके भी बन्धन ढीले कर दिये जायँगे। नये युग की आशा ने उनको स्वतन्त्रता के लिये अधीर कर दिया। परिणाम यह हुआ कि 18 वी एवं 19वी शताब्दी मे बराबर कृषक आन्दोलन चलता ही रहा। रह-रहकर यह आन्दोलन विद्रोह का रूप धारण कर लेता था। जार और भूस्वामी इस स्वतन्त्रता की माँग में अपने शक्ति की अवहेलना, अपने प्रभुत्व का पतन तथा किसानो की अनुशासनहीनता की गन्ध पाकर घबड़ा गये। सुधार एव पश्चिमी योरप की स्वतन्त्र विचारधारा को ही इसका जिम्मेदार समझा गया। बदलती हुई हवा के रुख को उनका रुढिवादी मस्तिष्क न समझ सका। बलप्रयोग से किसानो की इन समाजविरोधी प्रवृत्तियों को कुचल देने की कोशिश होने लगी। 1762 से 1769 तक विद्रोह जगह-जगह पर भड़कता रहा जिसे सेना ने कठोरता से दबा दिया। शोषित किसान 1775 में पूगाचेव के विद्रोह में खुले आम प्रथम बार सामने आये।

प्रो० मेवर[1] ने दासो के जीवन का जो वर्णन किया है उससे पता चलता है कि इतना सब होने पर भी कैथरीन द्वितीय के समय में कृषि-दासो का क्रय-विक्रय, भूस्वामियों का ओब्राक एव बारसीना वसूली बढ़ती ही गई। परन्तु इन्ही के राज्य-काल में [1762–1796] किसानो की दशा सुधारने के लिये उच्चतम स्तर पर विद्वानो एवं विचारको का ध्यान आकर्षित हुआ। 1765 मे राजकीय स्वतन्त्र आर्थिक समिति [The Imperial Free Economical Society] बनाई गयी जिसने इस विषय पर विरोधी विचार-धाराओं का अच्छा अध्ययन किया। इस दिशा मे अगला कदम 1768 में उठाया गया जबकि एक उच्चायोग की स्थापना हुयी जिसमे कि किसान और भूस्वामी दोनो ही

[1] Mevor, Op. Cit, Chapter 5.

सदस्य थे। दुर्भाग्यवश, यह सभी प्रयत्न कोरे सिद्धान्त तक ही सीमित रहे। किसानों की दशा बिगड़ती गयी। कैथरीन के चारो ओर प्रभावशाली भूस्वामियो का ऐसा जाल था कि वास्तविकता में कुछ न हो सका। 1775 ई० में कृषक-विद्रोह ने किसान-सुधार के विषय पर खुले हुये विचार-विनिमय समाप्त कर दिये। कैथरीन और उनके आने वाले ज़ारो मे यह विश्वास बैठ गया कि किसानो के मन में किसी भी प्रकार से सुधार की भावना देश की अर्थ-व्यवस्था को तोडने का कारण होगा।

1796 ई० मे पॉल प्रथम और उसके बाद एलेक्जेण्डर प्रथम के समय में यही दशा बनी रही। 1803 ई० में कृषकों की दशा सुधारने के लिये एक नया कानून बना जिसके द्वारा किसान व्यक्तिगत रूप से अथवा सम्पूर्ण ग्राम मिलकर, अपने तथा भूस्वामियों के बीच एक आपसी समझौता करके स्वतन्त्र हो सकते थे। इस समझौते का जार स्वयं निरीक्षण करता था। इसका उद्देश्य यह था कि भूस्वामियो को अपने दासो को स्वतन्त्र करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय। स्वाभाविक है इसकी प्रगति बहुत न होनी थी। 1804-1825 के बीच कुल 47,153 व्यक्ति स्वतन्त्र किये गये। स्वतन्त्रता के समझौते एकरूप न थे। कुछ लोग दासो से एक निश्चित रकम लेकर उन्हे मुक्त करते थे। यह धन राज्य की ओर से किसानो को उधार दिया जाता था, जिसको वे किस्त मे चुका देते थे। कुछ समझौतो मे बार्शीना और ओब्रौक की शर्ते लगी हुई थीं। 1825 तक इस क्षेत्र में कई सुधार किये गये। भूस्वामियो पर बहुत से छोटे-छोटे प्रतिबन्ध लगे जिनसे किसानो की दशा सुधरने की आशा थी। एलेक्जेंडर प्रथम के राज्य काल के अन्त तक [1825] इतने वाद-विवाद और अनेको राजाज्ञाओ ने किसानो की दशा में थोडा ही परिवर्तन किया। जो आज्ञाएँ अधिक प्रगतिशील थी, वे लागू न की जा सकीं। सबसे बडा अन्तर यह पडा कि भूस्वामी अब पहले इतने बडे पैमाने पर कृषि-दासों को दण्ड नही दे पाते थे।

इसके पश्चात् 1842 तक कई समितियाँ इस विषय पर बनाई गईं। सम्राट निकोलस प्रथम ने इसमे विशेष दिलचस्पी ली, जिसके फलस्वरूप 1842 मे एक राजाज्ञा निकाली गई। इतने दिनो के कठिन तथा विद्वतापूर्ण मेहनत को कानून का रूप मिला। इसमे दो विशेष बाते थी। किसान और भूस्वामी के आपसी समझौता का ऐच्छिक रूप [Voluntary nature] न बदला जाय तथा भूस्वामियो का वंशानुगत अधिकार कम न हो। आपसी समझौते द्वारा किसान को कितनी स्वतंत्रता मिलेगी, इस पर यह कानून चुप रहा। एक बार समझौता हो जाने पर इसे कभी तोड़ा नही जा सकता था। इस कानून ने भूमि स्वामित्व पूरी तरह से पोमेस्ती वर्ग के हाथ में रखा। निःसन्देह इससे किसानों की दशा सुधारने की इच्छा प्रकट होती है। लेकिन यह सुधार

कितना और किस रूप मे होगा, यह एकदम भूस्वामियों के हाथ में छोड़ दिया गया। अतः इन सुधारों का निष्क्रिय होकर प्रभावहीन हो जाना स्वाभाविक था।

1840-1844 मे एक ऐसी समिति बनाई गई जिसने कि ड्वोरोवी ल्यूद [Dvorovie lyude] अर्थात् गृह-दासों की समस्या पर विचार किया। समिति ने सलाह दी कि यह वर्ग राजा के लिए हितकर नही है तथा किसानो को इस वर्ग में सम्मिलित करने पर रुकावट लगानी चाहिये। इसलिए दो राजाज्ञाएँ 1844 ई० में निकाली गई जिनके अन्तर्गत गृहदास स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते थे परन्तु उनको बसाने के लिए भूमि नही दी जायगी। साथ ही साथ, यह स्वतन्त्रता स्वामियो द्वारा बनाये गये नियमो के अनुसार ही प्राप्त होगी। इन कानूनों की कमजोरियों ने स्वयं इन्हें महत्वहीन बना दिया।

1844-1847 के बीच बराबर सम्राट निकोलस अलग-अलग व्यक्तियों को इस विषय पर अध्ययन करने को कहते रहे। कई समितियाँ भी बनीं। परन्तु सदैव ही इस बात का प्रयत्न किया गया कि किसानो की दशा इतने क्रमिक रूप में सुधारी जाय कि उनको आने वाली स्वतन्त्रता का पूर्व-आभास न हो। लोगो का विश्वास था कि ऐसा होते ही किसान अपने कर्तव्य भूल जायँगे और आर्थिक-व्यवस्था मे विप्लववादिता [Anarchy] फैलना निश्चित है।

1848 में पश्चिमी यूरोप मे राज्य-क्रांतियों की जो आग भड़की उससे रूसी प्रगतिवादी विचारक सहम गये। क्रीमिया के युद्ध ने उनको इस ओर ध्यान देने के लिए दुबारा बाध्य किया। सम्राट एलेक्जेण्डर द्वितीय के समय तक हर विचारशील व्यक्ति को स्पष्ट हो चुका था कि दासता को हटाये बिना देश की उन्नति नही हो सकती। अपने पिता निकोलस की भाँति एलेक्जेण्डर द्वितीय भी सद्भावनाओं से प्रेरित होकर इस दिशा में ठोस कदम उठाने के लिए अधीर था, 18‹6 मे सम्राट की अध्यक्षता मे एक समिति बनाई गई जिसने ऐतिहासिक कार्य किया। 1857 में इसके सुझावों को आने वाले प्रसिद्ध दास-मुक्ति के कानून [Act of Emancipation] की नींव मानी जाती है, भूस्वामियों को यह अनुभव होने लगा था कि बहुत बड़े पैमाने पर महत्वपूर्ण परिवर्तन होने वाले है तथा उसके विरुद्ध समस्त शक्ति से जार तथा सरकार पर प्रभाव डालना अति आवश्यक है। समस्त देश में सुधार तथा दासों की स्वतन्त्रता पर उत्तेजनापूर्वक बहस हो रही थी। जार एवं उसके सलाहकार दृढ़ता के साथ नया मार्ग प्रशस्त करने मे संलग्न थे जिसमें भू-स्वामी वर्ग ने खुला असहयोग दिखलाया। 1856 की समिति कार्यशील थी और देश एक तूफान की भाँति आने वाले परिवर्तन की ओर आगे बढ रहा था।

विरोधी विचारधाराओं के बीच जार की सुधार के लिए अधीरता और 1856 में मुख्य समिति के अथक प्रयत्नो द्वारा फरवरी 1861 मे मुक्ति कानून [Emancipation

Act] बना। शताब्दियों से चली आई हुई दासता कम से कम वैधानिक रूप से समाप्त हो गई। यह कहा जा सकता है कि वास्तविकता में मुक्ति-कानून भूस्वामियों ने ही बनाया और इसीलिए वह इतना असंतोषजनक रहा। मुख्य समिति के अधिकांश सदस्य भू-स्वामी ही थे, इनके सम्मुख एक आदर्श प्राप्ति का लक्ष्य न था। उसके स्थान पर भू-स्वामियों के आर्थिक हितों की रक्षा तथा राज्य की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए मुक्ति कानून के नियम बनाये गये। जो कुछ भी सुधार हुआ, उसका श्रेय जार परिवार में दो सदस्यों को दिया जा सकता है। प्रथम, ग्रैण्ड डचेज एलीना पावलोवना। द्वितीय, ग्रैण्ड-ड्यूक कैन्सटेन्टाइन।

दास-प्रथा टूटने के कारण

आर्थिक कारण

रूसी कृषि दासता के टूटने के कारणों की जड़े इस प्रथा के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्तरों तक फैली है। देश के क्रमिक विकास मे 1840-1850 तक वह स्थिति आ चुकी थी कि नयी व्यवस्था की आवश्यकता सभी को अनुभव होना आरम्भ हो गया था। उच्च वर्ग के व्यक्तियों एव विद्वानों मे इस प्रथा को लेकर गहन विवाद चल रहा था। इसमे सदेह नहीं कि यह विवाद आम जनता से बहुत दूर रहा परन्तु शासक वर्ग एवं जार पर इसका प्रभाव पड़ा। कार्यसिद्धि के लिए इन्ही को प्रभावित करना आवश्यक था।

यदि देखा जाय तो कृषि-दासता [Serfdom] प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था [Natural economy] पर निर्भर रहती है। बाहरी सम्पर्क से दूर आत्मनिर्भर समूह मे बॅटा समाज ही इस प्रथा का लाभ उठा सकता है। ज्यो-ज्यो बाहरी प्रभाव, विचारधारा तथा सम्बन्ध विकसित होंगे, दासता की पकड़ अपने आप ही ढीली होती जायगी। 18 वी शताब्दी में ही भूस्वामी अपने निजी भूमि की उपज बाजार में बेचने लगे थे। इसमें फ्लैक्स, ऊन, कपड़ा इत्यादि मुख्य था। 19 वी शताब्दी तक तो यह भू-स्वामी काफी अच्छे पैमाने पर उद्योग भी चला रहे थे, किसानो द्वारा श्रम-भुगतान [Bartschina] से निर्मित यह वस्तुएँ अधिकतर दक्षिणी तथा मध्य रूस के उपजाऊ प्रदेशो से ही आती थी। उत्तरी पथरीले प्रदेश के भू-स्वामी मुद्रा [Obrok] लेकर अपने किसानों को उद्योगों मे काम करने की अनुमति देते थे। इस रूप में वे घर बैठे धन कमा रहे थे। दक्षिण-मध्य रूस के अनाज और कच्चे माल का आदान-प्रदान, उत्तर के औद्योगिक उत्पादन के साथ होना अधिक दिनो तक रुक न सका। इस प्रकार एक विस्तृत बाजार तथा वस्तु-विनिमय प्रथा के स्थापित होते ही व्यापारिक दृष्टि से बाजार के लिए उत्पादन

करने की ओर लोग आकर्षित हुये। दास प्रथा एव प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था के लिए यह मृत्यु का आह्वान था।

1820-25 की अनाज की भयकर मन्दी ने इस दिशा में लोगो का ध्यान खीच लिया। यह विश्वास उनके मन में घर करने लगा कि श्रम के सामाजिक विभाजन द्वारा ही [Social division of labour] इस मन्दी को दूर किया जा सकता है। आबादी को व्यापक रूप मे खेती से उद्योग की ओर जाना चाहिये और इसके लिए स्वतन्त्र श्रम होना आवश्यक है। कृषि-दासता मे किसान भूमि से बँधा था। अतः कृषि-दासता को दूर करना देश के लिए परमहितकर नीति होगी।

बाजार के लिए सफल कृषि उत्पादन करने में यह आवश्यक था कि भू-स्वामी उपज की लागत [Cost of Production] का पक्का पता लगा सके। मूल्य-व्यवस्था [Price System] मे व्यापारिक-वस्तु-विनिमय इसके बिना कभी सफल नही हो सकता। कृषि-दासता मे लागत का माप या अनुमान दोनो ही असम्भव था। भू-स्वामी को कृषि-दासो से कुछ सुविधाये [Obrok and bartschina] मिलती थी। इनके द्वारा वह खेती करता था। उपज की लागत तथा मूल्य में इनका अंश निर्धारित नहीं किया जा सकता था। इसलिए व्यापारिक दृष्टि से लाभपूर्ण खेती नही हो पाती। यह स्पष्ट है कि जब पूँजीवादी बाजार-मूल्य निर्धारण [Capitalist market price determination] की परिस्थिति पैदा हो चुकी थी तो देश की अर्थव्यवस्था में सामंतवादी कृषि-दासता [Feudal serfdom] का कोई स्थान न रहा।

राजनैतिक कारण

रूसी इतिहास युद्ध-सेना-सेनापति की त्रिमूर्ति के चारों तरफ ही बुना गया है। आइवन तृतीय, पीटर प्रथम, कैथरिन द्वितीय तथा एलैक्जैण्डर प्रथम जब तक विजय और विस्तार मे सफलतापूर्वक आगे बढते रहे, आर्थिक तथा सामाजिक रूढ़िवादी दासता का संगठन किसी प्रकार चलता रहा; किन्तु जब निकोलस प्रथम के समय मे देश ने टर्की, इंग्लैण्ड, फ्रान्स तथा सारडीनिया द्वारा क्रीमिया के युद्ध [1854-56] में पराजय एव अपमान की विभीषिका देखी, तो निर्विवाद रूप से अटल विश्वास उत्पन्न हुआ कि स्वतंत्र श्रम पर आधारित औद्योगिक पश्चिमी राष्ट्रो से किसी प्रकार भी रूस सामना नहीं कर सकता। इसलिए औद्योगीकरण के मार्ग को प्रशस्त करना होगा और उसकी सबसे बडी रुकावट, सामंतवादी दास प्रथा, को तोड़ना ही होगा।

सामाजिक कारण

यह देखा जा चुका है कि किसान विद्रोह समय-समय पर बराबर होते रहे किन्तु इनको दृढ़ संगठन तथा विवेकपूर्ण सचालन की कमी ने प्रभावहीन बना दिया। 1775

का पूगाशेव विद्रोह पहला पूर्ण विद्रोह था जिसमें जनता ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। इसके बाद से देश में असतोष, विद्रोह और दमन का कठोर चक्र चलने लगा।

18 वी शताब्दी मे इन विद्रोहो की तीव्रता एवं व्यापकता दोनो मे काफी वृद्धि हुई। सरकारी रूप से घोषित इनकी सख्या इस प्रकार रही है[1]—

1826-1834	148	विद्रोह
1835-1844	216	,,
1845-1854	348	,,
1855-1861	474	,,
समस्त	1,186	,,

सामाजिक दशा तेजी के साथ बिगड रही थी। किसान सामतो के विरुद्ध किसी भी मूल्य पर आवाज उठाने को तैयार हो चुका था। इन उपद्रवो मे सामतो ने अपना शत्रु तो पहचान लिया किन्तु उस शत्रु का शक्ति-सूत्र न जान सके। अपने प्रभुत्व को दी गई चुनौती को उन्होने स्वीकार किया। जार तथा राज्य की सैनिक शक्ति का सहारा लेकर किसानो मे बढती अराजकता को दबाना आरम्भ हुआ। इस समय तक उच्च शासक तथा भू-स्वामी वर्ग को यह विश्वास था कि स्वतंत्रता के नाम से ही किसानों में खुली क्रान्ति पैदा हो जायगी। समझ तथा सहानुभूति के स्थान पर बल प्रयोग से असंतोष तथा विरोध शान्त न होकर अंदर-अंदर सुलगते रहे।

इन सब कारणो से अवस्था इतनी खराब बन गई कि दास-मुक्ति का नाटक सुधार करने मे सर्वथा असफल रहा। सम्राट एलेक्जेण्डर द्वितीय की प्रेरणा तथा उपरोक्त आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक दबाव ने दास-मुक्ति का कानून 1861 मे पास करा दिया। किन्तु स्वार्थी और अदूरदर्शी सामतो ने इस योजना को ऐसा विध्वस किया कि दास-मुक्ति का अच्छा प्रभाव प्रायः पूर्णरूपेण नष्ट हो गया। इतना ही नही यह स्वयं एक असंतोष का कारण बन गया।

यह नही था कि 1861 तक कृषि-दासो की स्वतंत्रता की ओर कोई प्रगति नही हुई। अनार्थिक [uneconomic] दास-श्रम से होने वाली हानि को भू-स्वामी तथा औद्योगिक उत्पादक समझ चुके थे। उत्तर के कम उपजाऊ एवं औद्योगिक क्षेत्र मे बर्शीना के जगह पर ओब्रोक का प्रचलन बढ़ रहा था। 19 वी शताब्दी के आरम्भ से ही भू-स्वामी अधिकतर भूमि किसानो को ओब्रोक पर दे चुके थे। इससे उनको बँधी हुई आय निश्चित हो जाती थी। उनको खेती से मुक्त होकर उद्योग द्वारा लाभ उठाने

1 Lyashchenkco, op. cit., P. 370

का समय मिलता था। दक्षिणी तथा दक्षिणी-पूर्वी कृपि-प्रदेशों मे आरम्भ से ही दास-प्रथा नाम-मात्रा को ही थी। इन भागों मे सबसे प्रगतिशील कृपि होती थी। और रूसी गेहूँ का ९०% निर्यात इसी क्षेत्र से होता था। कृषि-दासता का केन्द्र—मध्य रूस की अत्यत उपजाऊ काली मिट्टी का विशाल प्रदेश था। यहाँ पर ९०% से अधिक उत्पादन श्रम-भुगतान [Bartschina] द्वारा होता था। खेती के अलावा भू-स्वामियों तथा किसानो का कोई भी दूसरा आय का साधन नही था। ससार से पृथक इस पिछड़े हुए रुढ़िवादी, विस्तृत क्षेत्र की अर्थ व्यवस्था का आधार दासता से प्राप्त श्रम था। इसी कारण अत तक यह क्षेत्र दास-मुक्ति के मार्ग मे रुकावटे डालता रहा तथा २० वी शताब्दी तक राजनैतिक उथल-पुथल का केन्द्र बना रहा।

दास-मुक्ति अधिनियम [Emancipation Act]

सर्वप्रथम यह मान लिया गया कि समस्त भूमि चाहे उसको भू स्वामी प्रयोग मे लाता हो या किसान भू-स्वामी की निजी सपत्ति है। पश्चिमी योरुप के देशो मे समकालीन कृषि-सुधारो से बहुत बड़े भूमिहीन किसान वर्ग का निर्माण हुआ जिसकी जीविका का कोई स्पष्ट साधन सम्मुख न था। मुख्यतः इसी वर्ग के असतोप के कारण विप्लव तथा क्रान्तियाँ हुईं, इसलिये सिद्धान्त रूप से यह प्रयत्न किया गया कि मुक्ति के बाद प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी भूमि होनी चाहिये। अधिक मात्रा मे भूमि छोड़कर शहरो की तरफ जाने की प्रवृत्ति को रोकने के लिये भू-स्वामियो को सबसे उत्तम तरीका यही मालूम हुआ कि किसानो के पास अपनी भूमि होनी चाहिये। वे स्वतत्र रहेगे तो कृषि छोड़कर उद्योग की तरफ जाने की उनकी इच्छा न होगी। भूमि मिल जाने का यह अर्थ नहीं हुआ कि वह अपनी भूमि बेचने अथवा गिरवी रखने का अधिकार भी पा गया। प्रत्येक किसान के पास कितनी भूमि होगी इसके सम्बन्ध में बहुत मतभेद था। भू स्वामियो को डर था कि यदि जीविकोपार्जन के लिये पर्याप्त भूमि किसानो को मिल गई तो वे सामंत भूमि पर कार्य न करेगे। यह निश्चित हुआ कि हर किसान को इतनी भूमि दी जाय जिससे उसकी जीविका चल सके और राज्य तथा भू-स्वामी के प्रति अपने सभी कर्तव्यो का पालन करने को वह बाध्य रहे। इसमें मदद करने के लिये कानून में यह निर्देशन भी रखा गया कि जहाँ तक हो सके व्यक्तिगत वोशीनी तथा पोमेस्ती सम्पत्तियों पर किसानो के पास लगभग उतनी ही भूमि छोड दी जाय जितनी कि दासता उन्मूलन के समय उनके पास थी। इसका अर्थ यह हुआ कि असमानता, असंतोष तथा अन्याय को दूर किये बिना ही दास-प्रथा की हालतो को मुक्ति के बाद के लिये भी आदर्श मान लिया गया। सुधार की भावनाओ से यह खिलवाड़ देखकर सरकार पर से किसानो की आस्था उठ जाना अवश्यम्भावी था। भूमि का बँटवारा और उसकी मात्रा-निर्धारण के नियम कुछ ऐसे विचित्र थे कि उनके सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय भू-स्वामियो के ही हाथ में

रहा। प्रो० लाइशेको के अनुसार दास-मुक्ति के बाद प्रति-व्यक्ति भूमि की मात्रा मे काफी कमी हुई। किसान को भूमि का स्वामित्व प्राप्त न होता था वरन् उसे भूमि एक अनिश्चित काल के लिये दी जाती थी। इस अधिकार के बदले मे किसान को श्रम अथवा धन देने का व्यक्तिगत समझौता भू-स्वामी से करना पडता था। इस प्रकार किसानो के दायित्व का निर्धारण पुराने तरीको से ही होता रहा।

कुछ समय बाद किसानो को भू-स्वामित्व भी दिलाया गया। दासो से मिलने वाले श्रम तथा मुद्रा-भुगतान के बदले मे सरकार ने भू-स्वामियो को मुआवजा देने की योजना बनाई। किसान को भूमि मुफ्त ही नही मिली। भू-स्वामियो ने अपने प्रभाव के कारण जमीन की बहुत ऊँची कीमत प्राप्त की। किसान को स्वामित्व पाने के लिये एक निश्चित धन-राशि मुआवजे के रूप मे देनी पडती थी। इस भुगतान का 4/5 भाग किसान को सरकार की ओर से उधार मिलता था। इस उधार को किसान 49 बराबर किस्तों में अपने टैक्स के साथ राज्य को अदा करता था। इस प्रकार राज्य ने ही एक अंश में उस धन को प्रदान किया जिससे किसानो की मुक्ति हो सके। इस वार्षिक भुगतान का पूरा लाभ गरीब किसान न उठा सका। मूल भुगतान तथा ब्याज के बोझ ने किसानो की दशा सुधारने के बजाय और खराब बना दी। 1904-1906 के बीच पिछले और भविष्य में बचे हुए भुगतानो को सरकार ने रद्द करके किसानो को स्वतंत्रता की तरफ ठोस कदम उठाया। भू-स्वामी के स्थान पर ग्राम समुदाय अथवा मीर को भू-स्वामित्व के अधिकार मिले। श्री के० ऐ० बीश्च-नूड्से के अनुसार 81.4% भूमि मीर के स्वामित्व को मिली तथा 18.6% व्यक्तिगत कृषक को।[1] दूसरी स्थिति में भी कर के लिये मीर ही जिम्मेदार था। मीर संगठन को पुनः जाग्रत किया गया। किसान तथा भू-स्वामी के बीच का यह एकमात्र सबध बना। यहाँ तक कि मुआवजे के भुगतान के लिये व्यक्तिगत किसान के स्थान पर सामुदायिक रूप से मीर ही उत्तरदायी था। इस भुगतान ने किसानो को मीर छोड़ने की स्वतत्रता न मिलने दिया। नये कानूनो द्वारा मीर एक 'सहकारी संगठन' न होकर 'सरकारी संगठन' बन गया। पुलिस के अधिकार, टैक्स लगाना, भूमि का सामयिक बॅटवारा इत्यादि इतने अधिकार मीर को मिले कि ग्राम समुदाय की क्षुद्र निरंकुशता [petty despotism] भू-स्वामी के कठोरता से भी अधिक असह्य हो गयी। जैसे प्रो० मेवर ने कहा है कि दास-मुक्ति से न तो किसानो को राजनैतिक स्वतंत्रता मिली, न भू-स्वामी को, परिवर्तन केवल इतना हुआ कि किसी को भी राजनैतिक स्वतंत्रता से स्थायी रूप से वञ्चित नही किया जा सकता था।[2]

---

[1] Knowles, op. cit. 77.

[2] Mevor, op. cit., vol. I., p. 416.

दास-मुक्ति के परिणाम [Effects of Emancipation]

दास मुक्ति से रूसी अर्थ-व्यवस्था मे एक नये युग का आरभ हुआ। इसमें असतोष, विद्रोह तथा दमन-चक्र निरन्तर चलता ही रहा। वे सभी कारण किसानो पर ही केन्द्रित थे जो कि अन्त मे चलकर 1917 की राज्यक्रान्ति के रूप में परिणित हो गये। किसानो की दशा तथा असतोष की जड़े दास-मुक्ति कानून में ही पाई जाती है। जिन उच्चादर्शों को सम्मुख रख कर इस ओर देश अग्रसर हुआ, उनकी प्राप्ति दुर्लभ बनी रही, जिस दासता से मुक्त करने के लिये सदियों से चली आई हुई आर्थिक तथा सामाजिक पद्धति के बदलने का प्रयत्न किया गया, वही दासता अपना रूप बदल कर एक व्यवहारिक प्रथा होने के स्थान पर वैधानिक मान्यताप्राप्त प्रथा बन गई। प्रसिद्ध रूसी सुधारक, हारजेन, मुक्ति अधिनियम को देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्राचीन दासता एक नये रूप मे बदल गयी। दासता का उन्मूलन न हुआ और देश को धोखा दिया गया।[1]

इसमें तनिक भी सदेह नही कि 4 करोड उद्धारित व्यक्तियो को सम्पूर्ण योरप के 2/3 क्षेत्रफल के बराबर देश में बसाना कोई हँसी नही थी।[2] उस समय की शासन-व्यवस्था की दशा बहुत खराब थी। घूसखोरी, पक्षपात, बेइमानी आदि से अत तक फैली हुई थी। साथ ही साथ स्वार्थी सामतो तथा भू-स्वामियो द्वारा निर्मित यह कानून यदि किसानो के आशानुसार उदार सिद्ध न हुआ तो कोई आश्चर्य नही। वास्तव में, इससे कोई भी संतुष्ट न था। क्योकि किसान एव भूमिधरो की आशाएँ परस्पर विरोधी थी। किसान अधिक से अधिक भूमि चाहता था किन्तु भू-स्वामी किसान से प्राप्त श्रम एवं भुगतान को त्यागना नही चाहता था। इतना ही नहीं, स्वयं भूमि-स्वामियो में अलग-अलग क्षेत्र में पृथक इच्छाएँ थी। उत्तर के औद्योगिक प्रदेश अपनी अनुपजाऊ भूमि किसानो को देकर उनसे कारखाने का श्रम प्राप्त करना चाहते थे, मध्य रूस मे काली मिट्टी वाले उपजाऊ प्रदेश कम से कम भूमि देकर बार्शीना पद्धति में किसानो के श्रम को पाना चाहते थे। इन सबके बीच का रास्ता खोज निकालना, जिससे सभी संतुष्ट हो जायँ, लगभग असंभव था। इन दोनो वर्गों को सतुष्ट करने के असफल प्रयत्न से राज्य ने उनका विश्वास एक साथ खो दिया। थोडी-सी स्वतन्त्रता पाकर कृषक और अधिक के लिए व्यग्र हो उठे : अपने अधिकारो में कमी देखकर भू-स्वामी विरोधी बन गये : सम्राट एलेक्जेण्डर द्वितीय ने सुधारो को जन्म देकर अपनी हत्या ही नही वरन् जारशाही के अत की घोषणा कर दी : यही उसके सद्विचारो का पारितोषिक था।

---

[1] Lyashchenko op. cit., p. 378.

[2] Excellent discussion in D. M. Wallace. Russia, pp 496-510

कानून मे चन्द ऐसी कमजोरियाँ छूट गयी जिसको अदूरदर्शिता तथा स्वार्थ दोनो का प्रभाव माना जा सकता है। दास-मुक्ति के पश्चात् किसान ने अपने को पूँजीवादी संगठन की ओर बढ़ती हुयी व्यापारिक अर्थ-व्यवस्था [Commercial Economy] में पाया। परन्तु खुली हुई प्रतिस्पर्धा का आधार, पूँजी पर अविलबित, बड़े पैमाने का उत्पादन था। उनके छोटे-छोटे खेत एव प्राचीन खेती का ढङ्ग उसके योग्य न था। नवीन वातावरण मे उनकी भूमि पाने की इच्छा एक आर्थिक आवश्यकता बन गई। दूसरी ओर भू-स्वामियो ने अपनी सपत्ति का वही हिस्सा किसानो को बेचा था जो सबसे कम उपजाऊ था। इसके साथ अधिक से अधिक भूमि प्राप्त करने के उत्साह में किसानो ने खेती योग्य भूमि ही खरीदने पर जोर दिया। चरागाह, तालाब तथा जगल बिना, उनके छोटे पैमाने की खेती और भी अनार्थिक बन गई। खराब जमीन एव ऐसी विकट परिस्थिति के दुष्परिणामो से बचने के लिये मुआवजे तथा राज्य-कर के दायित्व का भुगतान [बिना अधिक भूमि प्राप्त किये] कर पाना असभव था। इस अधिनियम के फल-स्वरूप सदियो से निरन्तर चली आई भूमि की भूख ऐसी प्रचड ज्वाला बनी, जिसमे कि समस्त देश लगभग अगले 60 वर्षो तक जलता रहा, और अन्त मे सन् 1917 में जार एव प्राचीन शासन पद्धति की आहुति लेकर ही यह शान्त हुई।

शीघ्र ही स्वतत्र कृषक पुनः उसी पतन की ओर चलने को बाध्य हुआ जहाँ से उसे उठाने के लिये इतना सारा प्रयत्न हुआ था। दायित्व को पूर्ण करने का साधन जब अपने खेतो से प्राप्त न हुआ तब किसान भू-स्वामियो के यहाँ उनके खेतो पर काम करने के लिये जाने लगा। इस कार्य एव इससे प्राप्त वेतन ने कृषक को ऐसा जकड़ा कि पुनः पुराने मालिको के पंजो मे वह फँसने लगा। दास पद्धति के एक नवीन रूप का प्रादुर्भाव हुआ।

दास-मुक्ति अधिनियम से टूटती हुई सामतवादी अर्थव्यवस्था को गहरा धक्का लगा। केवल दासो को ही इससे मुक्ति न मिली वरन् देश की शासन-व्यवस्था के अन्य अंशो को भी नवीन ढाँचे में ढालने के लिए सुधार किये गये। इनमें से मुख्य सुधार थे—1864 में ग्रामीण संगठन तथा न्यायालय, 1870 मे नगरो का स्वायत्त शासन एवं 1874 में सैनिक संगठन।

सम्राट अलेक्जेण्डर द्वितीय के सुधारो ने देश मे प्रथम बार जनता की इच्छा को राजनैतिक रूप से सगठित होने के लिये उत्साहित किया। अभी तक जनता की माँग केवल सामाजिक सुधार की थी। जार एवं बुद्धिवादी वर्ग भी राजनैतिक सुधार का नाम लेते घबड़ाते थे। सुधार की सम्भावना देखकर, इस समय से जनता के माँग का आकार बढ़ने लगा। इससे उत्पन्न विचारधाराये एव दल आने वाले राजनैतिक सघर्ष की तैयारी मे प्रथम चरण सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त नई पीढ़ी के नवयुवको ने इन सुधारो को

एकदम पृथक दृष्टि से देखा। इनमें न तो प्राचीन पद्धति और प्रथाओं की भक्ति थी और न अनुभव की गम्भीरता। दास-मुक्ति से असंतुष्ट होकर इनका विचार व्यापक एव समूल परिवर्तन पर केन्द्रित हो गया। अब सुधारो की मॉग की जगह, देश का ढॉचा ही बदलने पर लोगो की आस्था स्थिर हो गई। अपनी आशावादिता तथा जोश से इन्होने समस्या का रूप बदल कर अत्यन्त सरल कर दिया। परिवर्तन क्रमिक हो अथवा अचानक : नेतृत्व उदार विचारधारा का होगा या क्रान्तिकारियो का—केवल यही तय करना बाकी रहा।

इतना अवश्य है कि दास-मुक्ति ने रूढ़िवादिता को समूल हिला दिया और देश के संगठन में होने वाले परिवर्तनो के द्वारा आधुनिकता का आगमन संभव बनाया। किन्तु यह प्रभाव दीर्घकालीन था। औद्योगिक आधुनिकता में इसकी सबसे बडी देन औद्योगिक श्रम का निर्माण था। गृह-दासो [Dvorovie lyude] को स्वतन्त्रता के साथ भूमि नही दी गई। इसके अतिरिक्त वोशीना के दास व राजकीय तथा व्यक्तिगत कारखाने के दासो को भी भूमि नही दी गई। इनकी सख्या लगभग 40,00,000 के अनुमान की गई है। इनको लाचार होकर नगरो में नौकरी करने आना पडा। औद्योगीकरण के पुकार पर बने नये श्रमिक वर्ग ने इन्हे सहर्ष स्वीकार किया।

1861 से आरंभ होने वाले सुधार वैधानिक ही थे। उनको व्यवहार रूप मे आने में काफी समय लगा। फिर भी हम इन सुधारो को नवीन प्रगति का युग-प्रवर्तक मान सकते है। यदि तत्काल इनका लाभ न दिखाई दिया, तो कोई आश्चर्य की बात न थी। पुराने विचार, आदते तथा रीति-रिवाज न तो एकदम से बनते है, न उनका उन्मूलन ही अचानक सम्भव है। इनका महत्व इस बात में है कि, आधुनिकता तक पहुँच कर, योरप के दूसरे देशो के साथ खडे होने के रास्ते की सबसे बड़ी रुकावट हट गई। आने वाले औद्योगिक पूँजीवाद के लिये वातावरण बनाने मे इन सुधारो का बडा भारी हाथ था।

इतना सब होने पर भी, ये सुधार 19 वी शताब्दी के अंत तक आर्थिक व्यवस्था मे कोई मौलिक परिवर्तन न कर सके। सामतवादी-दासता की अर्थव्यवस्था [Feudal-serf economy] कुछ रूपान्तर के साथ पूर्ववत् बनी रही। जार पूर्ण निरंकुश था और भू-स्वामियो का प्रभाव शासन मे कम न हुआ। प्राचीन बुनियादी ढॉचे पर नया संगठन लादने के प्रयत्न में जो गुत्थियॉ पडी, उनको सुलझाने का असफल प्रयास ही रूस का 1917 तक का इतिहास है।

अध्याय ५

आर्थिक संगठन [१८६१-१९१७]

[Economic Organisation 1861-1917]

रूसी कृषि [1861-1917]

[Russian Agriculture 1861-1917]

दास-मुक्ति अधिनियम और उसके लागू करने का तरीका किसानो के लिये अत्यन्त निराशाजनक सिद्ध हुआ। मुआवजे [redemption payment] की ऊँची दर और सीमित भूमिस्वामित्व के कारण दास-मुक्ति से किसानो को थोडे-से अधिकार, कुछ भूमि, किन्तु प्रचुर उत्तरदायित्व मिला[1]। 1861 के बाद किसानो की दशा बराबर बिगडती गई। 1877 और 1905 के बीच गाँवो की आबादी में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई जिससे उपलब्ध भूमि और भी कम पडने लगी। प्रति-परिवार भूमि इस समय मे 13.2 देस्यातिन[2] से घटकर 10.4 हो गई।

1861 के सुधारो ने रूसी कृषि के बुनियादी सगठन को समूल परिवर्तित नही किया। भू-स्वामी के असीमित अधिकारो मे किसान, ससार से पृथक, आत्म-निर्भर रूप से उत्पादन और जीवनयापन करता रहा। व्यापारिक तथा पूँजीवादी कृषि की आवश्यकताएँ उत्पन्न नही हुई थी। दूषित बारशीना श्रम पद्धति भी कुछ परिवर्तित रूप मे बनी रही। धनी किसान तथा भूस्वामी ने कृषि-क्षेत्र का नेतृत्व सामन्तो से अपने हाथ में ले लिया। किन्तु इससे किसान की आश्रित स्थिति मे कोई अन्तर नही पडा। देश की कृषि के दो मुख्य क्षेत्र बन गये। भूस्वामियो ने अपनी भूमि के कुछ भाग पर तो पूँजीवादी खेती करना आरम्भ किया जिसमे मशीन तथा वैतनिक श्रम का प्रयोग हुआ। बाकी हिस्से मे पुराने ढग पर खेती चलती रही। इस प्रकार किसानो का शोषण बना रहा और शोषण से मुक्ति पाने का प्रयत्न भी उपद्रव तथा क्रान्तिकारी कार्यवाही के रूप मे अपने शिखर की ओर अग्रसर हुआ।

पूँजीवाद का उदय

इस समय मे व्यापारिक दृष्टिकोण से खेती आरम्भ हुई। बाजार की माँग को

---

[1] G. T. Robinson Rural Russia Under Old Regime, p. 88.

[2] One desyatin=2 7 acres.

ध्यान मे रखकर किसी एक वस्तु के उत्पादन पर जोर दिया जाने लगा। वैतनिक श्रम और मशीनो से बड़े पैमाने पर काम करना ही लाभप्रद था। इस प्रकार की कृषि के लिए धन की आवश्यकता थी, जो किसान तथा पुराने सामन्त भूस्वामियो के पास प्रायः नही थी। पूँजी प्राप्त करने के लिये कृषि, समृद्धिशाली किसान, व्यापारी एवं अन्य धनवान व्यक्तियों के हाथों मे जाने लगी। श्रम का महत्व पूँजी ने ले लिया और कृषि क्षेत्र से वशानुगत सामन्त तथा उच्च वर्ग के व्यक्तियो का स्वामित्व व प्रभुत्व दोनो ही घटने लगा। इसको बनाये रखने के लिये इस वर्ग ने प्राण-प्रण प्रयत्न किया जिसमे उचित-अनुचित का विचार निजी स्वार्थ के आगे न टिक सका। पूंजीवादी प्रभाव के कारण व्यक्तिगत खेती की ओर समाज झुक रहा था। इस प्रवृति मे सामन्तो को अपना निश्चित विनाश दिखाई दिया। वे इस व्यक्तिवाद को रोके रखना चाहते थे और किसान इसे प्राप्त करने पर तुले थे। मीर का अनुशासन अब मजूर न था। सामाजिक संघर्ष और गहन हुआ। आने वाले विस्फोट की तैयारी पूरी तीव्रता से अनायास ही हो गई।

मीर

ग्राम समुदाय [Village Commune] अथवा मीर 1861 के बाद बहुत ही शक्तिशाली बन गये थे। 1880-1890 के बीच भूमि पर आबादी का भार इतनी जोरो से बढा कि मीर ने भूमि का पुनर्बटवारा बहुत जल्दी-जल्दी करना आरम्भ किया। भूमि-स्वामित्व किसानो को न मिलकर मीर मे निहित था। जब तक किसान मुआवजे की पूरी रकम चुका न दे, उसे स्वतन्त्र स्वामित्व प्राप्त नही हो सकता था। इसलिये इन पुनर्बटवारो ने किसानो की दशा को बहुत ही खराब कर दिया। उनके खेत छोटे होते गये और कृषि-उन्नति की सभी आवश्यकताओ को तिलाजलि दे दिया गया। अमीर किसानो का प्रभाव इतना बढ़ चुका था कि मीर का स्वतन्त्र रूप से कार्य करना असम्भव था। 1890 तक इसका पतन आरम्भ हो गया।

किसानों के खेत [Peasant Farm]

दास-मुक्ति अधिनियम के बाद किसानो को अपने खेत प्राप्त करने की स्वतन्त्रता अवश्य मिली किन्तु उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। भूमि की कमी तथा मुआवजे के भुगतान के बोझ ने उनको वस्तुतः तोड दिया। जगह-जगह पर तो स्थायी अकाल की परिस्थिति में किसान रह रहे थे। 1872-78 में सरकार ने इनकी अवस्था मे जॉच करने को स्थानीय आयोग [Local Commissions] बनवाये किन्तु उनके सदस्य सरकारी कर्मचारी तथा सामन्तो के होने से यह केवल जॉच आयोग ही रह गया। राजकीय वैल्यूयेव कमीशन [Valuyev Commission] 1872 में बैठा। इसने कृषि की दयनीय स्थिति का जो चित्र खीचा उससे शासन सहम उठा। मदिरा तथा

आलस के अतिरिक्त कमीशन ने इस दुर्दशा का मुख्य कारण राज्य-कर की असमानता तथा पक्षपात पाया। सामन्त-भूमि की तुलना मे किसानो के भूमि पर 10, 20 तथा कही-कही 40 गुना कर-भार अधिक था। सामन्तो के खेतो पर जब आय का 2 से 10% तक टैक्स देना पड़ता था, किसानो के खेतो पर इसकी मात्रा सभी जगह 50% से अधिक थी। सम्पूर्ण कृषि-क्षेत्र से प्राप्त 208 मिलियन रूबल कर मे से 195 मिलियन किसान देते थे तथा कुल 13 मिलियन भूस्वामी। किसी-किसी प्रान्त मे खेत की आय-शक्ति से 2 या 3 गुना अधिक कर लगा था। इसका प्रभाव यह पडा कि वार्षिक भुगतान मे किसान पिछड़ने लगा। बकाया [arrear] कर-भार की मात्रा तेजी से ऊपर उठी :

किसानो के बकाया कर की प्रतिशत वृद्धि[1]

प्रान्त	1871-1875	1876-1880	1881-1885	1886-1890	1891-1895	1896	1898
सिम्बर्स्क	5%	6%	34%	42%	204%	223%	277%
तूला	3	5	16	35	134	151	244
क़जान	4	31	101	170	730	334	418
ऊफा	25	40	77	208	336	360	397

इस हालत का बुनियादी प्रभाव यह पडा कि किसानो की खेती टूटने लगी। बडे पेमाने पर, बाजार के लिए पूँजीवादी खेती आरम्भ हुई।

कृषि उत्पादन

सुधार के बाद लगभग 30 सालो मे अन्न के उत्पादन तथा क्षेत्रफल दोनों में अच्छी वृद्धि मिलती है। अनाज की पैदावार करीब दूनी हो गई। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह विस्तार किसानो की दशा में सुधार का परिचायक है। यह विस्तार लाचारी-वश किया गया था। उत्पादन जरूर बढ़ा परन्तु इसका उद्देश्य लाभ कमाना न था। अत्याधिक बढे हुये कर-दायित्व को पूरा करने का यह केवल एक असफल प्रयत्न था। एक विशेष हानि यह हुई कि चरागाह, जगल और दूसरी जितनी भी भूमि मिल सकी, उन सब पर खेती होने लगी। स्वभावतः कृषि-उत्पादन का संतुलन नष्ट हो गया।

[1] Lyashchenko, op. cit., p. 447.

[Rise of Kulak or rich peasant] कुलक अथवा समृद्धिशाली किसान वर्ग का उदय

1880-90 के कृषि-मन्दी से ग्रामीण आबादी के नये वर्गीकरण को बहुत प्रोत्साहन मिला। 1900 तक यह वर्गीकरण स्पष्ट रूप से पूँजीवादी खेती का रूप ग्रहण कर चुका था। रूसी किसान तथा भू-स्वामी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था [natural economy] में उत्पादन करने के अभ्यस्त थे। तेजी के साथ देश मे बनते हुए पूँजीवादी बाजार के नियम व तरीको से वे पूर्ण अनभिज्ञ थे। प्रतिस्पर्धा [Competition] की अवस्था मे, लाभ कमाने के लिए, बाजार मूल्य तथा लागत के सन्तुलन की दृष्टि से उत्पादन सगठित करना इनको नहीं आता था। अनार्थिक खेती तथा मन्दी से आक्रान्त, नये परिस्थितियो के लिए अनुपयुक्त कृषि-उत्पादको की विवशता का अनुचित लाभ उठाया जाना स्वाभाविक था। इन्ही के बीच से ऐसे व्यक्तियों का छोटा-सा वर्ग सामने आया जिसके पास आवश्यक चतुरता, तेजी तथा धन था। इनको ग्रामीण पूँजीपति, धनी किसान अथवा अनादरसूचक रूप मे, कुलक [Kulak] या कृपण [fist] कहते है। इन्होने अपने धन से बडे पैमाने पर गरीब किसानो की भूमि खरीद कर उनसे वेतन पर काम कराया। इस तरह लेनिन के अनुसार दो धारायें प्रगट हुई। एक तरफ तो गरीब किसान अपनी जमीन तथा मवेशी खो कर मामूली मजदूर बन गया। दूसरी ओर समृद्धिशाली किसानो को अमीर बनने के कई साधन मिले जैसे, बड़े पैमाने पर मशीनो से वैज्ञानिक ढग की खेती, छोटे उद्योग और उधार देने का धन्धा। यह सब काम बीसवी सदी में भी चलता रहा। इस धनी किसान वर्ग का प्रभाव बढ़ता गया। 1883 में कृषक भूमि बैंक [Peasant Land Banks] की स्थापना हुई।[1] इनका उद्देश्य किसानो को भूमि खरीदने मे आर्थिक सहायता करना था। 1887 और 1903 के बीच बैङ्क की सहायता से किसानो ने 55 लाख देस्यातिन भूमि खरीदी। इसके भुगतान मे किसानो द्वारा दिये गये धन से जो अमीर किसान वर्ग बना वही आगे चल कर कुलक वर्ग में बदल गया।[2]

भू-स्वामियों के खेत [Landowner's Farms]

कृषि-क्षेत्र का दूसरा विशिष्ट अङ्ग, सामन्त-कृषि [nobility farming] भी सुधारो के बाद नई दिशा मे अग्रसर हुई। इस वर्ग के पास भूमि लगातार घटती ही गई।

---

[1] For details, Maurice Dobb, op. cit., p. 53 and Lyashchenko, op. cit., pp. 467 and 749

[2] G. T. Robinson, op cit., p 101

भूमि स्वामित्व (प्रतिशत में)[1]

सामाजिक वर्ग	1877	1877	1905
सामत	77 8%	68 5%	52 5%
किसान	7·0	13·1	23·9
व्यापारी इत्यादि	14 2	16·3	20·2

इन आकडो से साफ पता चलता है कि भूमि सामन्तों के हाथ से निकल कर नये वर्गों के पास जा रही थी। इसके अलावा भूमि के वशानुगत अधिकारी वर्ग का जन्म-सिद्ध एकाधिकार खडित हो चुका था। सामाजिक श्रेष्ठता जन्म की जगह अब पूँजीपति को मिलने लगी। प्रोफेसर लाईशेन्को द्वारा दिये गये ऑकडो से पता चलता है कि इस क्षेत्र मे भी कृषि के स्वामित्व का केन्द्रीयकरण कितना विकट था। 80% से अधिक आबादी के पास केवल 5% भूमि थी; 20% आबादी 95% भूमि की मालिक थी।[2] इस छोटे से वर्ग ने बडे-बडे खेत प्राप्त करके उन पर अधिक लाभदायक उपज जैसे चुकन्दर [Sugar-beet] और आलू की खेती, पूँजी लगा कर, व्यापार के लिये किया। प्रायः सभी जगह इनसे सम्बन्धित उद्योग भी स्थापित किये गये जैसे चीनी मिल, और आलू की शराब।

व्यापारिक कृषि एवं उद्योगो के लिए और भी पूँजी की आवश्यकता हुई। 1880-90 की मन्दी के समय बहुत ही बडी मात्रा में सामन्तवर्ग ने अपनी जमीन किराये पर देना शुरू किया। इसका भुगतान या तो वे मुद्रा में या कटाई के अंश [Share Cropping] में लेते थे। इस धन का प्रयोग कुछ चुने हुए खेतों के पूर्णतम उपयोग तथा उद्योग में होता था। इतना होने पर भी सामन्त भू-स्वामियों का ऋण-भार बढता ही गया। 1885 में सामत भूमि बैंक [Noblemen's Land Bank] स्थापित किये गये जिनका उद्देश्य सामंतो को इस स्थिति में मदद करना था। भूमि को बंधक रखकर यह बैंक उधार देते थे। 1886-1912 के बीच 1,146 मिलियन रूबल उधार दिया गया।

1875-1885 की अंतर्राष्ट्रीय कृषि-मंदी का प्रभाव

1880 तक यह मंदी बहुत भयंकर रूप धारण कर चुकी थी। रूस की खेती अपना सबसे बडा सहारा निर्यात द्वारा ['योरप में अन्न भडार' के रूप में] प्राप्त करती थी। इस मन्दी ने अनाज का दाम इतना गिरा दिया कि उत्पादन का खर्च भी निकलना

---

1 Lyashchenko, op. cit, p. 462

2 Ibid.

असम्भव हो गया। क्रयशक्ति कम हो जाने से लोगो की माँग घटी और उद्योग पर भी उसका बुरा असर पडा। कृषि उत्पादन का दाम 1880-90 के बीच 1870 का कुल 1/5 रह गया। मंदी के फलस्वरूप औसत किसानो की गरीबी, चन्द समृद्धशाली किसानो तथा व्यापारियो की शक्ति मे अपार वृद्धि, मशीनो के प्रयोग मे कमी, और पूँजीवाद की ओर बहुत प्रगति हुई। यह कहा जा सकता है कि गरीबी, समृद्धशाली किसानो का शोषण तथा राज्य की अनिश्चित नीति ने आने वाले विद्रोह की नीवि डाली।

दास-मुक्ति के लगभग 40 वर्ष बाद तक देश की अवस्था बराबर बिगडती गई। इसके पहले कि नयी शताब्दी का इतिहास देखा जाय, इन 40 वर्षों पर संक्षेप में दृष्टिपात करना उचित होगा। इस समय मे होने वाले सभी परिवर्तनो को देखकर यह विदित होता है कि दासता उन्मूलन से किसानो की दशा बहुत शोचनीय हो गई। भू-स्वामी तथा व्यापारी वर्ग अपने प्रभुत्व मे बराबर वृद्धि करता रहा। किसान ने जिस स्वतत्रता के सुस्वप्न देखे थे, उनको साकार बनाने के लिए उन्हे नये जोश और उत्साह के साथ अन्याय के विरुद्ध सग्राम चालू करना पडा। पूँजीवादी सामाजिक विभाजन तथा व्यापारिक दृष्टिकोण से सगठित बडे खेतों की प्रगति तेजी के साथ हुई। समृद्धि-शाली किसान तथा व्यापारिक कृषक [Merchant Landowner] के प्रादुर्भाव ने देश मे वर्ग सघर्ष [Class Struggle] को और उत्साहित किया। दबे हुए किसान मे क्रान्तिकारी प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई। इनको बहाना बना कर सामतो ने अपनी शक्ति पुनः प्राप्त करने के लिए सामाजिक और राजनैतिक दबाव को बढाया। किसानों को आर्थिक परतंत्रता [Financial Enslavement] मे जकडने का उपाय किया गया। अनेक कानूनो द्वारा 1881-1893 के बीच सामन्तो ने किसानो को पुनः अपने संरक्षण में ले लिया। कहने के लिये इसका कारण उनकी अनुशासनहीनता को वश मे रखना था। किसान की दशा तथा उनसे सम्बन्धित अधिनियमो का पुनः सिंहावलोकन करने को सामन्तो के दबाव से जार ने 1893 मे नये आयोग की स्थापना की। इसके सुझाव 1903 मे सामने आये। उस समय तक मजदूरो की बढ़ती हुई संख्या और संगठन; स्थान-स्थान पर किसान-विद्रोह; मजदूर हड़ताल; विद्यार्थियो तथा बुद्धिवादी वर्ग मे राज्यक्रान्ति की भावना का समावेश व प्रसार; और इस परिस्थिति को बुद्धिमानी तथा तत्परता से सम्हालने में सरकार की पूर्ण अयोग्यता; वे मुख्य कारण थे जिनसे 1917 की साम्यवादी राज्यक्रान्ति की पृष्ठ भूमि तैयार हुई।

मन्दी के बाद 1909-1913 में आश्चर्यजनक कृषि-संवृद्धि आई। हर एक क्षेत्र में खेती की उन्नति हुई। इस समय अन्न तथा व्यापारिक उत्पादन बढे। पूँजी के उपयोग से नये वस्तुओ का कृषि-उत्पादन आरम्भ किया गया। अभी तक व्यापारिक

उत्पादन की मात्रा आशातीत रूप से न बढी थी। इतना ही नही, प्रति एकड़ उत्पादन मे कोई परिवर्तन न हुआ। संसार के दूसरे देशों में रूस का स्थान सबसे नीचा था।

20वी शताब्दी मे व्यापारिक-पूँजीवादी कृषि-क्षेत्र मे और भी वृद्धि हुई। औद्योगिक कच्चा माल पैदा करने में विशेष कुशलता प्राप्त की गई। कपास, चीनी, तम्बाकू तथा आलू इनका मुख्य उत्पादन था। बढते हुए उद्योगीकरण से इस क्षेत्र मे बडे उत्पादनकर्त्ताओ को विदेशी बाजार के अतिरिक्त देशी बाजार भी मिला। इसका विस्तार लगातार हो रहा था।

रूसी अर्थ-व्यवस्था मे पूँजी के लाभदायक प्रयोग के लिए इतना बडा क्षेत्र प्रस्तुत था कि देशी पूँजी पर्याप्त न हुई। विदेशियो ने इसका बडी मात्रा में लाभ उठाया। उद्योगों को छोडकर कृषि मे भी इनका प्रभुत्व 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक जम चुका था। अनाज की बडी आढते तथा निर्यात-व्यापार विदेशी पूँजी के हाथ में चला गया। देशी बैंको ने भी खेती मे रुचि लिया किन्तु इनका प्रभाव, कम से कम विदेशी व्यापार मे, अधिक नहीं था।

पीटर स्तोलाइपिन के कृषि-सुधार

1903 मे मुआवजे के भुगतान की सामूहिक जिम्मेदारी मीर से ले ली गई और 1905 मे मुआवजे की वसूली बन्द कर दी गई। इन परिवर्तनो ने मीर की शक्ति को छीन लिया। जनता की क्रान्तिकारी मानसिक स्थिति का प्रमुख कारण उनकी 'जमीन की भूख' [Land-hunger] थी। इसे शान्त करने के लिये निश्चय किया गया कि भूमि किसानो के पूरे व्यक्तिगत अधिकार मे दे दी जाय। रूस के प्रभावशाली प्राधान मत्री पीटर स्तोलाइपिन ने कृषि-सुधार करने की योजना बनाई। 1905 की क्रान्ति में यह देखा गया था कि अगर किसानो को अपने खेतो का पूर्ण स्वामित्व मिल जाय तो वे शान्त हो जायँगे। इसलिये स्तोलाईपिन ने यह प्रयत्न किया कि सामुदायिक भूमि-स्वामित्व तथा किसानो का भूमि पर पारिवारिक अधिकार समाप्त कर दिया जाय। उसकी जगह पर एक व्यक्तिगत स्वामित्व वाला [Individual ownership] भूमि संगठन किया जाय जिससे आधुनिक वैज्ञानिक खेती के लिए अवसर मिल सके। दूरदर्शी, मेहनती एवं कुशल व्यक्ति बिना मीर के दबाव के आगे बढने में समर्थ हो। 1906 में एक कानून द्वारा इन सुधारो को लागू किया गया। इसके अंतर्गत ग्रामीण समाज को दो भागो में बाँटा गया :—

(१) वह समुदाय जहाँ दास-उन्मूलन के बाद किसानो के बीच पुनर्बंटवारा हो चुका था। इन जगहों मे अगर कोई किसान मीर से अलग होना चाहे तो उस पर

कोई रुकावट न होगी। जहाँ तक सम्भव हो, ग्राम समुदाय बिखरी हुई पट्टियो के स्थान पर एक बँधा हुआ खेत किसान को देने का प्रयत्न करे।

(2) वह समुदाय जहाँ पुर्नबटवारा नही हुआ था। ऐसे मीर मे जितनी भूमि उस समय एक परिवार के पास थी, उसे उस परिवार की सम्पत्ति मान लिया गया। व्यक्तिगत किसानो की भूमि उनके स्वामित्व मे दे दी गई।

इसके अतिरिक्त स्वेच्छा से किसी भी मीर के सदस्य केवल बहुमत [majority] प्राप्त करके पूरे मीर का भूस्वामित्व व्यक्तिगत स्वामित्व मे बदल सकते थे। इसके नियम इतने आसान बना दिये गये कि ग्राम समुदाय [mir] को तोडने मे कोई कानूनी बाधा न रही। मीर के टूटने से जो व्यक्तिगत खेत बने, उनको बेचने व उत्तराधिकारियो को देने का पूर्ण अधिकार दिया गया।

इस समय के परिवर्तनो का ध्येय यह था कि किसानो मे बढती हुई क्रान्तिकारी प्रवृत्तियो को रोका जाय। पीटर स्तोलाइपिन कृषि-सुधार के आड में स्वतत्र, व्यक्तिगत किसानो का एक शक्तिशाली वर्ग तैयार करना चाहता था जिस पर जारशाही का आधार स्थिर किया जाय। शोषित किसान ही क्रान्तिकारियो की ताकत थे। स्तोलाइपिन के विचार से यह वर्ग क्रान्तिकारियो के विरुद्ध विश्वस्त मोर्चा ले सकेगा। इस दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के अनुसार राज्य को दुर्बल, निर्धन किसानो पर नही, वरन् बलवान, समृद्ध, व्यक्तिगत कृषक वर्ग पर राजतत्र और जारशाही की नीव स्थापित करनी चाहिये। इन सुधारो की यह राजनैतिक पृष्ठभूमि थी। इसलिये मीर को क्रान्तिकारियो का अड्डा घोषित किया गया। व्यक्तिगत खेती मे सगठित होने के लिये किसानो ने पूर्ण सहयोग पाया। 1914 तक लगभग 24% किसान व्यक्तिगत खेती अपना चुके थे। मीर-सङ्गठन को छोडने वाला की संख्या लगभग 20 लाख थी। इसमे या तो धनवान किसान थे या अत्यन्त गरीब किसान जो अपनी भूमि वेचकर शहरो मे मजदूरी करना चाहते थे।[1]

प्रधान मत्री पीटर स्तोलाइपिन [1906–1911] ने आर्थिक, सामाजिक एव राजनैतिक ढाँचे पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। यह प्रभाव आशातीत दिशा मे न हुए। सुधारको की यह आशा साकार न हुई कि इन सुधारो से किसान की भूमि की माँग सतुष्ट हो जायगी, तथा देश मे बढ़ते हुए क्रान्तिकारी विचार थम जायेंगे। भूस्वामियो द्वारा अपने हित मे किसानो की दशा सुधारने का यह दूसरा प्रयत्न था, और करीब-करीब उन्ही

---

[1] For details, G T. Robinson, Op. Cit, p. 231. and Lyashchenko. op. cit , p. 747.

सब कारणों से यह विफल हुआ जिससे 1861 के सुधार खराब हुए थे। इसके द्वारा 1861–1866 के सुधारों को विध्वस कर दिया गया। किसान यह कभी नहीं भूल सके कि सुधारों के पाखड ने सामंत तथा धनी व्यापारियों की शक्ति को और प्रबल बना दिया। इनकी भूमि की मॉग पूरा करने का यह सच्चा प्रयत्न नही था। प्रोफेसर नाइट के अनुसार मीर का विघटन तथा व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रसार उच्च ग्रामीण वर्ग के लिए ही किया गया।[1] मीर को छोडने के अधिकार का अधिकतर लाभ धनी किसानो ने उठाया जो बहुत अधिक भूमि प्राप्त कर चुके थे। इस स्वतत्रता ने छोटे और गरीब किसानो को आसानी से अपनी भूमि अमीर किसानो के हाथ बेचने का मौका दिया जिससे कि वे भूमि से अपना सम्बन्ध तोडकर मजदूर बन सके। कृपक बैंक [Peasant-Bank] भूमि को बेचने का प्रमुख साधन बने। राज्य इन बैंको के द्वारा स्वतत्र भूस्वामियो से भूमि खरीदता था। इसके लिए बहुत ऊँचा दाम इन बैंको ने दिया और इस प्रकार प्राप्त भूमि का जो भाग बैंको ने अपने भूमि-कोप मे रोक लिया उससे भूमि की कमी, किसानो की मॉग, और जमीन का दाम सभी कुछ बहुत बढ़ गया। यह विश्वास किया जाता है कि अनुचित सचालन के कारण इस भूमि-कोप के बेचने से भूमिहीन तथा छोटे किसानो को लाभ नही हुआ। अधिकतर यह भूमि समृद्धशाली किसानो के पास केन्द्रित हो गई। किसानो के असतोप को बढाने मे इसका बहुत बडा हाथ था।

कम से कम दो मुख्य प्रभाव इन सुधारो से प्रकट हुए। देश मे भूमि से पृथक मजदूर वर्ग का निर्माण तीव्रता से होने लगा। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे व्यापारी-पूँजीवाद के शक्तिशाली पोपको का एक प्रबल वर्ग बना। दास अर्थ-व्यवस्था के सामंतो का स्थान नये पूँजीवादी सगठन मे इस वर्ग ने ले लिया। किसान की दशा मे विशेप परिवर्तन का अवसर न मिला: न उनका ऋण कम हुआ, न भूमि मिली, और न तो उनको आर्थिक सतुलन एव स्थिरता का अनुभव हुआ। स्तोलाइपिन सुधारो ने क्रान्ति की लहर रोकने की जगह यह सिद्ध कर दिया कि समकालीन सगठन का समूल उन्मूलन किये बिना किसी भी प्रकार की आशा करना निरर्थक होगा। 1914 मे प्रथम महायुद्ध छिड जाने से सुधारो को स्थगित कर दिया गया। जारो द्वारा कृपि-सुधार के प्रयत्न विलम्ब से अपर्याप्त मात्रा मे होने के कारण प्रभावहीन रहे। आगे आने वाली घटनाओं ने ऐतिहासिक रूप से इस विचार की पुष्टि किया है।

1914–17 के विश्वयुद्ध मे रूसी कृपि पर सहनशक्ति से अधिक भार पडा। सबसे बडा असर श्रम की कमी थी। श्रमिक वर्ग से [जिसमे अधिकतर ग्रामीण मजदूर

---

[1] Knight, Barnes & Flugel Economic History of Europe, p. 755

किसान थे] लगभग 75 लाख व्यक्ति सेना मे भरती किये गये। इसके अतिरिक्त ग्रामीण मशीनो तथा खाद व बीज की कमी ने भी बड़ा नुकसान पहुँचाया। बहुत बड़े पैमाने पर रूसी किसान का मुख्य मवेशी, घोडा, सरकारी फौजो द्वारा ले लिया गया। इन सब का असर यह हुआ कि अनाज के उत्पादन मे अत्यधिक कमी हुई।

1916 तक इसका प्रभाव सामने आया। अन्न संकट एक राष्ट्रीय समस्या बन गया। सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से कृषि उत्पादन को निश्चित दर पर खरीद लेना, अन्याय व असतोष का कारण बना। उस क्षेत्र के खुले बाजार प्रायः नष्ट हो गये। मुद्रा-स्फीति के कारण रूबल का दाम इतनी तेजी से गिर रहा था कि निश्चित सरकारी मूल्य तथा बाजार-भाव मे अन्तर सदा बढ़ता ही गया। सरकारी अत्याचार का यह नया तरीका सभी को बहुत अप्रिय था। सरकार की अदूरदर्शिता से उत्पन्न कटुता को परिस्थितियो ने पूरा बढ़ावा दिया और देश अपने भाग्य से मिलने तेजी के साथ क्रान्ति के मार्ग पर बढ चला।

रूसी उद्योग—[1861-1917] [Russian Industry 1861-1917]

दास-प्रथा के अन्त ने रूस की अर्थव्यवस्था को एक भयकर उथल-पुथल में डाल दिया था। उद्योगो की इन परिस्थितियो से स्थिरता प्रात करने मे लगभग तीस वर्ष लग गये। इस परिवर्तन के काल मे [Transition Period] इनको अपना रूप एकदम बदल देना पड़ा। 1860-70 मे रूसी उत्पादन छोटे पैमाने पर विकेन्द्रित पूँजीवादी ढाँचे का उत्पादन था जिसका आर्थिक संचालन किसी केन्द्रीय स्थान पर बसे हुए व्यापारिक पूँजीपति करते थे। इस समय वोशीना कारखानो का तेजी से पतन होकर, मशीनों तथा पूँजी से फैक्टरी उत्पादन आरम्भ हुआ। दास श्रमिको के जाने से सामंत कारखाने एव हस्तान्तरित उत्पादन पद्धति दोनों का उन्मूलन पूँजीप्रधान कारखानों ने कर दिया। लेनिन के अनुसार 1861 के सुधार भूमि को पूँजीवादी खेती के लिए तैयार कर चुके थे, अर्थात् बहुत बडी मात्रा मे किसान भूमि को छोड़कर उद्योग की ओर आकर्षित हुए। श्रम की कमी को पूरा करने के लिए पूँजी और मशीन खेती मे आई। 1865-1890 के बीच बडे कारखाने, मिल तथा रेलों मे काम करने वालों की संख्या 7,06,000 से बढ़कर 14,35,000 हो गई।

1890 तक पूँजीवादी उत्पादन रूस मे पूरी धाक जमा चुका था। ज्यों-ज्यों पूँजी और मशीन का प्रयोग फैलता गया, विस्तृत कुस्तार-उत्पादन का क्षेत्र सिकुड़ता गया। कुछ कुस्तार उद्योगों ने इस विनाश से बचने के लिए पूँजीवादी उत्पादन के तरीकों को अपना लिया। उत्पादन की मात्रा सभी उद्योगों में बढ़ रही थी।

	1860	1876
मिलियन रूबल मे :		
सूत कताई	28·7	44·2
सूती कपड़ा	42·9	96·3
ऊनी सूत	0·45	2·5
ऊनी कपडा	34·9	52·7
मशीनें	14·0	43·4
मिलियन पूड में :		
पेट्रोल	0·6	10·9
कोयला	7·3	111·3
कच्चा लोहा	18·2	25·5
लोहा	11·7	17·1
स्पात	0 1	1·1

इतना ही नही उत्पादन की पूँजीवादी प्रवृत्ति के अनुसार छोटे उद्योग या तो वडे उद्योगो मे मिलने लगे या प्रतिस्पर्धा मे न खडे हो सकने के कारण क्षेत्र छोडकर हट गये।

इस समय में कारखाना मजदूरो की दशा बहुत ही खराब थी। 16-18 घटे तक काम करना औसत समझा जाता था। पुरुष, किशोर, स्त्रियाँ तथा बच्चो के कार्य-काल मे कोई अन्तर न था। बच्चो और अवयस्क [Adolescents] से ही सस्ते दामो पर अधिक से अधिक काम लेने की कोशिश होती थी। 1882 मे पहला कारखाना अधिनियम [Factory Act] बना जिसमे असफल रूप से इन हालतो को सुधारने की कोशिश की गई। इस समय से ही अपनी दशा सुधारने के लिए मजदूरो द्वारा हडताल तथा प्रदर्शन शुरू हुआ।

सयुक्त पूँजी वाली कम्पनी [Joint Stock Company] की सख्या और पूँजी दोनो वढ़ी। पूँजी की कमी के कारण विदेशी पूँजी भी अच्छी मात्रा मे आई। इसका मुख्य आकर्षण रेलवे कम्पनी की स्थापना थी। उद्योग इतने लाभदायक थे कि मुआवजे का धन [Redemption Payment] और भूमि वेचने से प्राप्त पूँजी सामतो ने अधिकतर उद्योगो मे लगाया। बैंक प्रणाली का विकास आश्चर्यजनक पैमाने पर हुआ। 1860 मे State Bank की स्थापना हुई और 1870 तक उसकी 41 शाखाओं के अतिरिक्त 29 संयुक्त पूँजीवाले बैंक [Joint Stock Banks], 15 आपसी ऋण कम्पनियाँ [Mutual Credit Companies], 163 नगर-पालिका बैंक [Municipal

Banks] तथा 16 बचत एवं उधार सघ [Savings and loan societies] बने।

पूँजीवाद के आगमन के साथ ही साथ औद्योगिक मन्दी भी रूसी अर्थव्यवस्था मे आई। 1873-1875 तथा 1881-82 में आनेवाली मन्दी ने औद्योगिक उत्पादन मे काफी बडी रुकावट पैदा की। इस रोग के दूसरे साथी, माँग की कमी, कारखानो की बन्दी, बेरोजगारी, तथा अत मे श्रमिक आन्दोलन व हडताल भी नकशे में आये। किसानो के बढते हुए असतोष मे महाबलशाली औद्योगिक मजदूर वर्ग के सम्मिलित हो जाने से, बिगडती हुई राजनैतिक स्थिति और भी अस्थिर हो गई। इस मन्दी की अस्थिरता काफी समय तक चली। अन्त मे 1891 का भयकार अकाल आया।

1890 से ही पूँजीवादी औद्योगीकरण ने अपने पूरे जोर से प्रगति आरम्भ किया। इसका क्रम इतना तेज था कि औद्योगिक पूँजी तथा बडे कारखानो की दृष्टि से रूस जर्मनी के भी आगे निकल गया।

उद्योगो मे प्रतिशत वृद्धि—1887 से 1897[1]

	कम्पनिया की संख्या	उत्पादन का मूल्य	मजदूर संख्या
बुनाई उद्योग	56·3%	104·4%	60 9%
खनिज उत्पादन	28·5	152 4	39·2
धातु निर्माण	75 2	175 8	107 8
रसायन उद्योग	30·8	177 2	67 3
सभी वर्ग के उद्योग	26·0	113 0	59 0

इस प्रभावशाली उन्नति की दिशा वास्तव मे पूँजीवादी ढाँचे को अपना चुकी थी। तेजी से बढते हुए उत्पादन के साथ, उत्पादन की इकाई भी बढ़ने लगी। छोटे उत्पादन केन्द्र प्रतिस्पर्धा मे गिरते गये। प्रोफेसर लाइशेन्को के अनुसार 1879-1902 के बीच 1000 से अधिक मजदूर रखने वाले कारखानो की सख्या मे 123% तथा मजदूरो की सख्या मे 141.4% वृद्धि हुई।[2]

पूँजी के क्षेत्र मे भी उन्नति हुई। 1889 में 504 संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी थी जिसमे 911 8 मिलियन रूबल की पूँजी लगी थी। 1899 मे कम्पनियो की संख्या 1181 तथा पूँजी 1,736 8 मिलियन हो गई। इस समय के बीच विदेशी पूँजी का

1 Adapted from Lyashchenko. Op. Cit, p. 527

2 Ibid., p 531

प्रभुत्व अर्थ-व्यवस्था के प्रायः सभी क्षेत्रो में पहुँच चुका था क्योकि इन दस वर्षों मे विदेशी पूँजी औद्योगिक पूँजी के $\frac{1}{3}$ से बढकर $\frac{1}{2}$ हो गई थी।

1900 तक रूसी उद्योग अत्यन्त तीव्र गति से उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था। पश्चिम यूरोप के औद्योगिक देशो के साथ पूँजीवादी उत्पादन के पूर्ण विकसित न होने पर भी औद्योगिक मन्दी का असर देश को उठाना पडा। 1900-1903 के बीच सारे यूरप मे भयकर संकट [Crisis] आया जिसने रूसी सगठन से पुरानी अर्थ-व्यवस्था के अवशेषो को उखाड फेंका। इस सकट के उथल-पुथल मे पूँजीवाद का दूसरा चरण आरम्भ हुआ। जिसमे एकाधिकार की शक्ति ने उद्योगो को अपने पजो मे ले लिया। सकट की अवस्था मे आर्थिक दृष्टि से कमजोर, यन्त्रकुशलता मे पिछडी हुई एव कुप्रबन्ध से पीडित, उत्पादन इकाइयाँ नष्ट हो गई अथवा इतनी कमजोर हो गई कि उन्हे बडी इकाइयो ने अपने प्रभुत्व मे कर लिया। इस समय के बाद से औद्योगिक रूस का इतिहास एक तरह से एकाधिकार तथा पूँजी के विस्तार का इतिहास है। प्रायः हर एक उद्योग मे सिडिकेट के रूप मे सयुक्तिकरण [Combination] शुरू हुआ। यहाँ तक कि प्रथम महायुद्ध के आरम्भ तक लोहा और स्पात, कोयला, पेट्रोल, हलके उद्योग, यातायात तथा बैंको मे आपसी समझौते और सिडिकेट द्वारा शक्तिशाली एकाधिकारो की स्थापना हो चुकी थी। अमेरिका तथा पश्चिमी यूरप की तरह रूस मे एकाधिकार का उच्चतम रूप, अर्थात् ट्रस्ट, सामने नहीं आया था। सिडिकेट केवल बाजार, मूल्य, माँग तथा यातायात को ही प्रभावित करते थे, जबकि ट्रस्ट उत्पादन तथा वितरण के क्षेत्र को भी अपने कठोर अनुशासन तथा संचालन में रखते थे।

1900-1903 का सकट, 1905 का विप्लव, जापान से युद्ध तथा इन कारणो से 1908 तक की मन्दी ने कम्पनी निर्माण तथा औद्योगिक पूँजी पर बहुत बुरा असर डाला। किन्तु 1910 से 1913 तक की प्रगति बहुत तेज थी।

औद्योगिक कम्पनियाँ[1]

वर्ष	संख्या	पूँजी—मिलियन रूबल
1899	325	363·7
1909	131	108 8
1910	198	224·3
1913	372	545·2

1 Lyashchenko, Op. Cit , p. 713

इन आकड़ों मे विदेशी पूँजी का हाथ काफी था। 1916-17 तक निम्नलिखित स्थिति पाई जाती थी।

कुल औद्योगिक पूँजी मे विदेशी पूँजी का प्रतिशत भाग[1]

उद्योग	विदेशी पूँजी
खान	90%
धातु निर्माण	42
कपडा	28
रसायन	50

इस प्रकार फ्रान्स, इग्लैंड, जर्मनी तथा बेलजियम ने आपस मे मिलकर विदेशी पूँजी का लगभग 90% रूसी उद्योग मे लगाया। इस विषय मे प्रो० लाइशेंको द्वारा निकाले हुये निष्कर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[2]

[1] विदेशी पूँजी विनियोग (Investment) की वृद्धि देशी विनियोग से अधिक थी।

[2] केवल मात्रा मे रूसी पूँजी विदेशी पूँजी से अधिक थी। अगर यह प्रवृत्ति चलती रहती तो शायद 10 वर्ष के अन्दर रूस भी शक्तिशाली पूँजीवादी देशो द्वारा एक उपनिवेश मे परिणित कर दिया जाता।

रूसी उद्योग का उत्पादन बराबर प्रगति की ओर बढ़ता गया। उत्पादन तथा मजदूरो की सख्या ने विशेष उन्नति की। 1887-1908 के बीच उत्पादन 1,334.5 से बढ़कर 4,908 7 मिलियन रूबल हो गया। इसी प्रकार मजदूरो की संख्या भी 13,18,000 से बढ़कर 26,79,700 हो गई। 1913-14 तक प्रायः सभी क्षेत्रो में उत्पादन लभगग दूना हो गया। इस समय प्रगति की गति अत्यधिक तीव्र थी। कुछ लोगो का यह विश्वास है कि देश को समृद्धिशाली बनाने मे बिना साम्यवाद के भी काफी जल्दी सफलता मिल जाती।

[1] Ibid. p. 716

[2] Ibid p. 717

अध्याय ६

राज्य क्रान्ति

[The Revolution]

क्रान्ति के समय आर्थिक स्थिति

बोल्शविक शासन की समुचित विवेचना के लिये क्रान्ति के समय देश की आर्थिक अवस्था का विशेष अध्ययन आवश्यक है। इस समय तक अर्थशास्त्र ने राजनीति पर इतना प्रभाव जमा लिया था कि 1917 मे क्रान्ति का मुख्य कारण आर्थिक ही कहा जा सकता है। 1917 तक के उद्योग, कृषि तथा राजनीति का क्रमिक विकास हम देख चुके है। इस स्थान पर आर्थिक स्थिति की उन विशेष धाराओं पर दृष्टिपात करना होगा जिन्होंने मुख्य रूप से क्रान्ति के सफल संपादन के लिये वातावरण तैयार किया।

प्रथम विश्व युद्ध

1914 के युद्ध ने बिगडी हुई आर्थिक दशा को और भी बिगाडने मे मदद किया। रूस के हाथो से औद्योगिक पोलेंड, बाल्टिक प्रान्त, कृषि प्रधान यूक्रेन प्रदेश, बाल्टिक सागर तथा काला सागर के बदरगाह भी चले गये। विदेशों से संपर्क रखने के लिये या तो हजारो मील लम्बी सुस्त साइबेरियन रेलवे थी, अथवा उससे भी कम लाभदायक आर्कटिक सागर के बंदरगाह थे जिनका प्रयोग साल के चद महीनो तक ही हो सकता था। विदेशी व्यापार, मशीन, पूँजी तथा कारीगरो के ऊपर निर्भर रूस इस युद्ध मे अपनी अर्थ-व्यवस्था को पंगु बना बैठा। युद्ध का भार उठाने के लिये उस समय देश एकदम तैयार न था। राजनैतिक अराजकता तथा आर्थिक दुर्बलता के समक्ष युद्ध एक भयकर भूल थी। लगभग 140 लाख व्यक्तियो को सेना मे भर्ती किया गया जिनपर प्राय: 240 लाख रूबल रोजाना खर्च होता था। इसके साथ काफी पिछडी हुई उत्पादन व्यवस्था को शान्ति से युद्धकालीन उत्पादन सगठन मे परिवर्तित करना अपार बुद्धि, अदम्य उत्साह एवं असाधारण प्रबध कौशल का काम था। यह काम व्यक्तिगत स्वार्थ मे लिप्त, देश की उच्चतम शासन सस्था, जार की शाही-समिति [Imperial Council] के योग्यता के बाहर था। इन सब बातो का परिणाम यह हुआ कि 1917 में जब आर्थिक हडतालो ने विप्लव का रूप धारण करना आरम्भ किया तो उनके नेताओं

को आर्थिक संगठन के हर एक हिस्से मे जनता के असतोष को बढाने के लिये यथेष्ट साधन मिला।

वित्त-व्यवस्था

क्रान्ति के आरम्भ मे देश की वित्तीय व्यवस्था [Financial System] काफी डॉवाडोल हो चुकी थी। युद्ध के व्यय ने पिछडी हुई अर्थ-व्यवस्था को प्रायः खोखला बना दिया था। 1905 की क्रान्ति के बाद शराब बनाने तथा प्रयोग करने पर पूर्ण निषेध लगा। 1915 मे इस सुधार से सरकार को 791 8 मिलियन रूबल की हानि हुई। आय का यह साधन राज्य की कुल आय का लगभग 20% होता था। अधिक आय की खोज मे प्रगतिशील आयकर लगाने के बजाय अप्रत्यक्ष करो का सहारा लिया गया। इसकी असाधारण वृद्धि ने जनता को और विपत्तिग्रस्त कर दिया। अस्थायी सरकार की कुछ वास्तविक वित्तसुधार योजनाओं को 1916 की अस्थिर परिस्थितियो ने कार्यान्वित न होने दिया। 1917 तक क्रान्तिकारी प्रचारो के कारण जनता ने करीब-करीब सभी सरकारी कर देना बद कर दिया।

युद्ध के लिये धन की आवश्यकता ने राज्य को नोट छापने के लिये बाध्य किया। जिससे रूबल का मूल्य 1915 के बाद तेजी से गिरने लगा। फरवरी 1917 के बाद तो यह दशा हो गयी कि प्रतिदिन 750 लाख रूबल नये नोटो की आवश्यकता थी और सरकार का छापाखाना कुल 300 लाख रूबल के नोट प्रतिदिन छाप सकता था। क्रान्ति के चन्द महीनो बाद मुद्रा-मूल्य का विघटन 25% से अधिक हो गया। मुद्रास्फीति के साथ अनाज की कमी और नागरिक उपभोग के औद्योगिक सामान को सेना की तरफ खिच जाने से चीजो का दाम ऊपर उठने लगा।

	चलन मे नोट [करोड़ रूबल]	मूल्याक
जुलाई 1, 1914 ··	163·0 ···	100
जनवरी 1, 1915 ··	294 6 ···	115
जनवरी 1, 1916 ··	561·7 ···	238
जनवरी 1, 1917 ··	910 3 ···	702
अक्टूबर 1, 1917 ···	1717·5 ···	1,171

मुद्रास्फीति के तरह ही 1914-1915 के बीच देशी तथा विदेशी साधनो से 550 लाख रूबल उधार लिया गया। जुलाई 1917 तक देश पर 4391 लाख रूबल का कर्ज लद चुका था। व्यापारिक बैंक इस दिशा मे गतिशील हुए। जनवरी 1915-

1917 के बीच इनकी जमा पूँजी 277 लाख से बढकर 674 लाख रूबल हो गयी। हर प्रकार के उधार मे करीब 100% की वृद्धि हुई। इस वृद्धि का बहुत बडा भाग सरकार की मदद मे लगा। 1914-17 के युद्ध काल मे पश्चिमी यूरप के देशो से रूस ने करीब 850 करोड रूबल उधार लिया। युद्ध के पहले दो सालो मे विदेशी पूँजी मे कुछ कमी हुई जबकि इनका भाग कुल पूँजी का 40 5% [1913] से घटकर 35.9% [1916] हो गया था। इन विदेशी ऋणो का प्रभाव यह पडा कि क्रान्ति के समय तक वित्त-व्यवस्था विदेशो पर आश्रित हो गई।

उद्योग

औद्योगिक क्षेत्र मे भी 1914 के युद्ध के कारण भयकर [illegible] हुई। विदेशी सम्पर्क टूट जाने से मुख्यतः निर्यात के लिये निर्मित रूसी उद्योग को बडा धक्का लगा। विदेशी बाजार की जगह देशी बाजार पर निर्भर रहना पडा जिसकी मुख्य माँग युद्ध के सामानो की सरकारी आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति उद्योगो को पुनर्व्यवस्थित करने पर निर्भर थी। कुप्रबन्ध, अदूरदर्शिता एव कोयले की कमी ने यह परिवर्तन [illegible]पूर्वक न होने दिया। देश के कमजोर उद्योग नई परिस्थितियो मे एकदम बिखर न जॉय, इसलिये उद्योगपतियो ने इनके युद्धकालीन सङ्गठन के प्रश्न को राष्ट्रियता की भावना से जोडने की कोशिश की। किन्तु राज्य की ओर से उन्ही उद्योगपतियो को सहायता न मिली जिनके सहारे पर जारशाही खडी थी। फिर भी यह प्रयास विफल न रहा। प्रत्येक उद्योगो मे उत्पादन समितियो का निर्माण हुआ और घरेलू उद्योगो को भी इस कार्य मे सम्मिलित कर लिया गया। इस दिशा मे स्थिति इस प्रकार थी[1]—

वर्ष	कारखानो की सख्या	कुल उत्पादन [मिलियन रुबल]	मजदूरो की सख्या
1913	13,485	5,621	1,927
1914	13,858	5,690	1,926
1915	12,649	6,390	1.899
1916	12,492	6,831	2,094

उत्पादन की 21% वृद्धि अवश्य हुई लेकिन युद्ध के विशाल सङ्गठन के लिये

[1] Lyashchenko, Op Cit, p. 761

यह एकदम अपर्याप्त थी। मुद्रा मे नापे गये इस उत्पादन का महत्व प्रायः कुछ भी नही रहता जब यह देखा जाय कि रूबल का मूल्य 1916 तक 25% से अधिक घट चुका था। लोहा, कोयला, लोहे के सामान तथा पेट्रोल उद्योग पर विशेष ध्यान दिया गया था। दूसरा उल्लेखनीय क्रम कारखानो की सख्या मे था। गिरती हुई कारखाना सख्या के साथ बढ़ता उत्पादन, मजदूरो की सख्या तथा पूँजी का स्पष्ट इशारा बड़े उद्योगो के आकार मे वृद्धि तथा एकाधिकारी उत्पादन [monopoly] की ओर है। बिना किसी योजना के बहुत बडी मात्रा मे कुशल कारीगरो, प्रबन्धको, और दूसरे अनुभवी व्यक्तियो को सेना मे भर्ती होने के लिये बाध्य किया गया। इस नीति ने युद्ध उत्पादन पर जो कुठाराघात किया, उसका प्रभाव दूर न किया जा सका। मजदूरो मे असन्तोष फैला और देश की सहायता भी न हो सकी। उद्योगपतियो के उत्साह और परिश्रम के कारण 1916 के मध्य से 1917 के आरम्भ तक उत्पादन मे वृद्धि दिखलाई पडी। उद्योग के हर एक अङ्ग मे उन्नति आरम्भ हुई। नई कम्पनियाँ तेजी के साथ खुलीं। अधिकतर इनको किसी विशेष वस्तु के उत्पादन के लिये राजकीय आर्थिक सहायक अथवा एकाधिकार प्राप्त था। 1913-16 के बीच उद्योग मे लगी पूँजी 52·6 करोड से बढ़कर 92·35 करोड रूबल हो गयी। बैङ्को ने अपना प्रभुत्व उद्योग-धन्धो पर बढ़ाया। औद्योगिक लाभ मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। 791 कम्पनियो [कुल कम्पनियो का दो-तिहाई] के आँकडो के अनुसार 1913-15 के बीच इनका लाभ [Gross profit] 35·17 करोड से 69·2 करोड रूबल हो गया। बँटे हुये लाभाश [dividends] की मात्रा 15·53 करोड रूबल से बढकर 21·63 करोड रूबल हो गयी। कुछ उद्योगो ने तो अपनी पूँजी का 150 से 250% तक लाभाश बाँटा। 1916 मे निकोलस द्वितीय के सिंहासन छोडने के बाद हालते एकदम बदल गई। अस्थायी सरकार के राज्यकाल से क्रान्ति तक कोयले की भयङ्कर कमी, कच्चा माल न मिलना, व्यापक हडताले तथा अराजकता ने विश्वास और उन्नति को नष्ट कर दिया। पुराने ढाँचे पर सङ्गठित यह उद्योग पूँजीवाद के नष्ट होते ही अपनी प्रगति खो बैठे। 1917 मे बोल्शविक सरकार को विरासत मे पुराने वैभव तथा उन्नति का केवल खंडहर मिला।

कृषि

रूस के अर्थव्यवस्था मे, तमाम औद्योगिक विकास होने पर भी, कृषि का प्रमुख स्थान क्रान्ति के समय और उसके बाद भी कुछ दिन तक पूर्ववत बना रहा। सबसे अधिक जनता इस क्षेत्र मे व्यस्त होने के साथ-साथ रूसी कृषि को कभी भी यथोचित ध्यान नही मिला। राजतन्त्र के समय मे कोई ठोस कदम उठाने की आवश्यकता न समझी गई। अस्थायी सरकार ने प्रो० मिल्यूकोव के निर्देशन मे प्रथम प्रयास किया। इसके द्वारा राजकीय भूमि उस पर काम करनेवाले किसानो में बाँटने का विचार था।

सरकार ने यह तो मान लिया कि व्यक्तिगत किसानो को भूस्वामित्व मिलना चाहिये किन्तु मुआवजे के बारे में कुछ निश्चय न कर सकी। क्रान्तिकारी केरेन्सकी ने बिना मुआवजे के सारी भूमि किसानो मे बॉटने का निश्चय किया। बुनियादी तौर पर इसमे, और आगे आने वाली लेनिन की कृषि-योजना मे कोई अन्तर न था। इसके असफल होने का कारण इन योजनाओ मे न होकर परिस्थितियो मे मिलता है। जार के गद्दी छोडते ही आक्रान्त किसानो ने अपने को स्वतन्त्र समझना शुरू कर दिया। भूमि प्राप्त करने की इच्छा इतनी प्रबल थी कि वैधानिक रीति से स्वामित्व प्राप्त करने की प्रतीक्षा वे न कर सके। लेनिन के आने के पहले तक बलप्रयोग द्वारा अधिकतर भूमि किसानो ने छीन ली थी। "सारी जमीन किसानो को" [All land to the peasants] का बोल्शविक नारा यथार्थ को वैधानिक बनाने का अकेला तरीका था।

प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के बाद से ही रूसी कृषि का पतन होने लगा। 1917 तक कृषि-क्षेत्र से एक-तिहाई से आधे तक श्रमिक सेना मे भर्ती किये जा चुके थे। इसका सबसे बडा प्रभाव कृषि उत्पादन मे अवनति थी। उत्पादन के गिरने का उत्तरदायित्व और भी कई बातो पर था। अर्थव्यवस्था मे विदेशियो का प्रभाव होने से उद्योग एव कृषि का सतुलित विकास न हुआ। बडे खेतो पर मशीनो का प्रयोग इतना काफी बढ़ चुका था, फिर भी इन मशीनो के बनाने की देश मे कोई व्यवस्था न की गई। युद्ध मे उनका आयात रुक जाने से उत्पादन का गिरना स्वाभाविक था। यही दशा रसायनिक खाद तथा उच्च कोटि के बीजो की भी हुई। सेना ने किसान का मुख्य पशु [घोडा] विशाल संख्या मे जब्त कर लिया। जर्मन सेना के साथ रूसी सेना को भी जब भोजन की कमी अनुभव हो तो आसपास के गॉवो के पशु प्रयोग मे लाये जाते थे। 1917 तक मुख्य अन्न का क्षेत्रफल 780 लाख देस्यातिन हो गया जबकि 1914 मे यह क्षेत्रफल 886 लाख था। अनाज तथा आलू की उपज 690 करोड पूड [1914] से घटकर 500 करोड पूड हो गई।

युद्ध, अराजकता तथा शासन प्रबन्ध की खराबी से भोजन की कमी धीरे-धीरे बढ़कर 1917 तक अकाल का रूप धारण कर चुकी थी। रूस को यूरप का अन्न भडार कहा जाता था। 1913 मे रूस ने 64.8 करोड पूड अन्न यूरप को बेचा। युद्ध के कारण अन्न का निर्यात 1916 मे कुल 27 लाख पूड हुआ। इतने अन्न के बच जाने से अभाव का अनुभव नही होना चाहिये था। सेना की मॉग तथा यातायात की कमजोरी से वितरण की दिशा और मात्रा दोनों एकदम बदल गये। अच्छा यह था कि कटाई के बाद ही युद्ध छिड गया। इससे 1914 की पूरी फसल निर्यात होने से बच गई। 1915 से मुद्रास्फीति तथा उत्पादन में कमी ने अनाज का अभाव पैदा कर दिया। अभाव को संकट में बदलने का शासन-प्रबन्ध ही जिम्मेदार था। पश्चिमी रूस के युद्ध स्थलों

से भागे हुए लाखों शरणार्थियों के पुनर्निर्वास का कोई केन्द्रीय सञ्चालन न था। इससे अन्न की उपलब्धि देखते हुए उनको अलग-अलग क्षेत्रों मे नहीं भेजा गया। किसानो से अनाज खरीदने और इस खरीद का मूल्य निर्धारण करने का अधिकार अलग-अलग जिलों के अधिकारियों को दिया गया था। केन्द्रीय निर्देशन न होने से पडोसी जिलो मे एक ही वस्तु का अलग दाम निश्चित हुआ। किसान अपनी उपज अपने जिले मे ही न बेचकर आस-पास के क्षेत्रों मे बेचते थे जहाँ पर मूल्य अधिक निर्धारित किया गया हो। सेना अपनी आवश्यकता का अनाज खुले बाजार से भी खरीदती थी। उपज को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये नागरिक अधिकारियो द्वारा निश्चित मूल्य से अधिक सेना के अधिकारी देते थे। अनुशासनहीनता को यह खुला निमत्रण था। इन सबके परिणामस्वरूप 1917 के आरम्भ मे बाजार से अनाज, मास, चीनी, मक्खन अडे प्रायः गायब हो चुके थे। चोरबाजार और सट्टेबाजो ने अर्थव्यवस्था को अपने हाथ मे ले लिया। ऐसे समय मे सरकार ने बडे शहरो मे राशनिङ्ग शुरू किया। अव्यवस्थित एव अस्थिर परिस्थितियो मे इस भूल ने विषम उलझने पैदा की। यह कहा जाता है कि राजतन्त्र के उन्मूलन का एक मात्र तात्कालिक कारण अन्नसकट था।

श्रमिक :

आर्थिक सङ्गठन के उपरोक्त पृष्ठभूमि से सरलता के साथ यह विदित होता है कि किसानो के साथ-साथ श्रमिकों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। उद्योगों में होने वाली प्रगति तथा लाभ के साझीदार यह श्रमिक न बने। जो कुछ उनके वेतन मे वृद्धि हुई थी, वह चीजो के बढ़े हुये मूल्य ने खा डाला। युद्धकालीन असाधारण माँग और औद्योगिक प्रगति के बीच देश की अविकसित अर्थ-व्यवस्था दीवार बन कर खडी हो गई। अत्यन्त लाभदायक अधिक उत्पादन की आवश्यकता के साथ-साथ देश के मजदूरो मे विस्तृत रूप मे बेकारी फैली। इसकी वजह मशीनों तथा कुशल कारीगरों के विदेशो से आने मे कठिनाई थी। नागरिक उपभोग के उद्योग बडी मात्रा मे बन्द हुए, जिससे बेकारी को और सहारा मिला। अन्न की भयकर कमी ने इन बेरोजगार मजदूरों को क्रान्ति के लिये लाचार किया। कारखाना मजदूर आरम्भ से ही क्रान्तिकारी दलों के प्रचार का केन्द्र रहा है। इनमे से जब मजदूरों को सेना मे भेजा गया तो वहाँ पर सैनिकों मे क्रान्ति की भावना जाग्रति करने का काम इन्होने बडी सफलता से किया। राजनैतिक दलों ने मजदूरों को समझाया कि भोजन और काम उनको माँगने से नही मिल सकता। इसे लडकर प्राप्त करना होगा। 1915 से ही पैट्रोग्राड मे अन्न के लिये दगा होना शुरू हो गया था। अपने असतोष को प्रभावशाली बनाने के लिये बडी-बडी हडताले हुई, जो किसी भी प्रकार से शान्तिपूर्ण नही कही जा सकती। जब इन हडतालियो को दबाने के

लिये भेजी गयी सेनाओं ने उनका साथ देना शुरू किया तब से आर्थिक हड़तालें राज्य-क्रान्ति में बदल गयीं।

राज्य-क्रान्ति :

रूस की यह विशेषता रही है कि देश ने प्रत्येक युद्ध के बाद अपना कलेवर बदला अथवा बदलने का प्रयत्न किया था। क्रीमिया में युद्ध का प्रभाव दास मुक्ति; रूसी-जापानी युद्ध का प्रभाव 1905 की क्रान्ति एवं प्रजातंत्र शासन में प्रयोग, तथा 1914 के युद्ध के परिणामस्वरूप 1917 की राज्य-क्रान्ति हुई। प्रत्येक युद्ध अथवा अराजकता के बाद जनता यह आशा करती है कि जो नई सरकार या व्यवस्था बनी, इसके द्वारा सभी कष्ट दूर हो जायेंगे। इसी आस्था का सहारा लेकर देश की प्रगति नवीन दिशा में होती रही है। लेनिन के अनुसार किसी भी देश में क्रान्ति के लिये चार बातें जरूरी हैं—प्रथम, अधिकांश जनता अत्यन्त असंतुष्ट हो, और जीवन असहनीय हो चुका हो। द्वितीय, जनता शासकों में श्रद्धा एवं विश्वास खो चुकी हो। तृतीय, शासक में आत्म-विश्वास न हो। चतुर्थ, शासक का सब से शक्तिशाली अस्त्र, सेना तथा पुलिस, प्रभावहीन हो जाय। 1917 में यह सभी हालतें उत्पन्न हो चुकी थीं।

इस क्रान्ति के बीज 1861 में बोये गये जब कि दास-मुक्ति का नाटक रचाकर जार ने असंतुष्ट किसानों को धोखे से भूस्वामियों तथा पूँजीपतियों के हाथ में ही बने रहने दिया। जिस व्यापक तथा गंभीर शोषण को इन सुधारों ने सम्भव बनाया, उसका प्रभाव अत्यन्त विषाक्त पड़ा। 1905 की क्रान्ति इस असंतोष का प्रथम विस्फोट थी। इससे बाध्य होकर 1906 में पहली प्रतिनिधि सभा [ड्यूमा] बनी। यह अन्तिम अवसर था जब कि जार बदले हुये जमाने के साथ अपना संतुलन स्थापित कर सकता था। दुर्भाग्यवश, आइवन, पीटर तथा कैथरीन का वंशज निकोलस द्वितीय अत्यन्त कमजोर इच्छा-शक्ति वाला व्यक्ति था जिसमें चालाकी, दूरदर्शिता, साहस तथा कूटनीति का लेशमात्र भी न था। सद्भावना का अपार भंडार लिये हुए यह दुर्बल शासक, रोमानोव वंश के तमाम भूलों तथा अत्याचारों का भार ढोने में असमर्थ सिद्ध हुआ। अपनी महत्वाकांक्षिणी पत्नी सम्राज्ञी एलेक्जाण्ड्रा के पूर्ण प्रभाव ने जार को केवल नाम मात्र का शासक बना रक्खा था।

1905 से 1917 तक के शासन में जनता के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को आंशिक रूप में पूरा किया गया। देश के कुछ बहुत योग्य व्यक्ति इस उदार शासन के प्रयोग से सम्बन्धित थे जैसे प्रिंस लवोव, प्रोफेसर मिल्यूकोव तथा केरेन्सकी। इनके सफल न होने का मुख्य कारण था कि वे परिस्थिति का उचित विश्लेषण न कर सके। इनका प्रयास जार की शक्ति को बनाये रखना था। भूस्वामियों तथा पूँजीपतियों के प्रभाव इन

पर स्पष्ट थे। जनता के असतोष को दूर करने का, उनके विचार से, राजनैतिक सुधार ही एक मात्र उपाय था। किन्तु एक पिछडे हुए गरीब देश की अशिक्षित जनता शासन-पद्धति तथा राजनैतिक स्वतत्रता की तरफ विशेष रुचि नही रखती। सचमुच देखा जाय तो जनता शान्ति, भूमि एव रोटी चाहती थी। रूस-जापान के युद्ध का प्रभाव अभी दूर न हो पाया था कि 1914 की लडाई छिड गई। पोलैंड, यूक्रेन तथा बालकन प्रदेश के निकल जाने से देश की आर्थिक व्यवस्था और भी बिगडी। युद्ध का खर्चा तथा रूसी सैनिको की मृत्यु ने जनता को किसी भी मूल्य पर शान्ति प्राप्त करने का इच्छुक बना दिया। हथियारो की कमी, उद्योग तथा कृषि मे लगे एक-तिहाई पुरुषो का युद्ध पर जाना, मुद्रा-स्फीति तथा गिरते हुए उत्पादन के कारण महँगाई, मजदूरो की कमी, सेना की खपत के कारण अप्राप्य अनाज, कोयले की कमी, हडताल तथा यातायात के टूटने से कारखानो की बन्दी और अन्त मे बेरोजगारी ने विप्लव की सभी अवस्थाओ को उत्पन्न कर दिया। 12 मार्च 1917 को जार ने गद्दी छोड दी और उनके भाई ने परिस्थिति देखते हुए जार बनना अस्वीकार कर दिया। एक अस्थायी सरकार बनाई गई परन्तु उस समय तक हालते इतनी बिगड चुकी थी कि क्रान्तिकारी केरेन्सकी की सरकार भी स्थिति को सम्भाल न सकी।

अप्रैल 1917 मे लेनिन अपने मुख्य सहयोगियो के साथ 11 वर्ष पश्चात् रूस वापस आया। उसने आते ही अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व, असाधारण प्रतिभा, विस्तृत ज्ञान एव अनुभव से सेन्टपीटर्सबर्ग [पिट्रोग्राड] मे अस्थायी सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झंडा गाडा। यह कहा जा सकता है कि लेनिन ने क्रान्ति करायी नही, केवल एक सफल क्रान्ति का निर्देशन अपने हाथो मे ले लिया। आश्चर्य की बात तो यह है कि मार्च 1917 मे आरम्भ हुई क्रान्ति के पैदा करने में तथा सफल बनाने मे बोल्शेविक पार्टी का मुश्किल से ही हाथ रहा होगा। इस दल मे कुछ हजार व्यक्ति थे और इसके बारे मे जनता बहुत कम जानती थी, किन्तु जब जार के हटने के बाद जनता मे विश्वास-पात्र नेता न होने से क्रान्ति के अपने आप असफल होने का अन्देशा था; लेनिन ने आकर "रोटी-शान्ति-भूमि" तथा "सोवियत सर्व-शक्तिमान है" का नारा लगाया। अक्टूबर 1917 [नये कलैण्डर के अनुसार नवम्बर 1917] में लेनिन और उसके साथियो ने केरेन्सकी को हटाकर देश का शासन बोल्शेविक पार्टी के हाथ मे ला दिया।

इस प्रकार निकोलस के सर से गिरे हुए रूसी ताज को जब कोई भी सॅभालने को सामने न आया तो लौह-पुरुष लेनिन ने आगे बढ कर उसे उठा लिया। सारांश में, रोमानोव वंश का अन्त किसी के द्वारा नहीं हुआ; ड्यूमा ने इसके अधिकार नहीं छीने; लेनिन उस समय स्विट्जरलैण्ड में था; ट्राट्स्की न्यूयार्क में; तथा बोल्शविक पार्टी के दूसरे सदस्य सोवियत में प्रभावहीन अल्पसंख्यक [Minority] थे। जब यह लोग नक्शे में

आये उस समय अनुशासनहीन पागल भीड, भागे हुए सैनिको के साथ मिलकर, क्रान्ति का प्रथम चरण पूरा कर चुकी थी। जारशाही का अन्त अपनी ही अयोग्यता से हुआ और तात्कालिक कारण सम्राज्ञी अलेक्जेण्ड्रोवा तथा धूर्त रासपुतीन का अविवेकपूर्ण पक्षपात एवं अप्रिय हस्तक्षेप था।

क्रान्ति हुई और संसार मे नये सिद्धान्तो पर आधारित समाज का निर्माण हुआ। कितना महान् आश्चर्य है कि इतना बडा परिवर्तन होने पर भी देश के सगठन की मौलिक रूप-रेखा न बदली; शक्ति का अधिकतम केन्द्रीयकरण, अत्यन्त विस्तृत राजकीय अफसरवाद [Massive bureaucracy], सेना पर अत्यधिक निर्भरता, कठोरतम बल प्रयोग, गुप्तचरो का जाल तथा नेताओ की देवता के समान पूजा पूर्ववत बनी रही।

राजनैतिक दृष्टि से इस क्रान्ति द्वारा राज्य-शक्ति कट्टरपथियो के हाथ से निकल कर क्रान्तिकारियो के हाथ मे चली गई। इस क्षेत्र मे लेनिन की नीति के दोनो अंग जनता को अत्यन्त आकर्षक मालूम पड़े। प्रथम थी शान्ति—जिसको पाने के लिये लेनिन ने यूक्रेन तथा पोलैण्ड के रूप मे बडी ऊँची कीमत चुका कर ब्रेस्त लीतोवस्क की सन्धि दिसम्बर 1917 मे कर ली। द्वितीय थी—सोवियत सगठन की स्थापना। सोवियत अर्थात् श्रमिको के प्रतिनिधियो की समिति का निर्माण 1905 के क्रान्ति में हुआ था। 1917 के क्रान्ति के आरम्भ मे पेट्रोग्राड मे इन सोवियतों ने मिलकर रूसी सरकार के समानान्तर एक दूसरी सरकार स्थापित कर ली। मजदूरो तथा सैनिको के प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित यह सरकार शासन-शक्ति से वंचित जनता को वरदान-सा लगा। जून 1917 में अखिल रूसी सोवियत सम्मेलन बुलाया गया जिसको बोल्शेविक नेताओ ने अपने योग्य हाथो में एक प्रभावशाली शक्ति बना लिया। प्रजातंत्रात्मक बुनियाद पर निर्मित यह सोवियत सस्था का विकास केवल क्षणिक था। लक्ष्यप्राप्ति के बाद वास्तविक राज्य-सत्ता चुने हुए बोल्शेविक नेताओ मे केन्द्रित हुई। आज भी इन सोवियत का अर्थहीन तथा खोखला ढॉचा खडा है। देश का सरकारी नाम भी समाजवादी गणतंत्र सोवियत सघ [Union of Soviet Socialist Republics—U S. S. R] है।

आर्थिक क्षेत्र मे देश की सबसे बडी माँग, भूमि, को भी लेनिन ने बिना समय नष्ट किये पूरा कर दिया। फरवरी 1918 की राजाज्ञा द्वारा भू-स्वामियो की सारी भूमि बिना किसी मुआवजे के किसानो मे बॉट दी गई। हर किसान को इतनी भूमि प्राप्त करने का अधिकार मिला जिस पर वह सफलता से खेती कर सकता हो। शताब्दियों से चला आ रहा अभिशाप [भू-स्वामी] नष्ट हो गया। वैतनिक श्रम वर्जित कर दिया गया क्योंकि दूसरो की मेहनत से लाभ उठाना शोषण माना जाता था। कारखाना मजदूरो का सहयोग लेनिन के दो नारो ने प्राप्त कर लिया—रोटी और मजदूरो द्वारा उद्योग सचालन। उत्पादन के सभी साधन राष्ट्रीय संपत्ति बन गये। जून 1918 में

राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ हर कारखाने का प्रबंध मजदूरो के प्रतिनिधियो को सौप दिया गया जो कि मजदूर सघ समिति [Trade Union Committee] के रूप मे काम करते थे। इन्होने पुराने प्रबधको को या तो एक दम हटा दिया, या उनसे केवल नाममात्र को सहायता लिया। पूँजीवादी 'लाभ' का सिद्धान्त बिल्कुल उडा दिया गया।

राज्य क्रान्ति का प्रभाव

रूसी क्रान्ति के तरह व्यापक विप्लव आर्थिक दृष्टि से कभी भी अच्छा नही होता। विनाश पर आधारित इसका कार्यक्रम निर्माण की सम्भावना ही समाप्त कर देता है। प्रथम चरण मे जनता की अनुशासनहीनता तथा पशुता की प्रवृत्तियो को पूरी छूट मिलती है, जिससे उद्देश्यविहीन, निरर्थक विध्वस आरंभ होता है। इसके बाद इन प्रवृत्तियो पर फिर से काबू पाने के लिये इनको संतुष्ट करने या दबाने का समय आता है। क्रान्ति के नेताओ का प्रभाव इसी समय सामने आता है। यदि यह सफल हुआ तब निर्माण का कार्य ध्यान आकर्षित करेगा। अन्यथा क्रान्ति मे जागी हुई जनता विनाश को पहलू मे लिये फिर सो जायगी।

रूसी क्रान्ति मे भी यही क्रम विद्यमान था। 1917 मे हुई क्रान्ति लगभग मार्च 1918 मे पूरी हुई। इसका द्वितीय चरण इस समय से लेकर 1921 के आरम्भ तक चलता रहा। क्रान्ति के बाद जब देश की बागडोर बोल्शेविक सरकार ने सम्भाला तो देशी तथा विदेशी परिस्थितियो पर काबू पाने के लिए लेनिन ने आश्चर्यजनक क्षमता का परिचय दिया। आर्थिक अधोगति क्रान्ति के कुछ पहले से आरम्भ हो चुकी थी और क्रान्ति के बाद भी काफी देर तक चलती रही। मुद्रा-स्फीति को रोकने का कोई उपाय बोल्शेविक सरकार सामने न ला सकी और यह बढ़ती ही गयी। अक्टूबर 1917 के बाद देश की वित्त-व्यवस्था बराबर गिरती रही। आरम्भ मे तो उद्योगपति तथा विदेशी पूँजीपति इसी विचार मे थे कि ऐसे देश में जहाँ कि राजनैतिक स्थिति तेजी से बदलती हो, बोल्शेविक सरकार एक अस्थायी व्यवस्था ही रहेगी। लेकिन जर्मनी से सन्धि करने के बाद जब व्यापारिक बैंको का [ग्राहको की पूँजी तथा संपत्ति के साथ] राष्ट्रीयकरण कर लिया गया [Dec 14, 1917] तब से पुराने अर्थशास्त्रियो एवं उद्योगपतियो का विश्वास नयी सरकार से उठने लगा। लगभग इसी समय तमाम प्राचीन सिद्धान्त एवं प्रथा की अवहेलना करके नयी सरकार ने अपनी निरंकुशता का परिचय दिया। अरबो रूबल के देशी तथा विदेशी ऋण को रद्द कर दिया गया। इसने व्यापारिक तथा आर्थिक दृष्टि से रूस को एक अछूत बना दिया। एकदम पृथकवाद मे देश को खींचकर सारे ससार के विरुद्ध कुख्यात् लौह-द्वार [Iron-curtain] बंद हो गया।

उद्योग मे भी क्रान्ति के बाद अवनति होती गई। मजदूरो मे अनुशासन की समाप्ति के साथ अनुभवी प्रबधको के हट जाने से, या प्रभावहीन हो जाने से, कारखानों की व्यवस्था अपना क्रम खो बैठी। अशिक्षित मजदूरो को क्रान्ति एवं स्वतंत्रता का अर्थ यह समझ में आया कि आगे से बिना काम किये सरकार उनकी सब जरूरतों को पूरा करेगी। यातायात एकदम छिन्न-भिन्न हो गया था। कोयला और पेट्रोल का उत्पादन, लोहा और ताँबे के साथ, इतना गिरा कि पूरे उत्पादन-क्षेत्र में भीषण कमी दिखलाई दी और कच्चा माल न मिलने के कारण कपडा तथा चीनी उद्योग उत्पादन बन्द करने पर बाध्य हुए।

लेनिन को सबसे बडी निराशा किसानो से मिली। समृद्धशाली किसानो के विरुद्ध गरीब किसानो ने उस तरह का विद्रोह नही किया जैसी कि लेनिन को आशा थी। क्रान्ति के उच्चादर्शों को किसान समझने मे सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुआ। कठोरता एवं बल प्रयोग के अतिरिक्त, सेना तथा शहरो के लिये अनाज प्राप्त करने का दूसरा उपाय लेनिन के सामने नही था। इससे किसानो में और असंतोष फैला। उत्पादन कम होता गया, और रूस तेजी से 1920-21 के भीषण अकाल की ओर बढ़ा।

अतः यह तथ्य निकाला जा सकता है कि क्रान्ति की अव्यवस्था एव अस्थिरता आर्थिक क्षेत्र मे इतनी विस्तृत रही कि क्रान्ति के बाद कई साल तक गिरता हुआ उत्पादन, बेरोजगारी एव मूल्य की वृद्धि के रूप मे जनता को क्रान्ति का मूल्य चुकाना पड़ा।

साम्यवादी क्रान्ति और रूस

इसमें कोई सन्देह नही कि क्रान्ति के प्रमुख कारण समकालीन आर्थिक स्थिति में मिलते है। किन्तु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्रान्ति सबसे पहले रूस में ही क्यो हुई? कार्ल मार्क्स के अनुसार साम्यवादी क्रान्ति उस देश में सबसे पहले होनी चाहिये थी जहाँ औद्योगीकरण बहुत हो चुका हो; जहाँ श्रमिकों की संख्या अधिक हो और जहाँ विकसित प्रजातत्र पाया जाता हो। सौ वर्ष से भी अधिक पुराना यह कथन आज भी कुछ संशोधनो के साथ सत्य है। साम्यवाद, पूँजीवाद के विकसित रूप, साम्राज्यवाद [imperialism] की सबसे कमजोर कड़ी को तोड़कर अपना स्थान बनाता है। यह जरूरी नहीं है कि जिस देश मे सबसे कमजोर कडी पाई जाय, वह उद्योग-प्रधान हो।[1] पिछड़े हुए खेतिहर देश मे क्रान्ति हो सकती है। इस तरह भारत, चीन, मिश्र, टर्की, या रूस कही भी साम्यवाद का प्रवेश सम्भव था। रूस की साम्राज्यवादी सरकार

---

[1] J. Stalin Problems of Leninism, p 20

सबसे कमजोर सिद्ध हुई। इसके कई कारण थे: लगातार युद्ध से जान और धन की हानि, अफसरवाद और बेइमानी का असाध्य रोग, राजा-प्रजा के बीच आपसी सम्पर्क का एकदम अभाव तथा अविवेकपूर्ण, शक्तिहीन सम्राट। इनसे उत्पन्न शासन की दुर्बलता ने साम्यवाद का मार्ग निष्कंटक बना दिया। अन्य देशों में यह दुर्बलता न होने से, प्रथम तो, क्रान्ति की स्थिति आ न सकी; और यदि आ भी जाती, तो उस पर आसानी से काबू पाया जा सकता था।

रूस मे मार्क्सवाद का आगमन साम्यवादी क्रान्ति से नही सामाजिक क्रान्ति के कारण हो सका। सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष हर तरफ था। राज्यकर्मचारी, सेना और जनता सभी इससे व्याप्त थे। यह बात विशेषकर याद रखनी चाहिये कि जिन परिस्थितियों का साम्यवादी नेताओ ने लाभ उठाया, वह महँगी रोटी और घूसखोरी के विरुद्ध सामाजिक असंतोष की अभिव्यक्ति थी। क्रान्ति के आरम्भ और विकास के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि 1917 की क्रान्ति न तो जार के विरुद्ध थी, न शासन में प्रतिनिधित्व पाने के लिए थी। अगर शहरों मे अनाज और गॉवो मे उपभोग की वस्तुऍ उचित दाम में पहुँचाई जा सकती, तो विप्लवी प्रवृत्तियॉ अपने आप शान्त हो जाती। कम से कम राज्य क्रान्ति न होती। अन्य सरकारो ने सामाजिक असंतोष इतना बढ़ने ही नहीं दिया कि विस्फोट का डर पैदा हो।

मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार साम्यवादी क्रान्ति उसी समय होगी जब पूँजीवादी शोषण असह्य हो जायगा। यहॉ तक माना जाता है कि समाजवाद की स्थापना के लिए असह्य शोषण पैदा करने में पूँजीवाद को सहयोग देना चाहिये। रूस में पूँजीवादी शोषण तो असह्य नही था किन्तु जनता के दमन का विस्तार असीमित था। फिर इससे क्या अन्तर पडता है कि यह दमन पूँजीवाद की जगह जारशाही से पैदा हुआ हो? मार्क्स की बुनियादी आवश्यकता तो पूरी हो गई केवल उसके उद्गम मे भिन्नता थी।

मार्क्स के अनुसार पूर्ण विकसित पूँजीवादी औद्योगिक देश मे मजदूरो का शोषण सबसे अधिक होता है। इसी शोषण के कारण क्रान्ति का सहारा लेकर मजदूर समाजवादी समाज की रचना करता है। किन्तु समय के साथ मजदूरो के असंतोष को सीमा में बॉधे रहने के लिए पूँजीवाद में बहुत तरकीबें निकल आयीं [राजकीय नियंत्रण, सामाजिक सुरक्षा इत्यादि]। पूर्ण विकसित औद्योगिक देश मे उद्योगपतियो के पास इतना धन सञ्चय हो चुका रहता है कि वे बहुत त्याग के बिना अपने शोषण में कमी कर सकते है और मजदूरों को संतुष्ट रखने के उपाय अपना सकते हैं लेकिन ऐसे देशो मे जोकि पूँजीवाद में कुछ ही दूर गये हों, शोषण अपने सबसे विकराल रूप में होता है। नये उद्योगपति पूँजी संचय [Capital accumulation] में इतने लिप्त रहते हैं कि दूसरी और सभी

बातें अर्थहीन मालूम पड़ती है। इस प्रकार मार्क्सवाद के आगमन के लिए जिस शोषण की आवश्यकता होती है वह उस समय के रूस के अर्ध विकसित पूँजीवादी उद्योग में पूर्णतया वर्तमान थी।

अन्त में देश के सौभाग्य से उस समय अपूर्व साहस, बुद्धि तथा अवसरवादिता से परिपूर्ण नेता सामने आये। अपनी नीति तथा रूसी परम्परा मे पूर्ण तारतम्य स्थापित करके इन्होने जनता का सहयोग प्राप्त कर लिया। जनता ने साम्यवादी कार्यक्रम में करीब-करीब उतनी ही कठोरता, व्यक्तित्व का दमन, रक्त, स्वेद और अश्रु पाया जिससे सदियो की जारशाही मे वे पूर्ण अभ्यस्त हो चुके थे। फिर भी वे इस ओर आकर्षित हुए क्योंकि पहली बार साम्यवादियो ने जनता को त्याग के बदले कुछ देने का वादा किया—जब इस वादे मे जनता ने 'शान्ति, भूमि और रोटी' की प्राप्ति देखी, तो वे कुछ भी करने को तैयार हो गये।

अध्याय ७

विदेशी हस्तक्षेप तथा युद्धकालीन साम्यवाद

[Foreign Intervention and War Communism]

विदेशी-हस्तक्षेप

क्रान्ति के बाद साम्यवादियो को विषम परिस्थिति का सामना करना पडा। इसके पहले कि इस टूटे हुए शासन-व्यवस्था की श्रृङ्खला फिर से जोडी जा सके, देश और विदेश मे एक साथ नई सरकार को उखाड़ फेकने का षड्यंत्र चालू हुआ। पराजित राजनैतिक दलो ने पश्चिमी राष्ट्रो के साथ गठबधन रचा। युद्ध अभी चल ही रहा था। जर्मनी के विरुद्ध पूर्वी मोर्चा बनाने के लिए पश्चिमी राष्ट्रो ने असंतुष्ट रूसी दलों तथा व्यक्तियो को पूर्ण सहयोग दिया। इनकी मदद से प्रभावशाली व्यक्तियो ने अलग-अलग क्षेत्रो में अपना शासन स्थापित कर लिया। दक्षिण मे अग्रेजो ने कार्नीलोव [General Kornilov] को विद्रोह के लिए उसकाया। फ्रास की निगाह क्रीमिया पर थी। शर्नोव [Chernov] ने वोल्गा नदी के नीचे की ओर दूसरी सरकार बनाई। अग्रेजो की मदद से साइबेरिया मे एडमिरल कोलचक [Admiral Kolchak] ने विशाल प्रदेश दबा लिया और अपने को रूस का शासक घोषित किया। बैकाल झील के आस-पास कर्नल सेमिनोव [Colonel Semenov] और मंचूरिया मे जनरल हारवट [General Horvat] ने जापानी सहायता से व्लाडीवोस्टक को अपना केन्द्र बनाया। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने भी कई हजार सैनिक षड्यन्त्रकारियो की मदद के लिए साइबेरिया भेजा था। जेक [Czeck] सैनिको ने उस क्षेत्र में फैलकर बडी हानि पहुँचाई। इस तरह बोल्शविक सरकार ने आरम्भ मे देश के क्षेत्रफल का दो-तिहाई भाग खो दिया।

नवम्बर 1918 मे जर्मनी ने हार मान ली। बोल्शेविक सरकार की आश्चर्यजनक लगन तथा वीरता देखकर तथा रूस के गृह-युद्ध मे पश्चिमी राष्ट्रो की रुचि घटने लगी। एक-एक करके विद्रोही गिरने लगे। अंग्रेजी फौजे अत तक डटी रही। गृह-युद्ध तथा विदेशी हस्तक्षेप का अतिम चरण पोलैंड का युद्ध था। वहाँ पर काफी हानि उठाकर मार्च 1921 मे लेनिन को रीगा की सन्धि करनी पड़ी। इस प्रकार महान् पीटर द्वारा विजित बाल्टिक सागर का मार्ग तथा यूक्रेन व साइबेरिया का बडा भाग खोकर बोल्शेविक सरकार ने अपने अस्तित्व की रक्षा की। यह कहा जा सकता है कि गृह-युद्ध के काल मे

लेनिन एक साथ तीन विभिन्न युद्ध मे लगा हुआ था—श्वेत रूसी नेता कोलचक के साथ पुराने शासन की पुनः स्थापना रोकने के लिए; पश्चिमी राष्ट्रो तथा जापान के साथ देश की स्वतन्त्रता व सीमाओ की रक्षा के लिए; एव अन्य राजनैतिक दलो के साथ कम्यूनिस्ट पार्टी की निर्विवाद एकछत्र प्रभुता जमाने के लिए।

युद्ध-कालीन साम्यवाद

1918-1921 के बीच का यह समय युद्ध कालीन साम्यवाद [War Communism or Period of Militant Communism] का युग कहलाता है। इस समय का आर्थिक इतिहास युद्ध की आवश्यकताओ से सचालित हुआ। रूसी अर्थ-व्यवस्था एक घिरे हुए किले की व्यवस्था के समान थी जहाॅ पर उन्मूलन एव विनाश का भय ही एकमात्र प्रेरक था। इस घोर संकटकालीन अवस्था मे आत्मसरक्षण की भावना ने, सिद्धान्तो को हटाकर, केवल व्यवहारिकता को देखते हुए नीति निर्धारण के लिए राज्य को बाध्य किया।

जिस किसी देश को इतने बड़े पैमाने पर चारो ओर से शत्रुओ का सामना करना हो, उनके आर्थिक सगठन मे बड़ी स्पष्ट समरूपता दिखलाई पड़ेगी। हर क्षेत्र मे बढ़ता हुआ राजकीय हस्तक्षेप, साधारण निर्देशन से लेकर उत्पादन तथा वितरण का पूर्ण स्वामित्व तक हो सकता है। सैनिक आवश्यकताओं की प्राथमिकता नागरिक उपभोग को कम कर देती है। विशाल सैनिक सगठन जनसख्या का सबसे अच्छा भाग उत्पादन क्षेत्र से हटाकर कृषि तथा उद्योग मे उत्पादन कम कर देता है। यातायात की समस्या सैनिको तथा युद्ध की आवश्यकताओ को पूरा करने मे सबसे अधिक रुकावट उपस्थित करती है। मुद्रास्फीति एवं बढे हुए मूल्य जनता के हर वर्ग मे असतोष [और अगर प्रकृति ने साथ न दिया तो अकाल] की स्थिति व्यापक रूप से उत्पन्न करते है। ऐसे समय मे किसी भी मूल्य पर जनता से अधिकतम काम लेना होगा। चाहे तो यह धन देकर किया जाय अथवा जनता की माँगो को पूरा करके किया जाय। रूस मे लेनिन ने करीब-करीब इन सभी परिस्थितियो का सामना किया।

यह कहना उचित न होगा कि युद्धकालीन साम्यवाद का जन्म सिद्धान्तो को लेकर हुआ। मार्क्स के आदर्श साम्यवाद के अनेको गुणो को व्यवहार रूप में लागू करने का यह प्रयत्न न था। इसमें कोई संदेह नही कि 1917-1920 के बीच इस तरह की अनेको बाते पाई जाती है, जैसे, अर्थ व्यवस्था में से मुद्रा का प्रयोग हटना, व्यापार मे राजकीय एकाधिकार, केन्द्रीय वितरण संस्था [Narcomprod] के द्वारा गाॅवो और शहरो के बीच अनाज तथा वस्तु का बॅटवारा। इन्ही कुछ बातो को देखकर अनेको पाश्चात्य विद्वानो का विचार है कि युद्धकालीन साम्यवाद सिद्धात को यथार्थ बनाने का एक

असफल प्रयत्न था। जरा गहराई से देखने पर विदित होगा कि यह सभी कदम युद्ध से उत्पन्न संकटकालीन अवस्था को दूर करने के अकेले उपाय थे। मुद्रास्फीति तथा अन्य कारणों से मुद्रा की क्रय-शक्ति प्राय: नष्ट हो चुकी थी। ऐसी अवस्था में वस्तु-विनिमय [barter] द्वारा मुद्रा प्रयोग का हट जाना बहुत बडी बात नही थी। 1921 मे तो सरकार यह सोच रही थी कि राज्य-कर उठा दिया जाय क्योंकि राज्य की सभी आवश्यकताएँ वस्तु के रूप में ही प्राप्त होती थीं। एक अविकसित देश होने के कारण युद्धकाल में देश के अल्प साधन सैनिक क्षेत्र में लग गये। नागरिक उपभोग की वस्तुओं की भीषण कमी को कम करने का एकमात्र तत्कालिक उपाय वितरण के तरीकों में सुधार करना था। निश्चित प्राथमिकता के अनुसार कम साधनों को अधिक से अधिक सामाजिक लाभ के लिये वितरित करने का काम नारकमप्राद नामक संस्था को सौंपा गया। व्यक्तिगत व्यापार पर भी प्रतिबंध इसी उद्देश्य से लगा। अतः युद्धकालीन साम्यवाद एक निश्चित आर्थिक नीति के स्थान पर अस्थायी व्यवस्था मात्र था। लेनिन और दूसरे समकालीन विचारक इस समय में उठाये गये कदम को युद्ध तथा विनाश की उत्तेजना में की गई भूल मानते है। संकटकाल में तो इनको उचित कहा जा सकता है किन्तु शान्तिकालीन नीति का आधार यह कभी नही बन सकते थे।[1]

कृषि

रूस मे शक्ति का एकमात्र अवलम्ब आरम्भ में केवल किसान ही हो सकते हैं, यह बोल्शविक पार्टी अच्छी तरह जानती थी। किसानो का सहयोग पाने का सबसे अच्छा उपाय 'शान्ति और जमीन' का नारा था। जार एवं अस्थायी सरकार [provisional government] के नेता प्रिंस लवोव, प्रोफेसर मिल्यूकोव तथा केरेंस्की कोई भी मित्र-राष्ट्रों का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। केवल लेनिन ही किसी भी मूल्य पर शान्ति स्थापित करने को तैयार था। इसमें कोई संदेह नही कि अस्थायी सरकार की कृषि-सुधार योजनाएँ लेनिन के प्रस्तावों से बहुत मिलती थीं। अंतर केवल इतना था : जब दूसरे दलों ने सुव्यवस्थित रूप से वैधानिक मार्ग द्वारा किसानों को भूमि दिलाना चाहा था, लेनिन ने वैधानिकता पर समय खोये बिना एकदम से किसानों को भू-स्वामित्व हस्तांतरित करने का वादा किया। 'शान्ति और जमीन' का नारा इतना प्रभावशाली था कि किसान धोखे में आ गये। वे यह न सोच सके कि मजदूर किसानों की सरकार अगर भूमि का राष्ट्रीकरण कर ले, तो भी एक प्रकार से भू-स्वामित्व किसानों का ही हुआ। लेनिन की तीव्र बुद्धि ने यह देख लिया कि जब तक युद्ध के बादल साफ नहीं हो जाते, किसानों को शान्त रखने के लिये आवश्यक है कि राष्ट्रीयकरण व कृषि पुनर्संगठन पर

[1] Maurice Dobb, op cit, p 123

अधिक जोर न दिया जाय। इसलिये युद्धकालीन साम्यवाद का केन्द्र-विन्दु व्यक्तिगत खेती बनी रही। विना सरकारी मदद के, भू-स्वामियो को हटाकर किसानो ने लेनिन की एक बडी मुसीबत समाप्त कर दी। उनका दिन भी आ गया है इसका आभास किसानों को बाद मे हुआ। फिर भी किसान देश का साथ ऐसी संकटापन्न अवस्था मे इतने जल्दी छोड देगा [अन्न उत्पादन घटाना, उपज बेचने से इन्कार, खुला असहयोग आदि], इसकी आशा लेनिन को भी न थी। देश ने किसानो को इसलिये कभी क्षमा न किया।

क्रान्ति के समय मे किसानो द्वारा बलपूर्वक प्राप्त की हुई भूमि, पशु एव अन्य सपत्ति का कोई न कोई हल निकालना अति आवश्यक था। भूमि सङ्गठन मे किसानो का कम से कम विरोध लेते हुए कुछ व्यवस्था उत्पन्न करने का प्रयत्न हुआ। आमतौर पर आवश्यकता के अनुसार भूमि वितरण का सिद्धात लागू किया गया। गॉवो की भूमि हर एक परिवार मे, खेती पर आश्रित सदस्यो की सख्या के अनुसार, बॉटी गई। जिनके पास अधिक कृषि थी या जिन समृद्धशाली किसानो के पास अधिक औजार व पशु थे, उनको भी इसी सिद्धात के अनुसार बॉट दिया गया। एक समृद्धिशाली किसान तथा पुराने भू-स्वामी के बीच यह अंतर था कि प्रथम को समान अनुपात में भूमि रखने का अधिकार मिला जब कि दूसरे से सारी भूमि छीन ली गई। भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार तो वैधानिक बन गया किन्तु भूमि राज्य की ही संपत्ति रही, जिसको बेचने का अधिकार किसान को न था।

शीघ्र ही किसानो ने देखा कि क्रान्ति के समय मे की गई मनमानी उनका भविष्य नही बन पायेगी। 18 नवम्बर 1917 मे विना किसी मुआवजे के भू-स्वामियो की संपत्ति तथा भूमि छीन लेने का जो अधिकार मिला था उसमें व्यवस्था उत्पन्न करने के प्रयत्न किसानो को अच्छे न लगे। क्षणिक संतुष्टि के बाद उनमे अनेको असंतोष पैदा हुए। इस कानून के अतर्गत भूमि-स्वामित्व व्यक्तिगत किसानो को नही मिला। अस्थायी तौर पर इसे ग्राम समुदाय को दिया गया। भूमि का समान बँटवारा हो जाने पर भी प्रत्येक किसान को आवश्यकतानुसार पर्याप्त भूमि उपलब्ध न हुई। एक तो खेती योग्य भूमि इतनी नही थी कि हर किसान मामूली तौर पर अच्छा रहन-सहन पा सके। अनेको बड़े-बड़े जमीदारो के विकसित फार्म किसानो में न बॉट कर राज्य ने अपने अधिकार मे ले लिया। 1919 से इनको सोवियत फार्मों मे संगठित किया गया। इसका उद्देश्य प्रदर्शन द्वारा आधुनिक ढङ्ग की खेती का प्रचार करना था। किन्तु यह प्रयोग उस समय सफल न हुआ क्योकि अधिकतर बडे फार्मों के पशु और औजार आसपास के किसानों ने आपस में बॉट लिये थे। इन पर काम करने वाले व्यक्तियों मे से लगभग 55% निजी भूमि पाकर स्वतंत्र कृषक बन चुके थे। ऐसी दशा मे इनको चलाने के लिये कुछ असाधारण

नियम बनाये गये जैसे जिला–सप्लाई–समिति के द्वारा मशीन, औजार, पशु और बीज सबसे पहिले सोवियत फार्म को मिलता था; पडोस के गॉवो को अनिवार्य रूप से मजदूर व घोड़े देने पडते थे; तथा गॉवो मे प्रति-दिवस कार्यकाल बढ़ाकर दस घण्टे कर दिया गया। किसानो ने सोवियत फार्म का घोर विरोध किया क्योकि वे इतनी बड़ी भूमि से वञ्चित हो गये। 1920 तक यह प्रयोग सिवा असतोष उत्पन्न करने के किसी प्रकार भी सफल न हो सका।

कृषक समुदाय को बहुत-आशा थी कि जार शासन के अंत होने से उन पर लगे कर भी हट जायँगे। जब उन्होने देखा कि उनकी अपनी सरकार भी कर मॉगती है तो उन्हे बडी निराशा हुई। मध्यम तथा उच्चवर्ग के किसानो को और भी बोझ उठाना पडा क्योकि कृषक जनसख्या के ३५% गरीब किसान [बेद्नीकी] कर-मुक्त थे। युद्ध की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये राज्य ने किसानो द्वारा खुले बाज़ार मे अन्न बेचना बंद कर दिया। अनाज का सरकारी मूल्य निर्धारण किसानो को बहुत अखरता था। सच भी है, गिरते हुए रूबल के दाम के कारण, कोई भी निर्धारित मूल्य बाजार भाव से सदा कम रहता था। किसानो ने यह मॉग की कि मुद्रा की जगह वस्तु-विनिमय द्वारा व्यापार हो। उसमे कई कठिनाइयॉ थी। सीमित औद्योगिक उत्पादन-शक्ति युद्ध की आवश्यकताओ के बाद बहुत कम उपभोग की वस्तु बनाती थी। जो कुछ बनती भी थी वे सेना तथा शहरो मे ही समाप्त हो जाती। नारकमप्राद के अथक प्रयत्नो से भी यह समस्या नही सुलझी। यातायात की कमी व अराजकता के कारण मार्ग मे लुट जाने की घटनाएँ इस केन्द्रीय सप्लाई सस्था के काम मे मुख्य रुकावटे थी। किसानो ने अपनी उपज बेचना बंद कर दिया। लाचार होकर सैनिक सहायता से बलपूर्वक अनाज प्राप्त किया गया। अनाज वसूली के नाम से गॉव के बदमाश तथा आवारो ने घोर अत्याचार किया। बाद मे लेनिन ने स्वय स्वीकार किया कि मजदूरो तथा सैनिको को खिलाने के लिये किसान का लगभग सारा उत्पादन सरकार ले लेती थी। कभी-कभी तो उनके पास बोने के लिये भी अनाज नही बचता था।

आर्थिक क्षेत्र में जुलाई 1919 तक आते-आते बोल्शविको को अपने विरुद्ध क्रान्ति का भय इतना बढ़ गया कि सारे देश मे असाधारण आयोग [Extraordinary Commission] के द्वारा पूँजीवादी तथा कथित पूँजीवादी व्यक्तियो को खोज-खोज कर नष्ट करने अथवा प्रभावहीन बनाने का भयंकर दमन-चक्र चला। सारे देश मे इस आयोग का जाल-सा बिछ गया। कृषि मे दरिद्रो की समिति [Committee of the Poor] ने सभी उन्नतिशील व्यक्तियो मे संभावित शत्रु की छाया पाई, आयोग की दृष्टि मे प्रत्येक शिक्षित, समझदार, कुशल तथा अनुभवी सफेदपोश कर्मचारी देशद्रोही व पूँजीवादी बन गया। उत्पादन की अवनति मे नया युग आरम्भ हुआ। अपनी आतरिक

कमजोरी से उत्पन्न यह सशंकित मनोवैज्ञानिक स्थिति छोटे-से-छोटे रूप मे कितनी हानि कर सकती है, इसका सबसे हाल का उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका मे सेनेटर मैकार्थी द्वारा संचालित साम्यवादियो की खोज थी। इस प्रकार उद्योगिक जीवन को तोड़ने में बोल्शविक सरकार उतनी ही जिम्मेदार है जितनी कि साम्यवाद के शत्रु।

समृद्धिशाली किसानो के दमन के लिये वर्ग-संग्राम [Class struggle] आरम्भ करने की नीति बोल्शविक पार्टी ने अपनाई। नई सरकार को इस वर्ग के किसानो से ही खतरा उत्पन्न होने का डर था। किसानो को तीन वर्गों में बॉटा गया—कुलक [Kulak], केरेद्न्याक् [Cerednıak] व बेद्न्याक [Bednıak]। कुलक सिद्धान्त मे एक समृद्धिशाली किसान था जिसको सामाजिक शोषक माना गया क्योंकि वह अपना काम दूसरो से वैतनिक श्रम द्वारा कराता था। केरेद्न्याक मध्यम वर्ग तथा बेद्न्याक गरीब वर्ग के किसान थे। इस वर्गीकरण का निश्चित नियम न होने के कारण पक्षपात, विद्वेष, मतभेद एव राजनैतिक प्रतिहिसा को पूर्ण छूट मिली। अधिकतर वर्गीकरण का काम स्थानीय गरीबो की समिति [Local Committee of the Poor] करती जिसकी सदस्यता गॉव के निम्नतम कोटि के व्यक्ति [आलसी, बेकार, लुच्चे तथा बद-माश] व्यक्ति करते थे। जो कोई परिवार कुलक घोषित किया जाय उसका नागरिक अधिकार [बच्चो को स्कूल भेजने का अधिकार तक] छिन जाता था। अपनी अल्प आय का 40% कर देने के साथ-साथ वे सामाजिक अछूत बन जाते थे।

इन सब कारणो से सारे कृषि-क्षेत्र पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। फिर भी बोल्शविक सरकार के विरुद्ध विद्रोह करना उनको हितकर न लगा। यह विश्वास पूरी तरह घर जमा चुका था कि दूसरी कोई भी सरकार उनके पास भूमि न रहने देगी। प्रभावशाली रूप से अपना असतोष और विरोध प्रकट करने का केवल एक ही उपाय उनके पास था—उत्पादन कम करना। इसकी प्रथम अभिव्यक्ति पैदावार को छिपाने तथा चोरी से बेचने मे हुई। जिन वस्तुओ की राज्य को आवश्यकता थी उनकी जगह दूसरी चीजों को बोना शुरू किया गया। अंत मे कृषि का क्षेत्रफल ही कम करना आरम्भ हुआ। किसान उतनी भूमि पर ही अनाज बोता था जोकि उसको कम-से कम उपभोग के लिये पर्याप्त हो। इसका प्रभाव था कि 1917-1920 मे खेती का क्षेत्रफल गिरकर कुल 1/6 रह गया।

इस समय मे उत्पादन गिरने का एक और कारण था। 1914 तक बड़े किसान अपने आधुनिक खेतो पर वैज्ञानिक कृषि करके दूसरे किसानो से 50% अधिक अनाज उत्पन्न करते थे।[1] क्रान्ति तक इनकी सारी सपत्ति किसानो ने आपस में बॉट ली। इससे उत्पादन कम होना स्वाभाविक था। ऐसा मालूम पड़ा कि बोल्शविक नेता नये समाज की स्थापना, अनुभवी तथा विशेषज्ञ व्यक्तियो की सहायता एव सहयोग के बिना,

[1] Leites, K, Recent Economic Developments in Russia, p. 119.

केवल सिद्धान्त की मदद से करना चाहते थे। बहुत बडी सख्या में किसानो को सेना में भर्ती होने से उनके खेतो की पैदावार नाममात्र की रह गयी थी। परिणाम-स्वरूप, सम्पूर्ण कृषि उत्पादन मे भयकर अवनति हुई। 1919-20 मे फसल न होने के कारण देश में प्रायः अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गयी। 1920-21 के अकाल मे सबसे ज्यादा हानि देश के पशुधन की हुई। चारे की कमी ने घोडो तथा भेड़ो की सख्या में भारी कमी किया। इसकी सख्या 1921 तक लगभग 1917 की आधी रह गयी। विश्व-विख्यात मेरीनो भेड की सख्या मे 94% कमी हुई। चारा इतना मँहगा हो गया था कि एक मेरीनो भेड़ को खिलाने मे प्रतिवर्ष 1680 रूबल का खर्चा था। उनका ऊन 500 रूबल से ज्यादा का न बिकता था।

इस परिस्थिति से निकलने का सबसे पहला उपाय खेती का क्षेत्रफल बढ़ाना और किसानो को पूरे मेहनत से काम करने के लिये उत्साहित करना था। उसके तीन तरीके सरकार ने सामने रखे : (1) खेती योग्य भूमि की पूर्णरूप से जोताई राज्य की प्रथम आज्ञा घोषित की गई। (2) कोई भी व्यक्ति, किसी भी बहाने, यदि अपने पूरे खेत को नही जोतेगा तो उसकी भूमि सरकार जब्त कर लेगी। (3) लाल सेना के सैनिकों की भूमि समाज की ओर से जोती बोई जायगी, अगर उसके परिवार मे दूसरा कोई नहीं है। इन नियमो के लागू होने के बाद किसानो ने पूरा खेत तो बोया किन्तु उसमें इतना कम बीज डाला कि उपज मे विशेष अतर न पडा। शहरो मे भोजन की कमी के कारण आबादी का प्रवास गाँवो की ओर हुआ। पेट्रोग्राड की जनसंख्या 1916 में 24 लाख से घटकर 1920 में 6 लाख तथा मास्को की आबादी 22 लाख से घटकर 10 लाख हो गयी।[1] औद्योगिक उत्पादन तथा शासन दोनो मे इस प्रवास ने जटिल समस्याएँ उत्पन्न कीं।

युद्ध कालीन साम्यवाद कृषि-क्षेत्र मे किसानो तथा बोल्शविक सरकार के बीच आपसी बल-परीक्षा का समय था। सरकार जानती थी कि एक कृषि-प्रधान देश में किसानो का पक्ष प्राप्त किये बिना कोई सरकार सफल नहीं हो सकती। फिर भी केन्द्रीय अनुशासन तथा संचालन मे किसान को बिना बाँधे साम्यवाद की स्थापना असंभव थी। किसान सरकार के लिये अपनी संख्या तथा अमूल्य उत्पादन के सहयोग का महत्व समझता था। इस तनातनी में किसानो को काफी छूट दी गयी। 1920 में जबकि श्वेत रूसी सेनाएँ पूरी तरह हार गयी और गृहयुद्ध तथा विदेशी हस्तक्षेप का अन्त हो गया तब बोल्शविक पार्टी व किसान बराबरी से एक दूसरे के सामने आये। निरंतर बढ़ते हुए किसानों के दंगे-फसाद और लगातार गिरता हुआ उत्पादन इस बात का निर्देशक था कि किसानो की तुष्टि में देर करना अत्यन्त अनिष्टकर सिद्ध होगा। इस अनुभूति ने युद्ध-कालीन साम्यवाद का अन्त घोषित किया।

[1] Alpert, P. Twentieth Century Economic History of Europe, p. 101.

उद्योग

आधुनिक युद्ध औद्योगिक उत्पादन शक्ति से लडा जाता है। लोहा, कोयला, पेट्रोल तथा रबर का जो देश सबसे अधिक उत्पादन कर सकेगा, सिद्धान्त तथा न्याय के विपरीत, उसकी विजय निश्चित है। क्रान्ति के बाद अपने अस्तित्व के रक्षार्थ 1918–1920 के युद्ध का आधार भी उत्पादन शक्ति ही थी। विदेशियो की स्वार्थलोलुपता को सन्तुष्ट करने के लिये स्थापित रूसी औद्योगिक ढाँचा, युद्धकाल में अवलंबहीन होकर, अपने आप ही निष्प्राण हो गया। क्रान्ति के बाद औद्योगिक उत्पादन का आरम्भ हुआ। पूरे युद्धकाल मे सरकार के सभी प्रयत्न इस दिशा में प्रगति लाने की ओर केन्द्रित थे। उद्योगो में उत्पादन गिरने का उत्तरदायित्व बोल्शविक सरकार के ही कन्धो पर रक्खा जाता है। ऐसा विचार सन्तुलित नहीं प्रतीत होता। शासन-भार सँभालने के बाद लेनिन ने अनुभव किया कि युद्ध की स्थिति मे समकालीन उत्पादन सङ्गठन को छेडना कदापि श्रेयस्कर न होगा। उसी विचार से क्रान्ति के बाद तुरन्त ही उद्योगो का राष्ट्रीयकरण नही किया गया। इसमे कोई सन्देह नही कि क्रान्ति के समय और उसके बाद कारखाना प्रबन्ध के लिये बनाई गई मजदूर समितियो को एक मात्र प्रबन्धक होने की मान्यता प्राप्त हुई [Nov.14 1917]। इन बिखरी हुई समितियो में सपर्क [Coordination] स्थापित करने के लिये अर्थव्यवस्था की उच्चतम समिति [Supreme Council of National Economy] या सोबनारखोज 5 दिसम्बर 1917 मे स्थापित की गई। यदि पुराने प्रबन्धक, इञ्जीनियर तथा अन्य विशेषज्ञो को विश्वास दिलाया जा सकता कि बदले हुए जमाने के साथ उन्हे भी बदलना होगा तो चालू उत्पादन व्यवस्था मे इतनी हानि न होती जितनी कि सामने आयी। व्यक्तिवादी ढाँचे के अभ्यस्त यह कुशल तथा अनुभवी व्यक्ति हड़ताल और असहयोग के द्वारा अपना विरोध प्रकट करने लगे। बाध्य होकर कम्यूनिस्ट सरकार के कर्मचारियो को राष्ट्रीयकरण की ओर बढ़ना पडा। यह सभी मानते थे कि राष्ट्रीयकरण का समय नही आया है। बिना केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के 1918 जून के आरम्भ तक 486 सबसे बड़े कारखानो को अलग-अलग स्थानीय अधिकारियो ने अपने हाथ में ले लिया। इसके बाद परिस्थित को देखते हुए केन्द्रीय सरकार ने 28 जून 1918 मे सभी बडे उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करके स्थानीय अधिकारियो के कार्य को वैधानिक बनाया। अखिल रूसी निर्माता सङ्घ के अनुसार इस कानून का प्रभाव 1100 कारखानो [पूँजी 300 करोड रूबल] पर पडा।[1] चूँकि बड़े उद्योग विस्तृत रूप से लघु उद्योगो पर निर्भर थे और उनका असहयोग रुकावट करने लगा, तब 29 दिसम्बर 1918 मे इनको भी सरकार ने ले लिया। इस प्रकार अर्थव्यवस्था की उच्चतम समिति

[1] Leites, op. cit., p 94.

[Supreme Councıl of Nat'onal Economy] सन्तुलन, सम्पर्क, तथा सचालन का केन्द्रीय सङ्गठन बन गयी । उत्पादन की अवनति के मुख्य कारखानो मे औद्योगिक प्रजातन्त्र [Industııal Democıacy] का हाथ कई प्रकार से था। चुनाव द्वारा स्थापित मजदूर समितियो के सचालन मे काम करना पुराने सङ्गठन के अभ्यस्त प्रवधको को अपमानजनक लगता था। नया सचालन स्वय अत्यन्त अपूर्ण, अनुभवहीन तथा विद्वेष की भावना से परिपूरित था। इस प्रबन्ध मे उत्पादन शक्ति तथा लागत का कोई स्थान न था। गृह युद्ध में उत्तरी तथा केन्द्रीय रूस के बड़े उद्योगो को ईंधन व कच्चे माल से पृथक कर दिया गया। दोनेत्ज घाटी का कोयला, बाकू का पेट्रोल और तुर्किस्तान क्षेत्र की कपास मिलो तक न पहुँचती थी। लाल सेना ने बडी सख्या में मजदूरो को खींच लिया था। केन्द्रीय सचालन सुव्यवस्थित न होने के कारण परम आवश्यक कुशल कारीगर सेना मे भर्ती होने को लाचार किये गये। विद्रोही नेता एड-मिरल कोलचक व जनरल डेनिकिन की सेनाओ ने भी मजदूर तथा किसानो को उत्पादन क्षेत्र से हटाया। श्रम की स्थिति को और पेचीदा बनाने में भोजन की कमी के कारण मजदूरो का शहरो से प्रवास व क्रान्ति के समय से उनमें जाग्रत अनुशासनहीनता और उछृङ्खलता की भावना ने काफी सहयोग दिया। विदेशी मशीन, रसायन तथा विशेषज्ञ का सहारा न मिलने से उद्योगो के उत्कर्ष की शक्ति क्षीण हो गयी। रूसी राज्य योजना आयोग के अनुसार उत्पादन के निर्देशाक इस प्रकार थे।[1]

वर्ष	बड़े उद्योग	छोटे उद्योग	कुल उद्योग
1913	100·0	100·0	100·0
1916	116·1	88·2	109·4
1917	74·8	78·4	75·7
1918	33·8	73·5	43 4
1919	14·9	49·0	23·1
1920	12·8	44·1	20·4

1 Baykov, A . Sovıet Economıc System, p. 8.

इन आँकडो से कई क्रम स्पष्ट होते है। बड़े उद्योग मे अवनति की गति छोटे उद्योगों से अधिक तेज थी। अत्यधिक केन्द्रित स्थानीयकरण होने के कारण यह उद्योग राजनैतिक तनातनी का शिकार बने। युद्धकालीन साम्यवाद ने केवल उत्पादन मे ही कमी नही किया, पूरे औद्योगिक सगठन मे ऐसे विकार उत्पन्न कर दिये जिनको दूर करने में कठिन परिश्रम और कीमती समय व्यय करना पडा। बिना पूरी मरम्मत और देख-रेख के मशीनों से इतना काम लिया गया कि उनके जीवनकाल के साथ उत्पादन की श्रेष्ठता बुनियादी रूप से कम हो गयी। अनुभवी प्रबन्धकों एवं विशेषज्ञो के हट जाने से उनके रिक्त स्थान की पूर्ति मे लम्बी अवधि तक उत्पादन की हानि और धन का अपव्यय होता रहा। उखडे हुए मजदूरों को शान्तिपूर्ण ढङ्ग मे नियम के अनुसार काम पर पुनः लगाना सालों तक एक समस्या बना था।

वित्त संगठन [Finance]

क्रान्ति की उथल-पुथल के साथ गृह युद्ध की अव्यवस्था ने मिलकर अपना कुप्रभाव रूस की वित्त-व्यवस्था पर डाला। इस क्षेत्र के प्रायः सभी विभागों मे हिच-किचाहट व उलझनो से भरी हुई-अनिश्चत नीति दिखलाई पडती है। नई सरकार की साख और आर्थिक स्थिरता पर जनता का विश्वास एकदम नही जम सका। आज जारी की हुई आज्ञा का खडन दूसरे ही दिन प्रकाशित होता; राजाज्ञा, उसका खंडन और दूसरी आज्ञा राजधानी से दूर क्षेत्रों मे लगभग एक साथ पहुँचती थी; नये नियुक्त किये हुए सरकारी कर्मचारियों की अपने पद के लिए उपयुक्तता का मापदण्ड उनकी क्रान्तिकारी सेवाएँ थीं, न कि योग्यता, अधिकतर प्रातीय व स्थानीय राज्य कर्मचारी क्रान्तिकारी जोश को ही निर्णय का आधार बनाते थे और केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाये गये नियमों का अर्थ अपने इच्छानुसार निकालकर भिन्न-भिन्न स्थानो पर पृथक रूप में लागू किया जाता था। आर्थिक संगठन के प्रत्येक अग को दोहरी आज्ञाओं मे चुनाव करना पडता। दूरस्थ केन्द्रीय सरकार की जगह स्थानीय अधिकारी का दबाव इनसे अपनी बात मनवा लेता था। यह दोहरा शासन और परस्पर विरोधी आज्ञाएँ वित्तव्यवस्था मे अकथनीय उल-झन पैदा करते थे।

इस क्षेत्र की नीति मे एकरूपता का अभाव अनेकों कारणों का असर था। बोल्शविक सरकार एकदम नवीन आर्थिक और राजनैतिक सगठन में लगी थी, जिसमें हर एक पग पर प्रयोगात्मक दृष्टिकोण बनाये रखने के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन न था। यह कहा जा सकता है कि तानाशाही की पोषक बोल्शविक सरकार के नीति निर्धारण मे दुविधा का क्या काम था? यह कहना अनुचित है। लेनिन सर्वमान्य नेता अवश्य था किन्तु गृह-युद्ध के बाद तक वह एकछत्र निरंकुश तानाशाह नहीं बन सका था। अपने

विचारो को प्रभावशाली सोवियत सभा से स्वीकृत कराने के लिए उसे अपने बुद्धिबल, वाक्शक्ति तथा तेजवान व्यक्तित्व का सहारा लेना पडता था। इसलिए नीति में विरोधाभास का सारा दोष लेनिन की योग्यता पर नही किया जाना चाहिये। बोल्शविक पार्टी के अधिकतर क्रान्तिकारी नेताओ ने क्रान्ति के राजनैतिक पहलू पर तो अच्छा अध्ययन कर लिया था किन्तु क्लिष्ट आर्थिक ज्ञान, और इससे भी कठिन अनुभव द्वारा विचारों का विकास करने का न तो उनको अवसर मिला और न उन्होने क्रान्ति के पहले इसे आवश्यक समझा होगा। इसलिए जितनी दृढ़ता राजनैतिक क्षेत्र में दिखलाई पडी, उतना ही अपवादपूर्ण परीक्षण आर्थिक मामलो मे सालो तक चलता रहा।

इस क्षेत्र में सबसे बडी बुनियादी समस्या मुद्रा के प्रचलन का उन्मूलन था। साम्यवादी सिद्धान्त दृढ रूप से स्थिर कर चुका था कि मुद्रा का प्रयोग ही शोषण का एकमात्र माध्यम है, इसलिए साम्यवादी अर्थव्यवस्था मे इसका कोई स्थान नही। अब प्रश्न यह था कि मुद्रा के प्रयोग और प्रचलन को किस प्रकार हटाया जाय। विशेषकर पत्र मुद्रा के विरुद्ध काफी दबाव था। सोवियत सरकार के प्रायः सभी प्रारम्भिक योजनाओ मे मुद्रा के उन्मूलन को स्थान मिला। इनके विचार से शीघ्र ही मुद्रा का स्थान उपभोग की वस्तुओ को ले लेना चाहिये जिससे सेवाओ एव वस्तुओ का विनिमय सीधे रूप से हो सके। वास्तविकता मे यह केवल बडे शहरो के सगठित श्रमिको के साथ ही सम्भव था। यातायात की कमजोरी और बेईमान कर्मचारियो के कारण रूस की तरह विशाल एवं विस्तृत ग्रामीण जनता मे इसे प्रचलित करना अत्यन्त कठिन सिद्ध हुआ। फिर भी समय-समय पर बोल्शविक सरकार इस ओर अग्रसर होती थी। सोवनारख़ोज [Supreme Council of National Economy] ने मजदूरो के लिए मुद्रा का प्रयोग बन्द कर दिया। भिन्न-भिन्न औद्योगिक इकाइयों के बीच के हिसाब-किताब मे भी मुद्रा को हटा दिया गया। इसका यह अर्थ समझना भूल प्रतीत होता है कि मुद्रा के उन्मूलन की आंशिक सफलता साम्यवादी सिद्धान्त की सफलता है। इस सफलता का मुख्य कारण मुद्रा स्फीति और रूबल का गिरता हुआ मूल्य था। किसान अपनी उपज मुद्रा मे बेचकर नाममात्र की ही क्रयशक्ति प्राप्त करता था। सरकार से पहले, किसानो ने स्वयं अपने उत्पादन के बदले में उपभोग की निर्मित-वस्तुओ की माँग की। शहरों से अन्न की भीषण कमी ने मजदूरो को अपने श्रम का भुगतान अनाज में प्राप्त करना ही हितकर बना दिया। इस प्रकार मुद्रा का प्रयोग न होना, रूबल के विघटन, शहर और गाँव मे टूटा आपसी सम्बन्ध और बढते हुए मूल्य से जनता को बचाने का एक साधन था।

गृह युद्ध, विदेशी हस्तक्षेप और शासन-प्रबन्ध का खर्च इतनी तेजी से बढ़ा कि सरकार के सामने घोर आर्थिक संकट प्रकट हुआ। द्वितीय महायुद्ध, ज़ार का निष्काशन एवं अस्थायी सरकार के प्रयत्नों ने वित्त-संगठन को जर्जर बना दिया था। ऐसे समय में

जबकि धन का अभाव नये शासन को पंगु बनाने पर तुला था, बोल्शविक नेता साम्यवाद की स्थापना का कार्य इस क्षेत्र में लागू करने में न हिचके। दुर्भाग्यवश सरकार के कार्य और प्रभाव से क्रिया-प्रतिक्रिया का ऐसा चक्र उत्पन्न हुआ कि यह कहना कठिन है कि दशा को बिगाड़ने का दोष बोल्शविक सरकार को दिया जाय या परिस्थितियों को। क्रांति के बाद कुछ समय तक तो सरकार ने अर्थ-व्यवस्था को अकेला छोड़ दिया। जैसे-जैसे धनाभाव बढ़ता गया और युद्ध की विपरीत गति बनी रही, साधनों को उपलब्ध करने के नये मार्ग खोजना आवश्यक हो गया। धनी व्यक्तियों तथा पूँजी-पतियों को यह आभास मिला कि नई सरकार स्थायी जड़े पकड़ रही है और उनके प्रति विरोधी भावनाओं में कमी होने की सभावना दूर होती जा रही है तो उनका पहला काम बैंकों से अपनी पूँजी निकालना था। उपरोक्त हालत में इस प्रवृत्ति पर रुकावट लगाना जरूरी हो गया। 17 मार्च 1918 में अस्थायी रूप से बैंकों से जमा-पूँजी निकालने पर प्रतिबन्ध लगा।

व्यापार

उत्पादन पर राजकीय निर्देशन होने के कारण अस्थिर सामाजिक व आर्थिक स्थिति ने यह आवश्यक बना दिया कि देशी और विदेशी व्यापार पर राजकीय प्रभुत्व स्थापित हो। इस समय की रूसी व्यापारिक नीति अपनी समस्त रूपरेखा में एक संकट-कालीन नीति थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि सिद्धान्तवाद का कुछ पुट इसमें था। युद्धकालीन साम्यवाद के दूसरे विभागों के समान इस क्षेत्र में भी राजकीय एकाधिकार उत्पन्न करने में परिस्थितियों का सबसे बड़ा हाथ रहा है। युद्ध का विनाश, उत्पादन में कमी के साथ माँग में वृद्धि, आयात पर निर्धारित अर्थ-व्यवस्था तथा भयंकर मुद्रास्फीति से बाध्य होकर, व्यक्तिगत व्यापारियों से व्यापार अपने हाथ में लेने के सिवाय कोई दूसरा चारा न था। 14 नवम्बर 1917 में मजदूर निर्देशन [workers-control] का अधिनियम बना जिसमें उद्योग के साथ साथ व्यापार पर भी रुकावटें लगाई गयीं। इन रुकावटों में व्यक्तिगत व्यापारियों के लिए काम करने का काफ़ी स्थान था। परिस्थिति बिगड़ने के साथ-साथ राज्य और भी अधिक क्रियाशील बना। 21 नवम्बर 1918 को उपभोग की सभी वस्तुओं के व्यापार का राष्ट्रीयकरण हो गया तथा जनवरी 1919 को अनाज के व्यापार का एकाधिकार राज्य ने अपने हाथ में ले लिया। समय बीतने के साथ-साथ व्यापार के राष्ट्रीयकरण का क्रम तेज हुआ क्योंकि हालतें बराबर खराब होती रहीं। इसके अतिरिक्त शासन में स्थिरता आ रही थी। इससे सरकार में आत्म-विश्वास भी बढ़ने लगा।

आमतौर पर कहा जा सकता है कि सोवियत रूस में पूँजीवादी व्यापार का कोई

स्थान नही था। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कुल एक ही मध्यस्थ सभव था—राज्य। यह मध्यस्थता सोवियत राज्य के हाथ मे एक विशाल शक्ति थी। क्रान्ति की गहराई [Deepening of revolution] बढाने के लिए उपभोग की वस्तुओ के वितरण से समाज मे वर्ग-सघर्ष [class struggle] सफलतापूर्वक उत्पन्न किया जा सकता था। पूँजी का अपने लाभ के लिए प्रयोग करना राज्य की दृष्टि मे शोषण बन गया था। साख और मुद्रा दोनो प्राप्त करना जितना कठिन था उतना ही बेकार था क्योकि बैको के राष्ट्रीयकरण और मुद्रा के मूल्य मे भयकर कमी से इनका कोई लाभपूर्ण प्रयोग नही हो सकता था। इसमें कोई सदेह नही कि उत्पादन वृद्धि में प्रत्यक्ष प्रेरक [Direct Stimulant] के रूप मे व्यापार का कोई महत्व न रहा। 21 नवम्बर 1918 में एक विशेष संस्था, नारकमप्राद, स्थापित हुई जिसको उपभोग की सभी वस्तुओ को उत्पादकों से प्राप्त करके उपभोक्ताओ तक वितरित करने का एकाधिकार था। उस वितरण का मुख्य माध्यम या तो पुरानी सहकारी समितियाँ थी या राजकीय वितरण केन्द्र। मुद्रा का प्रयोग कम हो जाने से व्यापार का प्रमुख रूप वस्तुतः वस्तु-विनिमय ही था। वर्ग-सघर्ष को बढ़ाने के लिये विस्तृत राशनिग व्यवस्था मे विभिन्न वर्गों को अलग-अलग मात्रा में भोजन प्राप्त होता था। धीरे धीरे 1920 तक 30 वर्गों मे उपभोक्ता बाँट दिये गये और इन सबको अपने-अपने राष्ट्रीय महत्व के हिसाब से राशन मिलता था। इस समय करीब 350 लाख व्यक्ति केन्द्रीय वितरण व्यवस्था के अतर्गत थे। प्रथम वर्ग और चतुर्थ वर्ग के बीच भेदभाव उत्पन्न करने के प्रयत्न में पहले को 35 पौंड रोटी और दूसरे को 12 पौंड रोटी प्रति मास मिलती थी।[1]

अपने प्रचलित अर्थ में देशी व्यापार तो सोवियत सरकार ने उठा ही दिया था किन्तु उसी सफलता से विदेशी व्यापार को सरकार अपने अधिकार में न ले पाई। आरम्भ मे तो इस क्षेत्र मे सम्हल-सम्हलकर कदम उठाया गया। दिसम्बर 1917 को विदेशी व्यापार के लिए राजकीय अनुमति [लाइसेंस] की प्रथा चलाई गयी। शीघ्र ही, उस समय की परिस्थितियो ने अधूरा नियन्त्रण चल सकना असम्भव बना दिया। 22 अप्रैल 1918 को विदेशी व्यापार भी राजकीय एकाधिकार मे चला गया। विदेशी बैंकों ने किसी भी रूप मे रूसी मुद्रा एवं साख को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। इतना ही नही, धन की कमी से नई सरकार को पंगु बनाने के लिए इग्लैण्ड और फ्रास के नेतृत्व में 1918 से आर्थिक घेराबन्दी चल रही थी। ऐसी हालत मे नाममात्र का ही विदेशी व्यापार हुआ।

---

[1] Baykov op. cit, p. 26

विदेशी व्यापार[1]

	मिलियन रूबल : 1913 मुद्रा मूल्य में		
	निर्यात	आयात	शेष
1913	1520·1	1374·0	+ 146·1
1914	137·0	802·0	— 665·0
1918	7·5	61 1	— 53·6
1919	0 1	3·0	— 2·9
1920	1·4	28 7	— 27·3

1920 तक कुछ माल यूरप के छोटे-छोटे देशों से असंगठित रूप से आ जाता था। इन देशों में स्वीडन, डेनमार्क और स्विट्जरलैण्ड मुख्य थे। वास्तविकता पर बने अवसरवादी जर्मनी ने रूस की विशाल बाजार और नगद भुगतान का लाभ उठाना तुरन्त आरम्भ कर दिया। चूँकि रूस अपने आयात का भुगतान सोना या हीरे-जवाहिरात में करता था, इसका आकर्षण बहुत था। जर्मनी का इस प्रकार बढ़ता हुआ प्रभाव देख कर मित्र-राष्ट्रों को लालच हुई। इङ्गलैण्ड, फ्रास और संयुक्त राज्य अमरीका के विचारों मे परिवर्तन होना अनिवार्य था। जनवरी 1920 से आरम्भ होकर 1921 के मध्य तक आर्थिक घेराबन्दी टूट गयी। अविकसित देश ने अपनी उन्नति में विदेशी सहयोग प्राप्त करने के लिए व्यापारिक और औद्योगिक सुविधाओ से विदेशी धन तथा अनुभव को आकर्षित करना आरम्भ किया। व्यापार में दी गयी यह छूट 1920-21 के राजनैतिक विवाद का केन्द्र-बिन्दु बना।[2]

युद्धकालीन साम्यवाद का प्रभाव

युद्धकालीन साम्यवाद ने सोवियत सरकार के सिद्धान्त, विचार एवं कार्यप्रणाली

[1] Ibid p. 29.

[2] See the famous speech of Lenin at the Tenth Congress of the Communist Party, March 1921.

को पुष्ट और परिष्कृत करने मे बहुत सहायता की। कोरे सिद्धान्त एव निरर्थक भावावेश को छोडकर वास्तविकता की ओर अग्रसित करने का लगभग पूरा श्रेय इस समय की घटनाओ को है। विश्वयुद्ध तथा गृहयुद्ध के विनाश में एक विशेष अच्छाई छिपी थी। राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक ढॉचे का जो विध्वस्त खंडहर सोवियत सरकार को विरासत में मिला, उसके पुनर्निर्माण की आशा करना भी बेकार था। इसलिए पुराने ढॉचे को पूरी तरह उखाड़ कर फिर से नई नींव पर निर्माण करना पडा। इससे पिछड़े विचार, रूढिवादिता और संकीर्णता से बोझिल हुए बिना, नवीन उन्नति की ओर गतिशील हुआ जा सका।

साम्यवाद का यह प्रयोगात्मक काल भूल और सुधार की शृङ्खला थी। बिना किसी दृढ़ सिद्धातिक आधार के, अस्पष्ट विचारो और अनजाने तरीको के धुँधलेपन में आगे बढने का प्रयत्न हो रहा था। इस मार्ग मे और भी इतनी रुकावटे थीं जिन्होंने परिस्थिति को अत्यन्त जटिल कर दिया। अशिक्षित जनता उच्च साम्यवादी सिद्धान्तो के अनुसार अपना मार्ग निर्धारित करने मे असमर्थ थी। छोटा-सा किन्तु प्रभावशाली शिक्षित एव बौद्धिक वर्ग स्वार्थ लोलुपता मे डूबा था। निकम्मे कर्मचारियो से बनी शासन प्रणाली प्रभावहीन थी। इन सबके ऊपर पूँजीवादी विदेशी सरकारे मिलकर आर्थिक और राजनैतिक हस्तक्षेप से नई सरकार को मिटा देने मे प्राणपण लगी थी। गृह-युद्ध और संकटकालीन स्थिति ने रूस के राजनैतिक ढॉचे का निर्माण किया -- [illegible]त्मक ताना-शाही और समस्त शासन शक्ति का प्रबल केन्द्रीयकरण। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए पिछडी हुई जनता चोटी के चन्द नेताओ पर अपार श्रद्धा और देवतुल्य भरोसा करने लगी। पुराने ईश्वर में विश्वास न करने वाले साम्यवादियो ने अपने नये ईश्वर का निर्माण प्रमुख नेता व राज्य के अधिष्ठाता लेनिन के रूप में किया। विदेशी आक्रमण तथा घेराबन्दी से त्रस्त देश, जब हर तरफ से निराश हो गया, तब असाधारण एकता और आत्मनिर्भरता उत्पन्न हुई। संसार मे पहली बार शासन मे बल प्रयोग के साथ "मनोवैज्ञानिक विचार परिवर्तन" [psychological indoctrination] का सहारा लिया गया। अपार प्रभावशाली वैज्ञानिक प्रचार इतना बढा कि रूस में बहुत दिनो तक के लिए प्रचार ही शिक्षा बन गया। विदेशी हस्तक्षेप और आर्थिक घेराबन्दी ने नई सरकार के सदस्यो को अटल विश्वास दिला दिया कि रूस के बाहर के सभी देश सोवियत शासन के शत्रु है : उनसे रक्षा करने के लिए एक लौह-आवरण की आवश्यकता होगी। विदेशियों के प्रति स्टालिन की कटुता और पृथकवाद उस समय के अनुभवो की युक्तिसंगत प्रतिक्रिया थी। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति की तरह रूसी क्रान्ति के बाद युद्धकालीन साम्यवाद-काल मे मुट्ठी-भर चोटी के बौद्धिक ठेकेदारो के स्थान पर निम्नतर सामाजिक स्तर की विराट इच्छाशक्ति तथा प्रगति-प्रेरणा [initiative] बन्धन से छूट गई। सेना

और शासन मे निडर, साहसी, विचारपूर्ण व्यक्ति ऊपर उठे। रूस की उन्नति इनकी क्रियाशीलता और लगन का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रूसी इतिहास मे पहली बार [और शायद अंतिम बार भी] किसानो ने प्राथमिकता प्राप्त की। उनको अधिकार तथा विशेष छूट मिली किन्तु यह अधिक दिन न चली। जल्दी ही शहरो के मजदूरो ने किसानो का महत्व फिर से घटा दिया। सिद्धान्त के क्षेत्र मे, यह मान लिया गया कि पिछडे हुए छोटे पैमाने के कृषिप्रधान देश मे केन्द्रीय मजदूर सरकार की आज्ञा द्वारा साम्यवाद की स्थापना नही हो सकती। लेनिन ने स्वयं स्वीकार किया कि साम्यवाद के लिये देश को तैयार करना होगा, जिसका मार्ग राजकीय पूँजीवाद [State Capitalism] तथा समाजवाद [Socialism] है।

कुछ भी हो क्रान्ति तथा गृहयुद्ध ने मिल कर देश को बर्बाद कर दिया। निकोलस द्वितीय की पत्नी सम्राज्ञी एलेक्जेण्ड्रोवना तथा धूर्त रासपुटीन से आरम्भ होकर यह विनाश अस्थायी सरकार के समय मे बढ़ा और बोल्शेविक सरकार ने अपने प्रयोगो द्वारा इसे चरम सीमा पर पहुँचा दिया। भयकर मुद्रास्फीति से विनिमय का कार्य असम्भव हो गया। लगभग 5/6 उद्योग नष्ट हो चुके थे : यातायात नाम मात्र का बचा था : देशी व्यापार आरंभ से ही बन्द था। गृह-युद्ध, आर्थिक घेराबन्दी, समस्त व्यक्तिगत सपत्ति का बलात् हस्तातरण व विदेशी ऋण का खडन, व्यापार का गला घोट चुका था। चन्द शब्दो मे देश की उत्पादन शक्ति टूट गई और समाज अपनी पूर्व-संचित पूँजी पर निर्वाह करने को लाचार हुआ।

एक बहुत बडा प्रभाव इस काल के प्रयोगो का यह हुआ कि हर एक क्षेत्र मे आत्म-आलोचना [Self-criticism] और पुनर्विवेचना [re-assessment] की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। औद्योगिक प्रबन्ध एव सगठन मे मजदूर समिति के जगह पर एक व्यक्ति प्रबन्ध [one man management] की जरूरत सामने आई। कुशलता, अनुभव तथा प्रशिक्षित [trained] व्यक्तियो के महत्व को समझा गया। उत्पादन शक्ति की वृद्धि के लिए उत्पादन प्रेरको [Production incentives] की अनिवार्यता दिखलाई दी। सुसंयत आर्थिक-व्यवस्था के लिये कठोर मजदूर अनुशासन की आवश्यकता का फिर से अनुभव हुआ। मजदूरो को भी अपना उचित स्थान मालूम पड़ा। विस्तृत दुर्भिक्ष, उपयोग की सामग्री की कमी, खडे हुए बेकार कारखाने और बिना जोती-बोई जमीन ने युद्ध-कालीन साम्यवाद-काल के अत तक, इन सब बातो की आवश्यकता पूरी तरह सामने रखा। परिवर्तन का तत्कालिक कारण बढ़ते हुए किसान असहयोग, मजदूरो की हड़ताले और मार्च 1921 का क्रौन्स्ताद [Kronstadt] विप्लव था। सफलतापूर्वक इनका दमन तो कर दिया गया किन्तु लेनिन की तेज आँखों

ने इनके कारणों को तुरन्त देख लिया। एकदम ठीक समय पर मिला यह इशारा भविष्य की नीति का आधार बना। कुख्यात रूसी शुद्धी-प्रणाली [Purge] का जन्म उसी समय में हुआ जिसका सहारा रूस के नेता बराबर लेते रहे। एक ओर तो जनता के असंतोष का कारण दूर करने की कोशिश की गई और दूसरी ओर देश के अन्दर उन तत्वो [elements] को भी नष्ट कर दिया गया जो जनता के असंतोष का नेतृत्व करके उनको अभिव्यक्ति प्रदान करते। 1921 में नीचे से ऊपर तक ऐसे व्यक्तियों को, स्थायी अथवा अस्थायी रूप मे, हटाकर लेनिन ने शासन प्रणाली को शुद्ध किया। इस परिष्कृत वातावरण के कारण ही आने वाली नई आर्थिक नीति स्वीकृत हो सकी।

अध्याय ८

नवीन आर्थिक नीति

[New Economic Policy]

नवीन आर्थिक नीति [New Economic Policy]

गृह युद्ध और विदेशी हस्तक्षेप के समाप्त होते ही सोवियत सरकार ने देश की जटिल आन्तरिक समस्याओं की ओर ध्यान दिया। साम्यवादी दल की विरोधी आवाजों ने काफी प्रबल रूप धारण कर लिया था। यह समस्त देश में असतोष की अभिव्यक्ति थी। तत्कालीन एव समुचित उपकरणों का अभाव शिशु सोवियत राज्य का अस्तित्व सकट मे डाल सकता था। क्रान्ति के बाद उत्साह और आदर्श का रङ्गीन पर्दा अपना बहुत कुछ आकर्षण खो चुका था और वास्तविकता इस पर्दे को फाड़कर नागरिकों और राजनीतिज्ञों तक पहुँच रही थी। दृष्टिकोण के इस परिवर्तन ने भावना सिद्धान्त और सुख-स्वप्न के स्थान पर कठिन परिश्रम की ओर देश को मोडा। आर्थिक आवश्यकताओं ने अपने महत्व को प्रभावशाली तरीके से सामने रखकर प्राथमिकता प्राप्त किया। उच्च शासक वर्ग मे प्रथम बार यह अनुभूति हुई कि शब्दो का इन्द्रजाल रचनेवाले क्रान्तिकारियों से आर्थिक एवं औद्योगिक विशेषज्ञ अधिक आवश्यक हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूस के साम्यवादी क्रान्तिकारी नेता औद्योगिक लाभ और धर्म का प्रभाव मिटाने मे कट्टर आदर्शवादी थे। साथ-ही-साथ उनमे पक्की यथार्थवादिता का इतना गहरा पुट था कि सिद्धान्तो में कितनी सफलता प्राप्त करना सम्भव है, यह वे अच्छी तरह समझते थे। इसी कारण आशाओं के विपरीत सफल क्रान्ति को स्थायी रूप दिया जा सका। हर नई गम्भीर परिस्थिति के अनुसार तुरन्त अपने को बदल लेने से परिस्थिति और नीति का आपसी तारतम्य व सामंजस्य कभी बिगड़ने नही पाया। मध्य 1921 में उत्पन्न दूसरी सकटकालीन स्थिति का सामना करने के लिये जो कार्यक्रम निश्चित किया गया उसे नवीन आर्थिक नीति अथवा नये [N. E P. or New Economic Policy] कहते है।

मार्च 1921 में साम्यवादी दल के दसवे अधिवेशन के सामने इस नीति की आवश्यकता बतलाते हुए लेनिन ने तीन मुख्य बातो पर जोर दिया। प्रथम, किसी भी मूल्य पर उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करना। क्रान्ति के बाद कृषि और उद्योग के उत्पादन में जो भीषण अवनति हुई थी उससे समस्त आर्थिक और राजनैतिक ढाँचे के टूट जाने

का डर पैदा हो गया था। बिना उपभोग की सामग्री मिले अन्न का उत्पादन करना किसानो को अर्थहीन लगता था। दूसरी ओर अनाज और कच्चे माल की कमी ने औद्योगिक उत्पादन की दशा को शोचनीय बना रखा था। सेना, कारखाना और खेत में लगे हुए व्यक्ति राज्य का आधार थे और यह आधार उत्पादन पर बना था। देश की उन्नति के लिये आवश्यक विदेशी मशीन और कारीगर उसी समय मिल सकते थे जबकि व्यापार द्वारा उनके भुगतान का साधन इकट्ठा किया जाय। द्वितीय, राजनैतिक संकट से बचाव—आरम्भ से ही सोवियत सरकार कारखाना मजदूरो को जाग्रत नागरिक [enlightened citizens] और किसानो को सुसुप्त नागरिक समझती थी। युद्धकाल में जब अत्यन्त कठोरता से मजदूर और सैनिको को खिलाने के लिये किसानो की फसल जब्त करना पड़ा तो यह भावना और भी बढ़ी। 1921 तक मजदूर और किसानो, गावो और शहरो के बीच की खाई इतनी चौड़ी हो गई कि बिना कुछ उपाय किये हँसिया और हथौडा का आपसी सम्बन्ध पूर्ण रूप से विच्छेद होने के लक्षण दिखाई देने लगे। किसान और मजदूर का आपसी अटल सम्बन्ध [Smytchka] लेनिन साम्यवादी रूस की नींव मानता था। सच भी है, अगर यह न होता और सोवियत सरकार श्रमिक राज्य न स्थापित करके मजदूर अथवा किसान राज्य का आदर्श सामने रखती तो आज-दिन इस इतिहास के लिखने की आवश्यकता न होती। तृतीय, राष्ट्रीय स्नायु मडल के प्रमुख केन्द्रो को अपने हाथ मे रखकर, उनके द्वारा नई पैदा हुई पूँजीवादी शक्तियो का राज्य के अधिकतम कल्याण के लिये प्रयोग करना यह स्नायु-केन्द्र [commanding heights] थे—मुख्य बड़े उद्योग, साख, मुद्रा, यातायात और कर-प्रणाली। पूँजीवाद के घृणित दानव की पुनरावृत्ति करने का कारण समझाने के लिये एक तर्कात्मक विवाद उत्पन्न हुआ। किसान और मजदूरो का आपसी सम्बन्ध घनिष्ठ बनाने के लिये व्यापार की आवश्यकता थी जिससे उनका उत्पादन एक-दूसरे के उपभोग में काम आ सके। व्यापार की वृद्धि निर्भर करती थी अधिक उत्पादन पर। कृषि और उद्योग मे पूरी तरह अधिक उत्पादन के लिये कुशलता और मशीनो का अभाव दूर करना पहला कदम था। धन, श्रम, कच्चा माल और माँग सब कुछ होते हुए भी कुशलता न होने से इनका उचित प्रयोग असम्भव था। यह कुशलता देशी, किन्तु अधिकतर विदेशी, साधनो से ही मिल सकती थी। इनको पुनः जाग्रत करने का एकमात्र उपाय काम का आकर्षक वातावरण उपस्थित करना था। वह वातावरण बिना पूँजीवाद के आह्वान के दुर्लभ था। पुनः निमंत्रित पूँजीवादी शक्तियाँ निरंकुश न हो जायँ इसलिये स्थान-स्थान पर उनको संयोजित करने का प्रबन्ध किया गया।

नवीन आर्थिक नीति के बारे में एक उल्लेखनीय बात है कि यह एक पूर्वनिश्चित, विधिपूर्वक निर्मित, आर्थिक नीति नहीं थी। देश के बदलते हुए चित्र के साथ इसका

रूप और गुण बराबर बदलता रहा। इतना ही नही किसी समय भी यह नीति तथा इसके सिद्धान्त न तो स्थिर रहे और न उनको स्थायी जडे पकडने का अवसर दिया गया।

1921 मे राज्य-शक्ति पर अच्छी तरह अधिपत्य स्थापित करने के बाद नये राज्य की नीति मे परिवर्तन आवश्यक हो गया। जैसे ही विदेशी हस्तक्षेप का दवाव, देश की अराजकता व असगठन, बोल्शेविक विरोधियो का दमन तथा विदेशी आक्रमण से छुटकारा हुआ, लेनिन ने साम्यवाद का भी परित्याग कर दिया। यही कारण है कि इस काल को आर्थिक पराजय कहते है क्योकि इस समय शासन के सिद्धान्त रूप मे तो साम्य-वाद बना रहा लेकिन व्यावहारिकता मे उससे बचने का उपाय किया गया। 1921 मार्च के बाद से लगभग 1924 के अत तक रूस मे साम्यवादी पाये जाते थे, साम्यवाद नही। सच पूछा जाय तो विशुद्ध साम्यवाद का इसी समय से जो अत हुआ वह फिर कभी पुनर्जाग्रत न हो सका। राजनैतिक शक्ति, अखबार, विदेशी व्यापार, बैंक तथा यातायात राजकीय एकाधिकार मे बने रहे। लेकिन और सभी क्षेत्रो मे काफी गभीर परिवर्तन हुए जिसको 'साम्यवाद की पराजय' के नाम से अनेको विद्वानो ने पुकारा है। राष्ट्रीयकरण के बाद जनता द्वारा औद्योगिक प्रबन्ध का स्थान राजकीय ट्रस्टो ने ले लिया। भारी टैक्स देने के बाद अनाज बाजार मे बेचने की स्वतत्रता किसानो को मिली, ट्रस्ट एव व्यक्तियो को कारखाने वापस कर दिये गये, व्यक्तिगत व्यापार को छूट मिली किन्तु इसका रूप अस्थायी बना रहा; सरकार उत्सुकता से पूँजीवादी देशो की ओर बढ़ी कि उनसे स्थायी राज्य-शक्ति की स्थापना मे सहायता ली जाय। विरोधाभास [Paradox] के इस युग मे पूँजीवादी संसार से मित्रता का प्रयत्न और युद्ध की धमकियाँ, विश्व-साम्यवाद की नीति और देश मे पूँजीवादियो को छूट एक साथ मिलती थी। इस नीतिपरिवर्तन ने अनेकों पुराने साम्यवादियो मे घोर असतोष पैदा किया। किन्तु पूँजीवादी देशों मे लाभ की लालच से प्रेरित होकर इसका स्वागत हुआ। लोग जानते थे कि यह छूट स्थायी नही थी फिर भी 1921 मे इंगलैंड, 1922 मे जर्मनी व नार्वे तथा 1924 मे अधिकतर योरोपीय राष्ट्रो ने रूस से व्यापारिक सधियाँ की। प्रथम साम्यवादी राष्ट्र की स्थापना के तीन वर्षो बाद ही मूल-विरोधियो से इस प्रकार सहयोग पाना, रूस की विजय नहीं, हार मानी जाती है। कारण यह है कि इस सहयोग का बहुत बडा मूल्य चुकाना पड़ा अर्थात् साम्यवाद के सिद्धान्तो मे परिवर्तन किया गया। अनेक विचारक इसको 'सैद्धान्तिक हार' [Ideological failure] का नाम देते है।

लेनिन के विचार से सिद्धान्त व्यवहारिक लक्ष्य प्राप्ति के निर्देशक होते है। वे कभी भी निर्णायक नही हो सकते। अगर परिस्थितियाँ विपरीत थी और उनसे निकलने का एक मात्र उपाय सिद्धान्तो मे अस्थायी सशोधन था, तो इसे स्वीकार करना न तो साम्यवादी दल का पतन था और न साम्यवाद की हार। यह केवल देश की विध्वस्त

अर्थ-व्यवस्था के पुनरुद्धार का तत्कालिक निदान था । इस नीति ने सिद्धान्तो के मूलाधार मे परिवर्तन नही किया । केवल उसका विस्तार [detail] बदल दिया । राज्य की श्रेष्टता, प्राथमिकता और अधिकार मे बिना परिवर्तन किये, अपनी विवशता से हारकर, पूँजीवादियो से सुलह कर लेना उनके बुद्धि का संकेत था । इस सुलह को आर्थिक पराजय या सैद्धान्तिक हार न कह कर 'दूसरा क्षणिक विश्रामकाल' [second breathing space] कहना अधिक उचित होगा क्योकि इस समय अपकर्ष का क्रम [trend of degeneration] रोक कर इस नीति ने सरकार को सम्हलने का अवसर दिया । एक बार पैर जम जाने पर इस सहारे की कोई आवश्यकता न रही । ठीक इसी तरह मार्च 1918 मे लेनिन ने ब्रेस्ट-लीटोवस्क की संधि से शान्ति खरीद कर साम्यवाद की जडे जमाने का अवकाश पाया था। नीति की सफलता तथा भविष्य में समाजवादी सिद्धान्तो की स्थापना की प्रगति यह सिद्ध करती है कि नवीन आर्थिक नीति जटिल समस्याओ से परिपूर्ण, विनाशकारी गम्भीर परिस्थितियो से निकलने का केवल एक साधन था जिसमें स्थायित्व [permanence] लाने का आरभ से ही कोई प्रयास नही किया गया। सकटकालीन स्थिति से बचने का यह उपाय पूँजीवादी अर्थशास्त्रियो ने साम्यवाद के नाश का आरभ समझा जो शीघ्र ही उनकी सबसे बडी भूल सिद्ध हुई ।

नवीन आर्थिक नीति के अध्ययन के पहले समकालीन राजनैतिक रग-मच पर दृष्टिपात कर लेना असगत न होगा। लेनिन के जीवन काल में उसके नेतृत्व और विचारो को सार्वमान्यता ही नही सर्वभौमिकता प्राप्त थी । उसके प्रमुख साथियो में ट्रट्स्की बुखारीन, केमेनीव, जिनोवीव और स्तालिन थे जिनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपने ढग के अनूठे, साम्यवाद के सिद्ध योद्धा थे । इनमें से स्टालिन सबसे कम उम्र का कार्यकर्त्ता था । आरम्भ में इसका मुख्य कार्य पार्टी के लिये सरकारी खजानो पर छापा मार कर धन प्राप्त करना था । इस कार्य में अद्भुत साहस और विलक्षण सगठन शक्ति का परिचय मिला । यह जर्जिया-वासी नवयुवक शान्त, तीव्र बुद्धि, कोरे सिद्धान्तो से दूर रहने वाला, देश निर्माण का कर्मठ सेनानी और राजनैतिक दावपेच का अद्वितीय ज्ञाता था । 1922 मे यह साम्यवादी दल का सचिव [Secretary] चुना गया । लेनिन की मृत्यु के समय [1924] केन्द्रीय महासमिति अथवा पोलित-ब्यूरो मे सात सदस्य थे जिनमें से केवल स्टालिन ही पक्का रूसी था अर्थात् इसके खून और शिक्षा मे विदेशी मिश्रण का सम्पर्क बिल्कुल नही था । लेनिन के मरने पर रेकोव प्रधानमंत्री बना लेकिन शासन की बागडोर स्टालिन केमेनीव और जीनोवीव के हाथ रही । अपने पुराने साथी ट्राट्स्की से लेनिन का मतभेद उस समय तक काफी बडा रूप ले चुका था । लेनिन के जाते ही शक्ति प्राप्त करने की अपनी योजना को स्तालिन ने कार्यान्वित करना शुरू कर दिया । सबसे प्रबल प्रतिद्वद्वी ट्राट्स्की से स्टालिन का मतभेद अत्यन्त बुनियादी था ।

ट्राट्स्की के अनुसार पूर्ण औद्योगीकरण और जगत-साम्यवाद रूस का मुख्य ध्येय होना चाहिये था : स्टालिन केवल रूस में साम्यवाद और सबसे पहले किसानो के साम्यवादी सगठन का पोषक था। एक-एक करके 1929 तक यह सभी व्यक्ति स्टालिन के विकराल चक्रव्यूह में फँस कर नक्शे से हट गये। मोलोतोव के प्रधान मन्त्रित्व मे काम्सोमाल [साम्यवादी युवक संघ] के शक्तिशाली सहयोग से इस समय तक स्टालिन रूस का भाग्यविधाता बन गया। "सामुदायिक खेती", "औद्योगीकरण से शक्ति संचय" "विदेशी आक्रमण से आत्म-रक्षा" का नारा सभी वर्ग के व्यक्तियो को प्रिय लगा [अथवा लगना पडा]। भय की उत्तेजक मनोवैज्ञानिक प्रेरणाशक्ति से प्रभावित समाज स्टालिन के हाथो मे गीली मिट्टी के समान आ गया जिससे इस महान नृशंस विचारक ने नये रूसी राष्ट्र का मनचाहा निर्माण किया।

देशी व्यापार

युद्धकालीन साम्यवाद के अनुभव से सोवियत नेताओं को यह ज्ञान हुआ कि देश की कठिन उत्पादन समस्या को जटिल बनाने में प्रमुख कारण व्यापार प्रणाली का भग होना है। व्यापार के राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न अभाव और असतोष को दूर करने के लिये देशी व्यापार मे व्यक्तिगत व्यापारियों को, अपनी पूँजी लगाकर, लाभ के लिये व्यापार करने की छूट दी गयी। इस प्रकार पूँजीवादी गुणो का सोवियत रूस में समावेश हुआ। चारो तरफ इस छूट से साम्यवादी पराजय की धारणा स्थापित हुई। पूँजीवादियो का यह निराधार दिवास्वप्न चन्द वर्षों मे ही भंग हो गया। देश बँधी हुई गति से निरंतर समाजवादी पथ पर बढ़ता रहा। व्यापार सम्बन्धी पूँजीवादी कार्यक्रम के पीछे कितना कठोर और संयमित नियन्त्रण था, यह आरम्भ मे पाश्चात्य आशावादियो को पता न चला।

इस काल मे व्यापार को राज्य एवं निजी क्षेत्र मे बाँटा जा सकता है। राजकीय व्यापार सगठन का दो मुख्य रूप था। तोर्गी [Torgi] उसके व्यापारिक संगठन का नाम था जिसे क्षेत्रीय आर्थिक समितियाँ [Regional Councils of National Economy] अपने व्यापार विभाग की तरह चलाती थी। इनका कार्यक्षेत्र स्थानीय उत्पादन तक सीमित था किन्तु आंशिक रूप से राष्ट्रीय उद्योगो के उत्पादन को भी यह वितरित करते थे। दूसरा रूप 1922 में सामने आया जिसे सिण्डीकेट [Syndicate] कहते है। प्रमुख औद्योगिक सघो [Industrial Trusts] ने आपसी प्रतिस्पर्धा से बचने के लिये इनका निर्माण किया था। शीघ्र ही यह राजकीय उद्योगो का थोक व्यापार केन्द्र बन गया। माल को फुटकर बाजार तक पहुँचाने के लिये इनके माध्यम थे— व्यक्तिगत व्यापारी, सहकारी समितियाँ और तोर्गी संगठन। इस प्रकार राजकीय व्यापार

क्षेत्र थोक व्यापार से सम्बन्धित था। फुटकर विक्रय व्यक्तिगत हाथों में बना रहा; 1922-23 में कुल व्यापारिक सचालन का अनुपात था : व्यक्तिगत व्यापार 75 3%, राज्य 14·4% और सहकारी समितियाँ 10 3%

हो सकता है कि नवीन आर्थिक नीति के काल मे व्यक्तिगत व्यापार का अस्तित्व और दृढ़ता के साथ बना रहता, यदि 1922-23 मे एक अप्रत्याशित आर्थिक सकट न उत्पन्न हुआ होता। यह आर्थिक-सकट औद्योगिक और कृषि उत्पादन के मूल्यो मे भयंकर असतुलन से पैदा हुआ। युद्धकाल से ही वस्तुओ का मूल्य लगातार बढ़ रहा था। सकट उस समय सामने आया जब मूल्य की वृद्धि ने पक्षपात दिखलाना आरम्भ किया। लगभग 1922 तक औद्योगिक मूल्य में पतन के साथ कृषि क्षेत्र में दाम बहुत बढ़ा। किसानो के पक्ष में मूल्य की इस गति का पूर्ण स्वागत ग्रामीण क्षेत्रो ने किया। उसके बाद ही कृषि उत्पादन का मूल्य गिरने लगा। औद्योगिक सामान इतना महँगा हो गया कि किसानो के लिये उनका उपभोग असम्भव हो गया।

व्यापार का सतुलन ग्रामीण जनता के विपरीत होता रहा। औद्योगिक और कृषि उत्पादन के मूल्यो का यह परिवर्तन यदि ग्राफ पर अंकित किया जाय तो एक खुली हुई कैंची का रेखा-चित्र बन जायगा। इसी से इस संकट का नामकरण कैंची-सकट [Scissors-Crisis] हुआ। अक्टूबर 1923 तक इस सकट की चरम सीमा पहुँच चुकी थी। थोक मूल्य के निर्देशाक के अनुसार, 1913 को 1,000 मान लेने पर, इस समय कृषि उत्पादन 888 और औद्योगिक उत्पादन 2,757 था। वास्तविकता में परिस्थिति इससे भी खराब रही होगी क्योंकि किसान के लिये औद्योगिक थोक मूल्य निरर्थक होता है। उसे तो गाँवो में प्राप्त फुटकर मूल्य चुकाना पड़ता है। स्वभावतया यह मडी के थोक भाव से काफी अधिक होता है। इसके विपरीत केन्द्रीय, एकाधिकार प्राप्त, क्रय-सगठन किसानो से बहुत बड़ी मात्रा में थोक के भाव की खरीददारी करते थे।

इस सकट के अनेको कारण अलग-अलग व्यक्तियो ने दिया है। कैलविन हूवर[1] तथा मौरिस डौब[2] ने विद्वतापूर्ण विवेचन किया है। समकालीन आर्थिक साहित्य में इस पर घोर विवाद हुआ। राजनैतिक प्रभाव और आर्थिक धाराओ से पृथक यदि इनके कारणों को देखा जाय तो उनको सरल रूप मे रखा जा सकता है। औद्योगिक मूल्य-वृद्धि अनेको कारणों का असर थी। स्थापित उत्पादन शक्ति का पूरा प्रयोग नही हो रहा था, जिससे उत्पादन की प्रति इकाई पर खर्चा अधिक पडता था। अनुभवहीन तथा पेचीदी

[1] Calvin B Hoover, Economic Life of Soviet Russia p 47, 77.

[2] Maurice Dobb Soviet Economic Development since 1917. Chapter Seven.

प्रबंध-व्यवस्था लागत को बढाने मे पूरा सहयोग देती थी। एक ओर तो लागत मे वृद्धि हुई और दूसरी ओर एकाधिकारप्राप्त बडे-बडे सरकारी उद्योगो ने ऊँचा मूल्य निर्धारण करने की नीति अपनाई। 'लाभ के लिये उत्पादन' का सिद्धान्त स्वीकृत हो चुका था। राजकीय उत्पादको मे ज्यादा लाभ कमाने की होड-सी लग गई। इस लाभ से वे सभी अपनी कार्यशील पूँजी [Working capital] की कमी दूर करके आत्मनिर्भर बनना चाहते थे। युद्धकालीन हानि की पूर्ति करने का प्रयत्न भी हुआ। इनके अतिरिक्त फुटकर व्यापारियो ने अपनी ओर से माल को रोककर अधिक-से-अधिक धन कमाने की पूरी कोशिश की।

इसी प्रकार कृषि-क्षेत्र मे मूल्य का गिरना कुछ बहुत सीधे-सादे कारणो का प्रभाव था। सोवियत संगठन के साथ कृषि के तरीके मे कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। परिश्रम और पशु इस समय तक कृषि के आधार थे। गृह युद्ध के बुरे प्रभावो से पुन-र्निर्माण करने मे कृषि को उद्योग से अधिक सहूलियत थी। जितनी जल्दी कृषि उत्पादन बढ़ निकला वह उद्योग के लिये असभव था। इसके साथ इस समय तक यूरप के अन्न भडार का स्थान रूस ने पुनः प्राप्त नही किया था। देशी बाजारो मे अनाज की पूर्ति की मात्रा अधिक थी। अधिक पूर्ति के साथ मूल्य बढाने मे किसानो पर कुछ और रुका-वटे भी रही। किसानो से सरकार कर भुगतान अनाज मे लेती थी। इसके बेचने का जो मूल्य राज्य निर्धारित करता, उससे अधिक मूल्य किसान खुले बाजार मे अपनी बची हुई फसल का नही माँग सकता था। व्यक्तिगत किसान की मोलभाव करने की ताकत उस समय नष्टप्राय हो जाती थी, जब विशाल सगठित राजकीय सस्थाएँ उनकी एकमात्र खरीददार थी। आवश्यकताओ का दबाव इतना अधिक था कि किसी भी मूल्य पर जल्दी से-जल्दी फसल को बेचना पडता था।

इस सकट के विपाक्त प्रभाव ने औद्योगिक उत्पादन को निर्जीव बना दिया। सदा से गरीबी व अभाव के अभ्यस्त किसानो के औद्योगिक माल की माँग मे अत्यंत लोच था। इस मूल्यवृद्धि से हार कर फौरन ही किसान ने अपनी खपत घटा दी और गृह उद्योग से आवश्यकताओ की पूर्ति आरम्भ कर दी। इसका दोहरा प्रभाव पडा। औद्योगिक माँग मे कमी आ गयी। साथ-ही-साथ किसानो ने अनाज और कच्चा माल बेचना भी बंद कर दिया क्योकि इतने गिरे हुए मूल्य पर उत्पादन बेचना बेकार था, जबकि उपभोग की निर्मित वस्तुएँ उनके क्षमता से बाहर ही बनी रहती थी। इस परिस्थिति मे सम्पूर्ण सोवियत ढाँचे का विनाश निश्चित था। इस कैंची को बद करना आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से अनिवार्य हो गया। अत्यावश्यक उत्पादन की वृद्धि पर लोक-कल्याण आधारित था और किसान मजदूरो के पारस्परिक घनिष्ठ सबन्ध पर समाजवाद की नीव थी। यह संकट इन दोनो को मिटा देने के लिये काफी था। संकट का उत्तर-

दायित्व व्यक्तिगत व्यापारियो की पूँजीवादी प्रवृत्ति पर डाल कर सोवियत नेताओ ने अपनी जान बचाई। देशी व्यापार में व्यक्तिगत व्यापारी के भाग्य का निर्णय साम्यवादी दल के तेरहवे अधिवेशन [1924] में किया गया।

यह निश्चय हुआ कि व्यक्तिगत व्यापार को सीमित करके राज्य और सहकारी व्यापारिक माध्यम अपनाया जाय। औद्योगिक मूल्य मे कमी और कृषि-मूल्य को बढ़ाने मे राज्य प्रयत्नशील हो। कृषि उत्पादन के व्यापार का केन्द्रीयकरण अनिवार्य है। इसी समय से नई आर्थिक नीति अपने आकर्षक बनावट का परित्याग करके वास्तविक रूप में आ गयी। 1920-23 के सकट के बाद व्यक्तिगत व्यापारी के ऊपर रुकावटे बढने लगी। यह व्यापारी सदा से ही जानते थे कि उनका अस्तित्व स्थायी नही है। 1924 से उनको अपने आप क्षेत्र से हट जाने के लिये बाध्य करने का कोई उपाय राज्य ने उठा नही रखा। उनके माल का दाम अपने आप ही ज्यादा था क्योंकि कम-से-कम समय में वे अधिक-से-अधिक लाभ उठाने पर तुले हुए थे। फिर राज्य ने उनके विक्रय की लागत हर तरफ से बढाया। कर की ऊँची दर, अधिक किराया और कर्मचारियो को दूसरो से अधिक वेतन देने के नियम से रुकावटे पैदा की गई।[1] बहुत जल्दी नयी आर्थिक नीति द्वारा पोषित व्यक्तिगत व्यापार केवल बहुत छोटे पैमाने के विनिमय मे बाकी बचा जैसे फ़ेरी वाला अपना बहुत छोटा दूकानदार। खेती की अपेक्षा निर्मित वस्तु विनिमय मे व्यक्तिगत व्यापार का महत्व बहुत तेजी से घट गया। 1922-23 में कुल फुटकर व्यापार का 75 2% इनके हाथ मे था। यह घटकर 1927-1928 मे 22·4% रह गया।

कृषि मे भी केन्द्रीय राज्य संगठनो द्वारा बडे पैमाने पर अन्न और औद्योगिक फसलो को खरीदने का प्रबंध हुआ। नीति यह थी कि टैक्स के रूप में दिये जाने वाले अनाज से बची हुई फसल भी राजकीय नियंत्रण मे आ जाय। शीघ्र ही किसानो से सीधा सपर्क स्थापित करके विशाल सरकारी खरीददारो ने 100% कपास, 100% चुकन्दर 98% फ़्लेक्स, 98% तम्बाकू, 80% चमड़ा, 92% रोयेदार खाल और 70% ऊन का व्यापार अपने हाथो मे कर लिया। अच्छे संचालन और निर्देशन के लिये किसी एक वस्तु में व्यापार करने वाली सरकारी संस्थाओ की संख्या में कमी की गयी। सहूलियत के लिये प्रत्येक मुख्य फसल में व्यापार का एकाधिकार एक ही संस्था को मिला। यह रूप-रेखा सबसे अधिक औद्योगिक फसलो मे पायी जाती थी। कठोर मूल्य निर्धारण और अधिक माँग वाले औद्योगिक उत्पादन को बडी मात्रा मे ग्रामीण क्षेत्रों में भेजकर लगभग 1928 तक सरकारी तौर पर सकट की समाप्ति घोषित कर दी गयी। फिर भी

[1] Calvin Hoover. Op. Cit. pp. 147-151

कैंची के दोनों फल [Blades] पूरी तरह बंद न हुए। व्यापारिक संतुलन किसानों के विपरीति बना रहा। अंत में स्तालिन ने राशनिंग का सहारा लिया।

विदेशी व्यापार

गृह युद्ध के समय से ही विदेशी व्यापार में राज्य का एकाधिकार था। नवीन आर्थिक नीति के काल में प्रायः सभी आर्थिक क्षेत्र में छूट और सहूलियतें दी गयी थी किन्तु विदेशी व्यापार के एकाधिकार को छोड़ने के लिये लेनिन और इसका प्रसिद्ध संगठनकर्ता क्रेसीन एकदम तैयार न थे। सोवियत अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि बिना विदेशी व्यापार पर पूर्ण नियन्त्रण किये अर्थ व्यवस्था की बुनियादी प्रवृत्तियों पर विजय नहीं पाई जा सकती। यह पूर्णतः उचित था। समाजवादी राज्य के एकदम केन्द्रित और आयोजित अर्थप्रणाली से विदेशी व्यापार पूरी तरह हाथ में लिये बिना उन्नति सम्भव नहीं। इस एकाधिकार से अनेकों लाभ रूस को प्राप्त हुए। विदेशी प्रति-स्पर्धा से देश के औद्योगिक विकास की रक्षा हुई। संसार के पूँजीवादी, मन्दी और तेजी से आन्तरिक मूल्य-स्तर प्रभावित होने से बच गया। आर्थिक स्थिरता वस्तुतः कठिन होती है परन्तु इस सुरक्षा को पाकर वह और जटिल होने न पाई। अत्यन्त सीमित साधनों का आय व्यय उपभोग और विलासिता की सामग्री के आयात में न हुआ। योजना के अनुसार साधनों को केवल विकास के लिये खर्च करना सम्भव हो सका।

सोवियत रूस में विदेशी व्यापार का मुख्य ध्येय आयात-निर्यात से लाभ कमाना नहीं था वरन् देश की उन्नति में सहायक होना था। इसी से इशारा लेकर इस क्षेत्र की जो रूप-रेखा बनी इसमें देशी माँग और अंतर्राष्ट्रीय बाजार-मूल्य का कोई महत्व न था। निर्यात से आयात का भुगतान करना अनिवार्य पाकर उन सभी वस्तुओं की उपलब्धि पर जोर दिया गया जो विदेशों में बिक सकती थीं। इतना ही नहीं देशी माँग का कोई ख्याल किये बिना राष्ट्रीय उत्पादन का जितना अंश हो सकता था, निर्यात के लिये सुरक्षित कर दिया जाता। दुनिया के बाजार में चाहे जो भी भाव रहे, रूस सदा सामान बेचने को तैय्यार रहता था। हानि उठा कर भी माल बेच कर मशीन खरीदने के लिये देश बाध्य था। इतना त्याग [धन की हानि और देश में वस्तु अभाव] अनाज के निर्यात [export] न होने से करना पड़ा। योरप का "अन्न भंडार" अब अनाज बेच नहीं पा रहा था। 1913 में अनाज का निर्यात 878 5 मिलियन रूबल से घट कर 1928-29 में कुल 215 7 मिलियन रूबल रह गया।

विदेशी व्यापार का प्रयोग सोवियत सरकार अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये भी करती थी। माल खरीदने की लालच देकर राजनैतिक मान्यता प्राप्त करने की कोशिश रूस ने कई जगह किया। व्यापारिक मन्दी [1929-31] के कारण पूँजीवादी

देशो में अपना निर्मित-माल न बेच सकने पर बेरोजगारी का सकट प्रतिदिन बढता जा रहा था। ऐसे समय में हर प्रकार के खरीददार का स्वागत होना स्वाभाविक था। इसी प्रकार पूर्व मे, ईरान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, मगोलिया और चीन में पैर जमाने के लिये बडी कटौती पर माल बेचकर अँग्रेजो के प्रभुत्व को तोडने का प्रयत्न आरम्भ हुआ।

विदेशी व्यापार के सगठन को सरल बनाने का प्रयत्न किया गया। विदेशी व्यापार विभाग [Commissariat of Foreign Trade] के अलग-अलग माध्यम थे। सेन्त्रोस्यूज [Centrosoyuz] उपभोक्ता सहकारी समितियो के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप मे विदेशी व्यापार करती थी। सेल्स्कोस्यूज [Selskosoyuz] कृषि उत्पादन से सम्बन्धित था। इन सहकारी संगठनो के अतिरिक्त विदेशी पूँजी के सहयोग मे स्थापित विशेष स्कन्द प्रणाली कम्पनियाँ [Joint stock companies] इस क्षेत्र मे लाई गई। अनुभव और पूँजी की कमी दूर करने के लिये विदेशियो को नियन्त्रित किया गया था किन्तु इसमे आशातीत सफलता न मिली।

1925 तक यह अनुभव होने लगा कि देशी और विदेशी व्यापार मे सतुलन और सामंजस्य आवश्यक है। इसलिये विदेशी और अतर्देशीय व्यापार विभाग को आपस मे मिलाकर एक व्यापार विभाग अथवा नारकमतोर्ग [Commissariat of Trade or Norkomtorg] की स्थापना की गई। जिन देशो से रूस का राजनीतिक सम्बन्ध था वहाँ पर दूतावास का व्यापार प्रतिनिधि मडल सोवियत संघ के प्रतिनिधि के रूप मे व्यापार करता था। जिन देशो के साथ राजनैतिक सम्बन्ध नहीं था वहाँ पर एक कम्पनी इस काम के लिये बनाई जाती थी जैसे सयुक्त राज्य अमेरिका में आर्मतोर्ग और इगलैंड मे आरकौस, नारकमतोर्ग के व्यापारिक प्रतिनिधि थे। निर्यात को उत्साहित करने के लिये कर मे भी छूट दी गयी थी। फिर भी अगर देश के बाहर माल बेचने मे हानि हो तो इसे नारकमतोर्ग स्वयं सहन करता था।

मुद्रा बैंकिग और बजट

नवीन आर्थिक नीति के युग मे जितना परिवर्तन और छूट अर्थव्यवस्था के अन्य विभागो मे पाया जाता है उसका लेशमात्र भी मुद्रा बैंकिग और बजट मे नहीं मिलता। जैसाकि लेनिन ने शुरू मे ही कहा था कि पूँजीवाद के आगमन से कोई साम्यवाद को कोई हानि नही पहुँचेगी क्योकि अर्थव्यवस्था के मुख्य केन्द्रो [Commanding Heights] के पूर्ण राजकीय नियत्रण की सहायता से प्रत्येक अनुचित अर्थ लाभ की प्रवृत्ति को सीमित किया जा सकेगा। इस कार्यक्रम में सर्वोच्च स्थान मुद्रा, बैंकिग और बजट को दिया गया था।

मुद्रा के प्रति साम्यवादियो का पुराना विरोध था। इनके विचार से आदर्श साम्यवादी समाज मे मुद्रा और उससे उत्पन्न शोषण का कोई स्थान नहीं हो सकता।

एक मुद्रा विहीन समाज की स्थापना का ध्येय लेकर 1917-21 के बीच जितने भी प्रयास किये गये थे उनको और परिष्कृत रूप में नवीन आर्थिक नीति के अंतर्गत लागू किया गया। मुद्रा का सबसे बडा गुण—क्रयशक्ति—अब राशन कार्ड और सहकारी समिति की सदस्यता के प्रमाण-पत्र के बिना एक अर्थहीन वस्तु थी। नये सामाजिक संगठन में क्रय-शक्ति छिन जाने के बाद मुद्रा का दो ही काम रह गया—लेखा की इकाई [Unit of Accounts] और मूल्य मापन का साधन [Standard of Value]। विनिमय के माध्यम की क्रिया को अधिक-से-अधिक सीमित कर दिया गया। वास्तविकता में बहुत छोटे फुटकर विनिमय तक ही मुद्रा का प्रयोग बॉध देने की कोशिश हुई। यह काम इतनी अधिक सफलता से किया गया कि 1928 तक पूँजीवादी दृष्टि से वह स्थिति पैदा हुई जबकि मुद्रा रहते हुए भी उसका खर्च करना असम्भव हो गया। परिणामस्वरूप जनता की प्रवृत्ति मे भी परिवर्तन हुआ। मुद्रा का अपार आकर्षण और इसके प्राप्ति की असीम लालसा भी कम हो गई क्योंकि सोवियत सरकार ने मुद्रा और आवश्यकतापूर्ति का संबध विच्छेद कर दिया था। औद्योगिक वित्त [Industrial Finance] मे भी मुद्रा ने प्राथमिकता खो दी। पूँजी निर्माण मे मुद्रा का स्थान बैंक साख, उसकी मात्रा और गति [Amount and velocity] ने ले लिया। मुद्रा के पदच्युत होने का क्रम 1924 के चलन सुधार [curreny reform] के बाद तेजी के साथ आरम्भ हुआ और 1930 के सुधारो से पूरी तरह स्थापित हो गया।

युद्धकालीन साम्यवाद मे उद्योग के प्रत्येक कारखाने को स्थायी और चालू पूँजी राजकीय बजट से मिलती थी। इससे बैंक और साख का महत्व प्रायः लुप्त हो चुका था। आर्थिक नीति में पूँजीवादी उत्पादन से बैंको का पुनरुद्धार अनिवार्य हो गया। गृह युद्ध में मुद्रा का मूल्य इतना घटा दिया गया था कि अर्थव्यवस्था के सचालन मे भीषण कठिनाई उत्पन्न हुई। इसीलिये नवीन आर्थिक नीति का निर्णय करते ही सबसे पहले गोस बैंक अथवा केन्द्रीय बैंक की स्थापना की गयी। यह वित्त मत्रालय [Commi-ssariat of Finance] के अन्तर्गत काम करता था। गौस बैंक की सचालक समिति का सभापति वित्त मत्रालय ही नियुक्त करता था। 1929 में बैंक को मंत्रालय से एकदम स्वतत्र कर दिया गया किन्तु राज्य और बैंक की घनिष्ठता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडा। गौस बैंक कभी भी पुराने बैंकिंग सिद्धान्तो का पोषक नही रहा। सरकारी नीति और योजना मे बैंक इस प्रकार लिप्त था कि उनकी सहायता करने के मार्ग से पुराने बैंकिग सिद्धात और प्रथाएँ हटा दी गयी। उचित-अनुचित का अवरोध हट जाने से बैंक राष्ट्र की उन्नति का रक्षक, पोषक और पालक सब कुछ बन गया। केन्द्रीय बैंक राज्य की अर्थ और साख व्यवस्था का मूलाधार था। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र की दूसरी संस्थाएँ बैंक के सहायक या प्रतिनिधि के रूप में ही काम कर सकती थी।

गौस बैंक के क्रियाओं में इतनी व्यापकता पाई जाती है कि इसके प्रभाव क्षेत्र के बाहर आर्थिक ढाँचे का कोई भी अंग नही रह सकता। सबसे पहला ध्यान एक स्थिर मुद्रा प्रणाली की ओर दिया गया। सोवियत राज्य द्वारा चलाई हुई पत्र मुद्रा का असाधारण विघटन हो चुका था। इसकी सबसे बडी वजह सरकारी नोटों के पीछे किसी प्रकार के सचित कोष का सहारा न होना था। किन्तु गौस बैंक द्वारा चलाई गयी पत्रमुद्रा—सेरवास [Chetvonetz]—100% कोष द्वारा सुरक्षित था। पुराने नोट—सोव्जनाक [Sovznak]—से इसका सबध 10 : १ का था। इसको स्थायी बना रखने का पूरा प्रयत्न किया गया। जनवरी 1923 मे कुल चलित मुद्रा का ३% सेरवास और 97% सोव्जनाक नोट थे। अक्टूबर 1923 तक पुराने नोट 25% और नये नोट 75% हो गये। इन नये नोटों और गौस बैंक के प्रयत्नों से शीघ्र ही मुद्रा मे स्थिरता आनी आरम्भ हुई। सरकार के वित्तीय कार्य-क्रम की देख-रेख और सरकारी प्रतिभूतियो को बेचना-खरीदना इसी के जिम्मे था। बैंक के सगठन और कार्यक्रम में विचित्र आपसदारी पाई जाती है। इसकी शाखाओं का जाल केवल अपने स्वार्थों की सेवा न करके औद्योगिक और कृषि बैंको के प्रतिनिधि के रूप मे भी काम करता था। किसी स्थान पर एक से अधिक शाखा खोलने का अपव्यय बचाने के लिये गौस बैंक दूसरे बैंको को अपनी शाखाओं के माध्यम से काम करने की अनुमति देता था। साख नियंत्रण नीति मे पूँजीवादी बैंको के अप्रत्यक्ष नियत्रणों का रूस में प्रयोग नही होता। वहाँ तो केन्द्रीय बैंक प्रत्यक्ष रूप से साख की राशनिग का सहारा लेता है। बैंक का योजना विभाग अत्यत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली सगठन है। इस विभाग का काम योजना के आर्थिक अंग पर विशेष सलाह देना है।

गौस बैंक उद्योग और व्यापार से बहुत निकट संबन्ध रखता है। प्रत्येक मुख्य उद्योग के लिये बैंक में पृथक विभाग बना है। इस विभाग के सचालन मे बैंक उद्योगो को साख देने के साथ धन के उचित प्रयोग और योजना के अनुसार व्यय का निरीक्षण भी करता है। यह सयोजित अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग है और उद्योगों के नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली और सरल साधन। प्रत्येक विभाग संबन्धित उद्योग की योजना बनाने में सक्रिय सहयोग देता है। इस आर्थिक सहयोग में लाभ, स्थिरता और तरलता के स्थान पर साख-योग्यता [Credit-wo.thiress] का माप एक-मात्र योजना पूर्ति है। इस अरक्षित बैंङ्किक प्रणाली से हानि की संभावना का डर इसलिये नही रहता कि राज्य क्षतिपूर्ति के लिये सदा तत्पर रहता है। इस प्रकार उन्नति के मार्ग पर से पूँजी व साख की कमी का अवरोध गौस बैंक ने एकदम हटा दिया। पूँजीवाद की क्रूर स्वामिनी, पूँजी, साम्यवाद मे आज्ञाकारिणी सेविका बन गई।

साम्यवाद में विनिमय के लिये मुद्रा का प्रयोग एक अपवाद माना गया है। इस राजकीय नीति का पालन करते हुए गौस बैंक ने विनिमय में मुद्रा का प्रयोग घटाने

में दृढ़ता पूर्वक नये तरीको को अपनाया। तर्क यह था कि सभी संपत्ति, पूँजी और उत्पादन राज्य का है। इसलिये राज्य के कार्यवाही के विभिन्न अंग पृथक इकाइयो की तरह आपसी व्यवहार क्यो करे ? पारस्परिक संबन्ध और विनिमय को सरलतम बनाने मे गौस बैङ्क ने सहारा दिया। प्रत्येक उत्पादन की इकाई [कारखाना] बैङ्क के पास अपना खाता रखती थी जिसमें सभी साधनो से प्राप्ति और सभी को देना अकित किया जाता था। बैङ्क अको के हस्तातरण से इन दूर-दूर फैले हुये उत्पादन केन्द्रो का आपसी भुगतान बिना मुद्रा-प्रयोग के कर देता।

जहाँ तक बजट का सम्बन्ध है नवीन आर्थिक नीति के आरम्भ में व्यय आय का छः गुना हो चुका था। बजट का घाटा 1918 मे 31,126 मिलियन से बढ कर 1921 मे 20,332,000 मिलियन रूबल हो गया था। उस घाटे की पूर्ति नोट छापकर की गई। मुद्रास्फीति से पीडित देश की सहायता घाटे के बजट को बदले बिना करना असम्भव था। खर्चे को कम करने के लिये अनेको साधन खोजे गये। युद्ध की समाप्ति से इस ओर अग्रसर होना सम्भव हो सका। सरकारी व्यय के प्रत्येक भाग मे बचत, अपव्यय को हटाना और अधिकतम धन के उपयोग के लिये कडे निरीक्षण की योजनाएँ बनाई गयी। साथ ही साथ स्थानीय सरकारो की अर्थव्यवस्थाओ को केन्द्रीय सरकार से अलग कर दिया गया। इस प्रकार उन्हे लाचार किया गया कि वे अपने साधनो के अन्दर ही काम करे। आय की वृद्धि के लिए कृषि पर लगे हुए कई करो को मिला दिया गया जिससे वसूली आसान और कम खर्च मे हो जाय। 1924 में इस दिशा में खास सुधार हुए। वस्तु में लिये जाने वाले कर मुद्रा मे बदल दिये गये और 1917 के पहले के कई प्रचलित कर बन्द कर दिये गये। साम्यवादी दल के ग्यारहवे अधिवेशन [मार्च,'अप्रैल 1922] मे कर नीति निर्धारित की गयी जिसके अनुसार कर व्यवस्था के दो उद्देश्य निश्चित हुए। प्रथम, साम्यवाद की स्थापना में मदद करना और द्वितीय, अधिक से अधिक धन उपलब्ध करना। कर के अतिरिक्त राज्य ने ऋण का सहारा भी लिया। आरम्भ में [1922] दो ऋण राज्य सरकार ने लिये जिन्हे मुद्रा के स्थान पर वस्तु मे [अनाज और चीनी] मे वसूला गया। पहला मुद्रा-ऋण भी इसी वर्ष चालू हुआ किन्तु राजकीय आय के चित्र मे कर और ऋण का महत्वपूर्ण स्थान न बन पाया। 1922 मे कुल आय का 2·7% कर से, 10 6% राजकीय उद्योग तथा सम्पत्ति से और 86·7% मुद्रा प्रसार से आया।[1] परिस्थिति पर काबू पाने की कोशिशो का परिणाम यह हुआ कि घाटे की पूर्ति में नोट छापने का सहारा कम हो गया। एक वर्ष के अन्दर [अक्टूबर-दिसम्बर 1923] आय का कुल 41% भाग नोट छाप कर प्राप्त किया गया[2]।

1. Cited in Baykov, Op. Cit, p 82
2. Arnold Op Cit, p 192

कृषि

नवीन आर्थिक नीति के सामान्य उद्देश्य के अनुसार कृषि क्षेत्र में उत्पादन की वृद्धि को लक्ष्य बनाया गया। 1920-21 के अकाल ने यह स्पष्ट कर दिया कि अनाज और कच्चे माल का उत्पादन बढाये बिना देश का उद्योगीकरण और प्रगति सम्भव नही। बढते हुए औद्योगिक क्षेत्र और विशाल लाल सेना का भोजन प्राप्त करना राज्य की जिम्मेदारी थी। अनाज के निर्यात के बदले मे मशीन मॅगाने की आवश्यकता गम्भीर रूप धारण कर रही थी। इन समस्याओ के अतिरिक्त कई और बाते परिस्थिति में उलझन पैदा करती थीं। ग्रामीण क्षेत्र का सामाजिक विभाजन ऐसा था जिसमे उत्पादन वृद्धि, विशेषकर बाजार के लिए अतिरिक्त उत्पादन [Surplus production for market] का एकमात्र उपाय सोवियत राज्य के बुनियादी सिद्धान्त के विरुद्ध पडता था। गरीब किसान अधिकतर स्वय उपभोक्ता थे और मध्यम वर्ग के पास बडे पैमाने की विस्तृत खेती करने का साधन न था। बडे पैमाने पर उत्पादन की आवश्यकताएँ और अनुभव केवल समृद्ध किसानो के पास मिलता था। लेनिन के विचारो से यह वर्ग पूँजीवाद का गढ [Stronghold of Capitalists] था। उद्योग की तरह इनको भी पूँजीवादी छूट देकर अधिक उत्पादन के लिये प्रेरित किया जा सकता था। किन्तु इन पर निकट निरीक्षण और सफल सचालन बडी सख्या और बिखरेपन के कारण सम्भव न था। युद्धकालीन साम्यवाद के समय विचारहीन रूप से भूमि का पुनः वितरण [Redistribution] होने से ग्रामीण क्षेत्र की उत्पादन शक्ति को ज्यादा धक्का पहुँचा था। लोगो ने लालच में अपने साधनो से अधिक भूमि पर कब्जा तो कर लिया लेकिन खेती न कर सके। इन समस्याओ के अतिरिक्त भूस्वामी के पूर्ण संचालन में काम करने के अभ्यस्त रूसी किसान, स्वतंत्र रूप से कुशलतापूर्वक उत्पादन कार्य को चलाने मे असमर्थ थे।

इन समस्याओ की जटिलता से प्रेरित होकर नवीन आर्थिक कार्यक्रम् में कृषि नीति का सम्पादन हुआ। इस क्षेत्र की नीति भूमि का राष्ट्रीयकरण [जो पहले हो चुका था] और सामुदायिक खेती थी। इसमे कोई परिवर्तन नही आया। सोवियत नेता यह मानते थे कि वर्गहीन समाज मे किसान वर्ग का कोई स्थान नही हो सकता। अन्त मे किसानो को उसी प्रकार मिट जाना होगा जैसे प्रथम पंचवर्षीय योजना मे स्तालिन ने अमीर किसान अथवा कुलक वर्ग को मिटा दिया था। मजदूर—किसान सहयोग [Smytchka] उस समय का नारा अवश्य था पर उसके अस्थायी होने मे कभी सन्देह नही रहा। इतना ही नही, साम्यवादी रूप-रेखा मे पुराने विचारो का स्वतन्त्र किसान वर्ग विरोधी प्रतिक्रियाओ का केन्द्र माना जाता है। अतः किसानो के निर्विरोध विकास को सोवियत सरकार नवीन आर्थिक नीति मे भी सहन न कर सकी। इससे किसानो की उत्पादन शक्ति के पुनरुत्थान मे कठिनाई पडी। यह भी पूर्वनिश्चित था कि जैसे ही आर्थिक सकट पर

विजय पाई जा सकेगी किसानों पर दिखाई गयी उदारता फिर से प्रतिबन्धों में जकड़ दी जायगी। कृषि नीति का एक स्पष्ट रूप था कि किसी भी प्रकार अस्थायी छूटों की मदद से, किसानों की माँग को तृप्त करके, उनसे उत्पादन कराया जाय। इस काम में प्रत्येक वर्ग के किसानों की व्यक्तिगत कुशलता और उत्साह का सहारा लिया जाय।

इस नीति के पालन में किसानों को अनेकों सुविधाएँ मिलीं। बलपूर्वक उपज को जब्त करने की नीति को त्यागकर सरकार ने हतोत्साह किसानों को पुनर्जीवन दिया। इसकी जगह पर एक कर लगाया गया जिसकी वसूली आरम्भ में तो वस्तु के रूप में होती थी परन्तु मुद्रा स्थिरता आने पर रूबल में होने लगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अवैधानिक होने से किसानों में परिश्रम और उत्पादन के प्रति जो उदासीनता आ गयी थी, उसके इलाज के लिये व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यापार दोनों की अनुमति मिली। टैक्स देने के बाद बची हुई उपज खुले बाजार में बेची जा सकती थी। उससे प्राप्त धन किसी रूप में व्यय किया जा सकता था। खेतों को छोटे-छोटे टुकड़ों में मनचाहे तरीकों से बाँटना रोक दिया गया। गाँवों में गरीब किसान द्वारा बड़े खेतों का आपस में बँटवारा, क्रान्ति के बाद, रूसी कृषि का अभिशाप बन गया। उसके दूर होते ही जोत की भूमि की मात्रा में स्थिरता आ गई। शान्ति के बाद जब किसान ने देखा कि राज्य चाहता है कि वह अपनी प्रिय सम्पत्ति—भूमि—को भी छोड़ दे, अर्थात् सामुदायिक खेतों में अपने व्यक्तिगत स्वामित्व को डुबा दे, तो उसके निराशा की सीमा न रहीं। इसका उपचार नवीन आर्थिक नीति में किया गया—उन्हें अपनी भूमि पर इच्छानुसार खेती करने की आज्ञा मिली। दबाव के स्थान पर तरह-तरह की सुविधाओं की लालच देकर समाजवादी खेती की ओर आकर्षित करने का निश्चय किया गया। इस कार्यक्रम ने तुरन्त प्रभाव दिखलाया। अनावृष्टि [Drought] और अकाल का प्रभाव दूर होते ही उत्पादन में तेजी के साथ वृद्धि हुई। कृषि का क्षेत्रफल 1922-23 में 66·2 मिलियन हेक्टर से बढ़कर 1926-27 में 93 7 हो गया। 1913 में यह 94·4 मिलियन हेक्टर था। बीज रखने के बाद उत्पादन 1921-22 में 42·3 मिलियन टन से बढ़कर 1926-27 में 78·3 हो गया। यह 1913 में 80 1 मिलियन टन था।[1] उत्पादन वृद्धि के साथ बाजार में आया अनाज कम होता गया। 1913 में कुल फसल का 20 3% बाजार में बिकने आता था। यह मात्रा घटकर 1924-25 में 14·3%, 1925-26 में 13·2%, 1927-28 में 12·1% और 1928-29 में 11·1 हो गई।[2] इसका मुख्य कारण यह था कि गरीब और मध्यम वर्ग के किसान कुल अनाज का 85 3% पैदा करते थे लेकिन फसल

[1] Hubbard, L E. Economics of Soviet Agriculture.

[2] Soviet Planning Commission data quoted in Baykov. Op. Cit., p. 136.

का केवल 13% बाजार मे बेचते थे । सामुदायिक और राजकीय कृषि का उत्पादन कुल 1·7% था लेकिन वे अपने उपज का 47 2% बाजार भेजते थे ।[1] इस परिस्थिति ने नवीन आर्थिक नीति के अन्त मे फिर से सकट पैदा कर दिया । किसानो ने बाजार के एकमात्र खरीदार राजकीय सस्थाओ को निश्चित मूल्य पर अनाज बेचने से इन्कार कर दिया । यहाँ तक कि सरकारी पर्जो से अनाज की रक्षा करने के लिये जानवरो को अनाज खिलाकर, उनके मास को बेचना और अन्न की जगह औद्योगिक फसलो को बोना शुरू किया । परिस्थिति अत्यन्त जटिल थी । अनाज का मूल्य बढ़ाते ही औद्योगिक उत्पादन का मूल्य भी बढ जाता । कैंची सकट के कारण उस समय अपने आप ही औद्योगिक मूल्य कृषि के अनुपात मे इतना अधिक था कि उसमे और वृद्धि करने से जनता मे विरोध फैल जाता । इसके अतिरिक्त उपभोग की वस्तुओ के व्यापक अभाव की कठिनाई और भी बढ़ जाती अगर किसानो के हाथ में खर्च करने के लिये अधिक धन आने लगता ।[2] सरकार को यह करना कदापि स्वीकार न था इसलिये एक ही उपाय बचा जिसके द्वारा सेवा और मजदूरो के लिये पर्याप्त अन्न मिल सकता---बलपूर्वक छिपाये हुए अनाज को प्राप्त करना । सरकारी मूल्य पर अन्न बेचने से इन्कार करने पर सारी उपज जब्त कर ली जाती थी । इस प्रकार नवीन आर्थिक नीति के अन्त में किसानो की लगभग वही दशा हो गयी जो क्रान्ति के पहले थी । गरीबी, लाचारी और प्रतिबन्ध में जकड़े हुए किसान को अब यह अनुभव हुआ कि बोल्शविक सरकार उसके प्रति किसी भी रूप में पुराने भूस्वामियो से अधिक उदार नही थी । साम्यवादी दल अडा हुआ था कि किसानो की यह तुच्छ पूँजीवादी प्रवृत्ति [petty bourgoise mentality] के सामने न झुका जाय । इस दिशा मे जो कदम सोवियत सरकार ने उठाये, उसने सम्पूर्ण कृषि संगठन को इस तरह पगु बना दिया कि विकराल दुर्भिक्ष का आगमन अनिवार्य हो गया । इससे प्रभावित होकर कृषि-नीति की जो पुनर्विवेचना हुई, वही प्रथम पंचवर्षीय योजना का आधार बनी ।

उद्योग

अगस्त 1921 मे सोवियत सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र में अपनी भूलो को वैधानिक रूप से स्वीकार किया । जल्दीबाजी मे किए गए अनावश्यक राष्ट्रीयकरण से उत्पन्न अव्यवस्थित सगठन व गिरते हुए उत्पादन को दूर करने का उपाय नवीन आर्थिक नीति के रूप मे अवतरित हुआ । उद्योग सम्बन्धी नीति के मुख्य सिद्धान्त बनाये गये । प्रथम, वेसिखा अथवा उच्चतम आर्थिक समिति [Supreme Economic Council] के

---

[1] Louton Economic History of Soviet Russia, Vol. I, p. 102

[2] Hubbard Op. Cit, pp. 105-110

अन्तर्गत केवल प्रमुख बड़े उद्योग ही रहेंगे। द्वितीय, इसके अतिरिक्त अन्य उत्पादन केन्द्र सहकारी समितियों तथा व्यक्तिगत उत्पादकों को चलाने के लिये दिये जायँगे। तृतीय, जितने कारखानों का राष्ट्रीयकरण नहीं हो पाया था उन्हें पुराने भूस्वामियों को वापस कर दिया जायगा। चतुर्थ, सम्पन्न और सुसगठित राजकीय उद्योगों को बड़े-बड़े औद्योगिक सघ में बाँटा जाय जिससे उन पर नियन्त्रण तथा सचालन और अच्छी तरह हो सके। इन सिद्धान्तों के अनुसार बड़े पैमाने के प्रमुख उद्योग स्थापित हुए।

उत्पादन वृद्धि की इच्छा से प्रेरित होकर नवीन आर्थिक नीति के औद्योगिक अंग को निर्मित किया गया। इसका मुख्य आधार अराष्ट्रीयकरण [Denationalisation] था। अनावश्यक राष्ट्रीयकरण को मूल-सुधार का यह उपाय था। इसका अर्थ यह नहीं कि बोल्शेविक सरकार ने राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्तों को तिलाजलि दे दिया। प्रमुख बड़े उद्योग, बैंकिंग, यातायात राज्य के हाथ में रहे जिनके द्वारा सम्पूर्ण औद्योगिक व्यवस्था पर पूर्ण राजकीय सचालन सम्भव था। इस समय तक परिस्थिति बहुत कुछ सुलझ गयी थी और राजकीय सगठन सबल हो चुका था। अतः नवीन केन्द्रीय निर्देशन के साथ औद्योगिक शासन के विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त अपनाया गया। इस पुनर्सगठन द्वारा औद्योगिक मामलों में, खास कर दैनिक शासन में, राजकीय सस्थाओं के अनावश्यक हस्तक्षेप को कम करने का प्रयत्न किया गया। व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और इच्छापूर्ण प्रयत्न औद्योगिक कर्मचारियों में उत्पन्न करने का यह प्रभावशाली उपाय था। कठोर और अप्रिय वास्तविकता को नीति का आधार बनाने का क्रम इस समय से आरम्भ होकर बहुत दिनों तक औद्योगिक प्रबन्ध और सगठन की रूपरेखा में निरतर परिवर्तन करता रहा। पूँजीवादी उत्पादन के ढाँचे के गुणों की रक्षा करते हुए, इसमें ऐसा रूपान्तर किया गया कि वह आश्चर्यजनक सफलता के साथ समाजवादी केन्द्रीय संचालन में अभिन्न रूप से मिल गया। अगर निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो रूसी औद्योगिक सगठन किसी प्रकार पूँजीवादी सगठन से अधिक उलझा हुआ नहीं था। नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत विकसित औद्योगिक सगठन एव प्रबन्ध स्थायी रूप में भविष्य के रूसी उत्पादन की नींव बना रहा।

इस नीति में बड़े और प्रमुख उद्योग राज्यस्वामित्व में रहे। असफल और अनुत्पादक निर्माण केन्द्रों को बन्द कर दिया गया। अधिकतर छोटे उद्योग सहकारी समितियाँ और व्यक्तिगत उत्पादकों को सौंपे गये। राष्ट्रीयकरण से बड़ी मात्रा में निकाल कर छोटे पैमाने के उद्योगों को उनके पुराने मालिकों को लौटा दिया गया। पूँजी, कुशलता और अनुभव प्राप्त करने को विदेशियों को कुछ पुराने उद्योग चलाने तथा नये स्थापित करने के लिये आमंत्रित किया गया। इतना ही नहीं, राज्य ने व्यक्तिगत पूँजी के सहयोग में मिश्रित उत्पादन व्यवस्था भी चलाई थी। 1924 में लेनिन की मृत्यु के

बाद इस नीति मे सशोधन के समय तक 88.5% उत्पादन सस्थाएँ व्यक्तियो के हाथ में, 8.5% राज्य तथा 3.1% सहकारी समितियो के पास थी। इन आँकडो से यह अर्थ नही निकालना चाहिये कि उद्योगपतियो के पुराने सुनहले दिन फिर वापस आ गये थे। कुल मजदूरो का केवल 12.4% उनमे लगा था। व्यक्तिगत उद्योग मे वही कारखाने दिये गये जो कम से कम दो और अधिक से अधिक 20 मजदूर रखते थे। इसके विपरीत उपरोक्त सरकारी उद्योगो की संख्या 8.5% होते हुए भी उसमे कुल औद्योगिक श्रम का 84.1% काम करता था।[1]

सफल सगठन और सचालन के लिये राजकीय कारखानो को अलग-अलग औद्योगिक समूह अथवा सघ मे बॉध दिया गया। इनका उद्देश्य सम्बन्धित कारखानो के उत्पादन का सगठन तथा सचालन, व्यापारिक सिद्धान्तो पर, लाभ प्राप्ति के लिये करना था। 1923 मे इनकी स्थापना वैधानिक रूप से हुई। व्यक्तिगत उद्योगपति अपने कारखानो का सघ नही बना सकते थे। औद्योगिक संगठन के इस रूप के अतिरिक्त दूसरे प्रकार की सस्थाएँ भी बनी जिनको सिण्डीकेट कहते थे। राजकीय उद्योगो के व्यापारिक कार्यक्रम के लिये इनको बनाया गया था। अधिकतर सिण्डीकेट कई ट्रस्ट द्वारा मिलकर ऐच्छिक संस्थाओ की तरह स्थापित किये गये थे। बाजार से सम्बन्धित और आर्थिक रूप से पुष्ट होने के कारण शीघ्र ही इन सिण्डीकेटो ने ट्रस्टो के ऊपर अपना प्रभुत्व जमा लिया।

नवीन आर्थिक नीति के काल में राजकीय उद्योग के शासन के पुनर्संगठन का प्रथम प्रयास नवम्बर 1923 में हुआ। इससे प्राप्त अनुभव की सहायता से जुलाई 1927 में दूसरी कोशिश की गई। इनके द्वारा राजकीय सचालन मे व्यापकता और आन्तरिक प्रबन्ध मे लोच लाने का उद्देश्य पूरा हुआ। शंका, सन्देह, भय तथा अनुभवहीनता के कारण औद्योगिक सचालन मे अनेको संस्थाएँ आ गयी थी जिससे बडी कठिनाई उत्पन्न होने लगी। कुछ सुधारो के द्वारा इनमें कमी की गयी और इनका रूप प्रभावशाली तथा सफल बनाया गया। नीति निर्धारण का काम वेसिखा [Supreme Economic Council] के योग्य हाथो मे केन्द्रित कर दिया गया। 1927 में वेसिखा के अधिकार और प्रबल बनाने के लिये ट्रस्ट का उद्देश्य भी बदला। "व्यापारिक सिद्धान्तों पर लाभ प्राप्ति" के स्थान मे "व्यापारिक सिद्धान्तो पर योजना के लक्ष्यो की पूर्त्ति" इनका ध्येय बना। सिण्डीकेट का प्रभाव-क्षेत्र स्वतन्त्र बन कर सफल निर्देशन मे तनाव पैदाकर रहा था। उसके अधिकारो को सीमित करके सिण्डीकेटो को वेसिखा के एक विभाग की तरह पुनर्संगठित किया गया। ट्रस्टो को भी सर्वव्यापी संचालन से हटाकर कारखानो के यान्त्रिक

---

1 Baykov Op. Cit., p. 110.

संगठन [Technical Organisation] की ओर बढ़ाया गया। 1924 तक ट्रस्ट के अन्तर्गत अलग-अलग कारखानों को अपना पृथक अस्तित्व नहीं प्राप्त था किंतु अब आम आर्थिक लेखा [general financial statements] तो ट्रस्ट ही तैयार करते थे किंतु इनके कारखाने का हिसाब अलग-अलग रखा जाने लगा। इससे व्यक्तिगत उत्पादन की इकाइयों में बचत और कार्य-कुशलता उत्पन्न हुई। 1927 से कारखानों के आंतरिक प्रबन्ध में भी सुधार हुआ। प्रबंधक [manager] का अधिकार-क्षेत्र और व्यापक बना। उसे सम्पूर्ण कारखाना प्रबंध का एक मात्र उत्तरदायी ठहराया गया। एक व्यक्ति-प्रबंध औद्योगिक क्षेत्र में वरदान सिद्ध हुआ यद्यपि इसको पूरी तरह से लागू करने में काफी समय लगा।

इन प्रयत्नों का संयुक्त प्रभाव था कि औद्योगिक उत्पादन में अपकर्ष की ओर गति रुक गई। 1922 से ही उत्पादन ने उठना शुरू किया। अनेकों कारणों से यह प्रगति आशातीत तेजी के साथ नहीं आ पाई। खेती ने नवीन आर्थिक नीति आरम्भ होने के चार साल बाद ही 1913 का उत्पादन स्तर प्राप्त कर लिया। किन्तु औद्योगिक उत्पादन के मार्ग में प्रमुख रुकावटें थीं—खराब हालत में मशीन, पूँजी की कमी, कुशलता और अनुभव का अभाव, कच्चे माल की कठिन प्राप्ति और औद्योगिक श्रम की बिगड़ी हुई मनोवैज्ञानिक स्थिति। फिर भी उत्साहपूर्ण सक्रिय प्रयत्नों का प्रभाव हुए बिना न रहा। 1926-27 में बड़े उद्योगों का उत्पादन लगभग 1913 के बराबर हो चुका था।

उत्पादन की प्रगति[1]

वर्ष	मूल्य पर आधारित : मिलियन रूबल में		
	भारी उत्पादन	उपभोग उत्पादन	कुल उत्पादन
1913	4,290	5,961	10,251
1921	814	1,111	1,925
1222	1,090	1,422	2,512
1923	1,785	2,044	3,829
1924	1,959	2,510	4,469
1925	3,121	4,315	7,436
1926	4,304	5,973	10,277
1927	5,372	6,679	12,051

इस उत्पादन की वृद्धि के सम्बन्ध में दो बातें उल्लेखनीय हैं। मात्रा के साथ-

1 Baykov. Op. Cit., p. 121

साथ उत्पादन की किस्म [Quality] में अवनति होती गई। उत्पादन बढ़ाने पर इतना जोर दिया जाता था कि किस्म के नियन्त्रण पर से ध्यान हट गया। सोवियत उत्पादन में काफी समय तक यह कमजोरी बनी रही। इसके साथ ऊँची लागत का उत्पादन भी नवीन आर्थिक नीति में बराबर पाया जाता था। अनुभवहीन प्रबन्धक, लागत-लेखा प्रणाली [Cost accounting System] का न होना, मजदूरों का अत्यधिक वेतन और उद्योग का पूर्ण एकाधिकार इस परिस्थिति का उत्तरदायी था।

अन्य वर्ग के उत्पादकों में राज्य के बाद, व्यक्तिगत उद्योगपतियों का स्थान आता है। इस काल में व्यक्तिगत उद्योगपतियों को उत्पादन क्षेत्र में बुलाकर कई समस्याओं को हल करने की चेष्टा की गई थी। असगठित राष्ट्रीयकरण से राज्य को बहुत बड़ी संख्या में कारखानों का प्रबन्ध लेने के लिये बाध्य होना पड़ा था। इस काम के लिये पर्याप्त धन, अनुभव, कुशल कर्मचारी और संगठन सोवियत संघ के पास उपलब्ध न हो सका। ऐसे समय में औद्योगिक प्रबन्ध निजी उद्योग को सौंपकर, गिरते उत्पादन के पूरे अपयश को सरकार ने अपने सर से टाल दिया। विदेशी पूँजी और कौशल के स्वागत का उचित वातावरण बनाने के लिये किसी न किसी रूप में पूँजीवाद को आश्रय देना आवश्यक था। राज्य यह कदापि नहीं चाहता था कि निजी उद्योग सफल हो। इस दृष्टि से उन पर ऐसे नियंत्रण लगाये गये जिनके अंतर्गत सफलता असम्भव हो गई। इसका उद्देश्य था कि देश में साम्यवादी नीति के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विरोधी प्रमाणित रूप से यह देख लें कि जिन परिस्थितियों में सोवियत उत्पादन असफल रहा उसमें व्यक्तिगत उत्पादन से भी कोई आशा नहीं की जा सकती, दूसरे शब्दों में, दोष परिस्थितियों का है न कि सोवियत पद्धति के संचालन का। आरम्भ से ही निजी उद्योग अत्यन्त छोटे पैमाने के उद्योगों से बनाया गया था। इसको स्वार्थ-सिद्धि के लिये सहन किया गया, इसके गुणों के लिये नहीं। लेनिन की मृत्यु के बाद [1924] जैसे-जैसे परिस्थिति सुधरती गयी उनका महत्व कम होता गया। इस क्षेत्र के पतन का अन्दाज इस बात से लगता है कि 1928 में इसमें 3,19,000 मजदूर थे। स्टालिन ने 1930 तक यह संख्या कुल 51,000 कर दिया जो शीघ्र ही प्रायः शून्य में बदल गई।[1]

अनुभव और पूँजी प्राप्त करने के लिए विदेशी उद्योगपतियों को विशेष सुविधाएँ देकर देश में बुलाने का प्रयत्न किया गया। विदेशियों के असहयोग और डर के कारण इसमें बहुत कम सफलता मिली। जो उद्योगपति इसके लिये तैयार भी हुए वे या तो बहुत छोटे व्यापारी थे या अवसरवादी धूर्त थे। 1922-27 के बीच जर्मनी, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस से 40 विशेषाधिकार सम्बन्धी समझौते हुए। इसके

[1] Schwartz H · Russia's Soviet Economy, p. 440

अतिरिक्त यान्त्रिक कुशलता की सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य के कई देशों के साथ समझौता हुआ जिसके द्वारा प्रशिक्षण, फैक्टरी का निर्माण, मशीनो की स्थापना तथा कोयला और पेट्रोल जैसे उद्योगो में सुधार की सलाह ली गई । अधिकतर ऐसे प्रसविदो में सहायता देने वाले देश से आवश्यक मशीनें खरीदना अनिवार्य था । सबसे अधिक सहायता रूस के पुनर्निर्माण मे अमरीका और जर्मनी ने प्रदान किया । कौन जानता था कि उद्योगपतियो की लालच भविष्य मे इन्ही राष्ट्रों के लिये अभिशाप बन जायगी ।

कम महत्ववान कुछ उद्योगो का मिश्रित कम्पनियो के द्वारा संगठन किया गया । इनमे निजी पूँजी और राज्य परस्पर सहयोगी के रूप मे एक साथ मिलकर काम करते थे । मुख्य लक्ष्य पूँजी और विदेशियो से औद्योगिक सगठन की शिक्षा प्राप्त करना था । मिश्रित कम्पनियो के प्रयोग की विदेशी सहायता आकर्षित करने का एक माध्यम कहा जाना चाहिये । सन्तोषजनक रीति से यह प्रयोग न चला तथा इसका क्षेत्र बहुत छोटा ही बना रहा ।

सारांश

गृहयुद्ध के बाद देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई थी । औद्योगिक उत्पादन युद्ध के पहले से 20% और कृषि उत्पादन 54% गिर गया । कोयला, पेट्रोल, लोहा तथा अन्य खनिज पदार्थ का उत्पादन प्रायः रुक चुका था । मजदूरो की संख्या मे 60% और वास्तविक वेतन [real wages] मे 35% कमी हुई । यातायात इस तरह सैनिक कामो मे व्यस्त हो गया कि समाज के विभिन्न प्रदेशो का आर्थिक तथा अन्य सभी सम्पर्क शिथिल पड़ गया । मुद्रा व्यवस्था उठाने से बाजार व व्यापार नष्ट हो गया । 1921 के भयकर अकाल ने बची हुई कमी को पूरा कर दिया । आर्थिक पुनरुत्थान के अतिरिक्त अस्तित्व की रक्षा का कोई अन्य उपाय न था । नवीन आर्थिक नीति इस दिशा में सफल प्रयास बनी । इस सफलता की कहानी यह आँकड़े बतलाते है :

1913 के प्रतिशत मे उत्पादन [1]

वर्ष	उद्योग	कृषि	कुल उत्पादन
1913	100·0	100 0	100 0
1916	109 5	99 0	103 4
1919	23 1	76 3	53 9
1920	20 4	68 9	48 5
1920-21	24 7	63 9	47 4
1921-22	30 1	54 4	44·2
1922-23	39 5	73·6	59 2
1923-24	48 0	79 9	66 5
1925-26	89 9	101 3	96 5
1926-27	103 9	106 5	105 4
1927-28	119 6	105 6	115 5

इस प्रगति का यदि विस्तार देखा जाय तो वह और भी आश्चर्यजनक था :

उत्पादन-वृद्धि [2]

	1913 के प्रतिशत में 1927-28
बिजली	259 6%
कोयला	112 5
पेट्रोल	125 8
पीट	446·2
कमबशन इञ्जन	403·4
कृषि यंत्र	186 6
कच्चा लोहा	78 6
सूती कपड़ा	121·9
ऊनी कपड़ा	102 1
चीनी	103 9
अनाज	89 6
कपास	96 5
फ्लैक्स	54 6
चुकन्दर	92 7

[1] Grinko G. T. . The Five Year Plan of the Soviet Union, p. 34

[2] Ibid. pp. 34-35

नवीन आर्थिक नीति की सफलता का एक मापदण्ड राष्ट्रीय आय होगी। यह 1927-28 में 1913 की 105% हो गई। 1923-1928 के बीच राष्ट्रीय आय की वृद्धि का वार्षिक क्रम 10% था जिसकी बराबरी उस समय में किसी भी देश के लिए करना सम्भव नहीं था।

अन्त मे, एक प्रश्न और उठता है कि नवीन आर्थिक नीति को सिद्धान्त की दृष्टि से किस वर्ग मे रखा जाय—पूँजीवाद, समाजवाद, अथवा साम्यवाद। इस नीति के प्रत्येक अंग मे सैद्धान्तिक विरोधाभास [Doctrinal paradox] इस तरह भरा था कि किसी एक स्पष्ट वर्ग मे यह पूरी तरह शामिल नहीं होती। समाजवाद के ढाँचे में पूँजीवादी उत्पादन के प्रभावशाली तरीको का समावेश इसका मुख्य लक्षण माना जाता है। लेनिन इसे "परिवर्तनकालीन मिश्रित पद्धति" [transitional mixed economy] मानता था। उत्पादन वृद्धि तथा आर्थिक सतुलन के लिए लगभग इसी प्रकार का कार्यक्रम अक्टूबर क्रान्ति के बाद लेनिन ने अपनाया था।

ऐसी व्यवस्था को समाजवाद कहना कदापि उचित नहीं होगा। लेनिन ने एक नये "वाद" का निर्माण किया—राजकीय पूँजीवाद [state capitalism]। समाजवाद और पूँजीवाद के तत्वो का मिश्रण इस अनुपात मे हुआ कि व्यक्तिगत लाभ की प्रेरणा-शक्ति और पूँजी [profit motive and capital] को समाज-कल्याण के लिए एक निश्चित मार्ग पर चलाया जा सके। इसे "निर्देशित पूँजीवाद" [directed capitalism] भी कहा जा सकता है। रूस की वर्तमान अर्थ व्यवस्था मे भी समाजवाद के सिद्धान्तो का इतना सशोधित रूप मिलता है, कि उसे समाजवाद कहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। उन्नत पूँजीवाद और वर्तमान रूसी समाजवाद मे सबसे बड़ा अन्तर यह नहीं है कि पूँजी का अधिकतम सामाजिक महत्व कम हो गया हो: अन्तर यह है कि पूँजी का स्वामित्व व्यक्तिगत क्षेत्र से राज्य के पास चला गया। इस दृष्टिकोण से आज भी रूस राजकीय पूँजीवाद का समर्थक माना जा सकता है। इसका जो आकार और विस्तार नवीन आर्थिक नीति मे बना, कुछ परिवर्तनो के साथ, वह आधुनिक सोवियत अर्थ-प्रणाली का भी आधार है।

यदि गम्भीरता से देखा जाय तो मार्क्स, एञ्जिल्स, लेनिन और स्तालिन सभी पूँजीवादी उत्पादन के प्रेरको, तथा प्रबन्ध [incentives and management] की श्रेष्ठता स्वीकार करते थे। उनका विरोध मुख्य रूप से धनिकवर्ग की तुच्छ प्रवृत्तियो [petty bourgoise mentality] से था जिससे धन का असंतुलित वितरण एवं शोषण पैदा होता है। इसलिए इस दूषित प्रवृत्ति को दबा कर नष्ट करने के लिए राज्य का निर्देशन और संचालन, उत्पादन वृद्धि के लिए पूँजीवादी प्रेरक तथा प्रबन्ध, नवीन आर्थिक नीति का आधार बना।

इन दो बातो के अतिरिक्त राजकीय पूँजीवाद को अपनाने का एक और कारण था। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सामाजिक विकास की प्राकृतिक शृङ्खला मे लेनिन को थोडा-सा परिवर्तन करना पडा। आरम्भिक व्यवस्था–सामन्तवाद–पूँजीवाद–समाजवाद–साम्य-वाद के क्रम मे देखा गया कि पूँजीवाद के आरम्भ के रूप [early capitalism][1] से समाजवाद तक पहुँचने का कोई सीधा मार्ग नहीं है। मामूली तौर पर पूँजीवाद उदय के काफी बाद इतना पुष्ट [mature] होता है कि समाजवाद के लिए परिस्थिति तैयार हो। यह काम राजकीय पूँजीवाद के द्वारा सबसे अच्छी तरह हो सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि पूँजीवाद की दोनो हालतो से देश को गुजरना पडेगा—निजी पूँजीवाद [private capitalism] और राजकीय पूँजीवाद [state capitalism]। निजी पूँजीवाद से राजकीय पूँजीवाद उत्पन्न होगा : राजकीय पूँजीवाद से समाजवाद। नवीन आर्थिक नीति ने यह काम पूरा किया।

---

[1] 1921 तक रूसी पूँजीवाद अपने आरम्भ काल में ही माना जाता है।

अध्याय ६

सोवियत राज्य की सैद्धान्तिक रूपरेखा

[Doctrinal Outline of Soviet State]

सोवियत राज्य की सैद्धान्तिक रूपरेखा

रूस एक विशाल विरोधाभास है। रूसी इतिहास विविध प्रभावों का संकलन होने पर सदा अपनी विचित्र मौलिकता और एक-रूपता बनाये रहा। रूसी जनता भावुकता और क्रूरता, कोमलता और कठोरता, अपार साम्यवादी सहनशक्ति और अनिश्चित अधीरता, बलिष्ट, साहसी, कर्मठ पुरुषार्थ के साथ लक्ष्य प्राप्ति के लिये उचित-अनुचित का विश्लेषण करने में सदा असमर्थ रही। रूसी बौद्धिक विचारधारा मौलिकता के स्थान पर उत्कृष्ट अनुसरण, सरलता के प्रारूप में भयंकर जटिलता का सिद्ध प्रमाण है। असतुष्टि, अभिलाषा और परिवर्तन का चिर प्रयत्न इनके प्रयासों का प्रेरक रहा है।

रूसी सिद्धान्तवाद सदियों से अपने निजी केन्द्र को सुरक्षित बनाये हुए अँग्रेजी, फ्रान्सीसी और जर्मन विचारधाराओं के प्रभाव ग्रहण करता रहा। इनमें से सबसे प्रबल और स्थायी प्रभाव वाली छाप जर्मन-ज्यू वंश के एक विचारक कार्ल हेनरिक मार्क्स की थी। चार्ल्स डारविन और कार्ल मार्क्स वह अद्भुत विभूतियाँ हो गई हैं जिन्होंने सारे ससार की विचारधारा अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इनके बाद के विद्वानों का मानों यह पावन कर्तव्य-सा हो गया था कि वे इनका खंडन अथवा मंडन करें। बर्लिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर होने की अभिलाषा लेकर नवयुवक मार्क्स ने दर्शनशास्त्र में डाक्टरेट प्राप्त किया। निराश होने पर पत्रकार के रूप में अपने विचारों के कारण देशनिष्कासन से त्रसित अंत में लंदन आकर बस गया। बृटिश म्यूजियम के विशाल पुस्तकालय का पुजारी बन कर मार्क्स ने संसार को नया मार्ग दिखलाया। इनके आर्थिक-पोषक और बौद्धिक सहायक फ्रेडरिक एंजिल्स को कार्ल मार्क्स को संसार के भविष्य-द्रष्टा की तरह सामने लाने का श्रेय देना चाहिये। प्रखर बुद्धि, गहन अध्ययन और अद्वितीय विवेचना-शक्ति से उत्पन्न मार्क्स-साहित्य इतना विशाल है कि उसे मानवीय प्रयत्न समझना कठिन हो जाता है। 1848 में मार्क्स और एंजिल्स ने मिलकर प्रसिद्ध साम्यवादी घोषणापत्र [Communist Manifesto] तैयार किया। साम्यवाद की इतनी स्पष्ट संक्षिप्त और उत्तेजनापूर्ण अभिव्यक्ति उसके बाद फिर कभी न हो सकी।

मार्क्स का महान पर्वतीय ग्रन्थ "पूँजी" [Capital] का प्रथम खड 1867 मे प्रकाशित हुआ। दूसरा और तीसरा खड मार्क्स की मृत्यु के बाद एजिल्स के सपादन मे प्रकाशित किया गया।

मार्क्स के अध्ययन का दो भाग किया जा सकता है। प्रथम समकालीन आर्थिक व्यवस्था [पूँजीवाद] का वैज्ञानिक विश्लेषण और इसके आधार पर नये आर्थिक सिद्धातो का निर्माण, द्वितीय इतिहास की प्रगति की नई दृष्टिकोण से विवेचना। यूँ तो मार्क्स के पहले अँग्रेज और फ्रासीसी विचारको ने पूँजीवाद और सामाजिक शोषण पर काफी काम किया था। इसमे से विशेष उल्लेखनीय रावर्ट ओवेन सेन्त-साइमन [1760-1825] फारियर [1772-1835] प्राउधन [1809-1865] और लूई ब्लैक [1811-1882] थे। यह माना जाता है कि समाजवाद शब्द का निर्माण भी एक फ्रासीसी पत्रकार पियरे लेराऊ ने 1832 मे किया। इन विचारको और मार्क्स के बीच कई मुख्य भिन्नताये है। मार्क्स निश्चित रूप से सामाजिक परिवर्तन के क्रान्तिकारी मार्ग को ही अपनाता था जब कि उसके पहले के विद्वान शान्तिपूर्ण तरीको से ही समाज को बदलने पर जोर देते थे। मार्क्स ने समाज के केवल एक वर्ग को ही आवश्यक माना और उसी के द्वारा तथा उसी के लिये नये सामाजिक निर्माण पर ध्यान दिया। अन्य व्यक्ति सभी सामाजिक वर्गों के संतुलित विकास और सहयोग की शिक्षा देते थे। सबसे बडी भिन्नता उस मार्ग मे थी जिसके द्वारा मार्क्स निर्णयो पर पहुँचा। उसके पहले के लोग भावनाओ और आदर्श को लेकर नये समाज की कल्पना करते थे। उनके विचार कोरे तर्क के लिये तो ठीक थे किन्तु उनमे वास्तविकता की पुष्टि नही थी। उसी से इनके विचारो से आदर्शवादी साम्यवाद [Utopian Socialism] की सज्ञा गयी। उनके एकदम विपरीत, मार्क्स ने वैज्ञानिक साम्यवाद [Scientific Socialism] को जन्म दिया जिसमें सामाजिक विकास का तथ्यो पर आधारित अध्ययन किया गया था। इसका उद्देश्य तुरन्त ही विश्वव्यापी रूप में लागू करना था। इसी कारण "दुनिया के मजदूर एक हो" [Workers of the world, Unite] का नारा आज भी अरबो व्यक्तियो को प्रेरणा दे रहा है।

मार्क्सवाद के दो विभाग है। अपने सरलतम रूप मे इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। मार्क्स इतिहासकार और अर्थशास्त्री दोनो था। इतिहासकार की तरह इसने संसार के इतिहास को एकमात्र आर्थिक प्रेरणा के दृष्टिकोण से देखा और लगभग अकाट्य रूप से सिद्ध कर दिया कि आर्थिक और सासारिक [Economic and material] प्रेरणा द्वारा ही व्यक्तियो और राष्ट्रो का जीवन तथा कार्यक्रम संचालित होता है। व्यक्ति और राष्ट्र के प्रत्येक कार्यक्रम की आर्थिक पृष्ठभूमि को मार्क्स ने अकेली मान्यता प्रदान की। राजनैतिक सिद्धात और धर्म इत्यादि को "सैद्धांतिक

वाह्य रूप" [Ideological superstructures] कहकर मार्क्स ने टाल दिया। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह निकला कि पूँजीवाद का पतन अवश्यभावी है इसके अन्दर ही विनाश के बीज बनते हैं। अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, एकाधिकार, मजदूरों की गरीबी, बढ़ता हुआ मूल्य और गिरती हुई क्रयशक्ति, मंदी और तेजी का व्यापार चक्र इत्यादि बुनियादी कमजोरियों के कारण, समय के साथ, केवल दो वर्गों मे समाज बँट जायगा—विशाल एकाधिकारो के स्वामी चन्द पूँजीपति और गरीब, शोषित तथा बेकार मजदूरों का विशाल समुदाय। यही मजदूर अपनी संख्या और बल से एक दिन पूँजी-वादी ढाँचे को विध्वंस कर देगे। कहा जाता है कि पूँजीवाद ने अतुलनीय सफलता से वस्तु उत्पादन किया किन्तु साथ ही साथ ऐसी शक्ति [मजदूर] को बनाया जो एक बार पूरी तरह जागने पर अपने बनाने वालों को ही नष्ट कर देगी।

अर्थशास्त्री मार्क्स ने पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था को शोषण-व्यवस्था सिद्ध कर दिया। उसके अनुसार पूँजी मजदूरों के अधिकारों के अपहरण से इकट्ठा की गयी धन-शक्ति का नाम है। अतिरिक्त श्रम मूल्य [Surplus labour value] के सिद्धात से मार्क्स ने इस बात को समझाया। इसके अनुसार पूँजीपति मजदूरों से मशीन और औद्योगिक संगठन द्वारा काम करा कर उत्पादन कराते है। यह उत्पादन मजदूरों की अपनी आवश्यकता से अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, इसका एक अंश ही मजदूरों को अपने जीवन निर्वाह के लिये दिया जाता है। बचे हुए अंश पर पूँजीपति अनधिकार रूप से अपना कब्जा कर लेते हैं। एकत्र होकर यही अंश पूँजी कहलाता है। मार्क्स के विवेचना मे मजदूरों के उत्पादन का कोई भी भाग [लाभ वा ब्याज] केवल शोषण है। मजदूरों को यह अधिकार है कि वे सगठित होकर इस शोषण का विरोध करें। विरोध कितना ही प्रबल क्यो न हो पूँजीपति अंत में बिना युद्ध के कभी हार नही मानेगे। इसलिये मार्क्स ने युद्ध और हिसात्मक क्रान्ति को आवश्यक पाया। उसने इस बात में कभी विश्वास नही किया कि पूँजीवाद का क्रमिक विकास समाजवाद में हो सकता है [growth of capitalism into socialism]। इतना ही नहीं, उसने तो यहाँ तक कहा कि इस क्रान्ति की स्थिति तक आने के लिये, मजदूरों में इतनी जागृति पैदा करने के लिये, बहुसंख्यक मजदूर वर्ग का निर्माण करने के लिये, पूँजीवाद और पूँजीवादी शोषण आवश्यक है। मार्क्स ने सामतवाद–पूँजीवाद–साम्राज्यवाद–साम्यवाद की ऐतिहासिक श्रृंखला को देखा और साम्यवाद तक पहुँचने के लिये सामाजिक क्रमिक विकास मे पूँजीवाद का स्वागत किया। साथ-ही-साथ यह भी कहा कि मजदूर नेताओं का कर्त्तव्य है कि वे हर प्रकार से समाज को वर्गों में विभाजित होने में सहायता दें क्योंकि वर्ग संघर्ष [Class struggle] बिना साम्यवाद नही आ सकता। इसमें कुछ और महत्वपूर्ण बाते हैं। यह वर्ग विभाजन देश के आधार पर ही नही वरन् विश्व के

आधार पर होना चाहिये। बिना विश्वव्यापी साम्यवाद की स्थापना हुए किसी एक देश में साम्यवाद का रहना कठिन है। चारो ओर के पूँजीवादी देश उसका गला घोंट देंगे। यह साम्यवाद अधिकतम उन्नत पूँजीवादी देश मे ही सबसे पहले आयेगा क्योकि उसी जगह वर्ग विभाजन [Class Division] और वर्ग संघर्ष [Class struggle] सबसे ज्यादा होगा। अत मे मार्क्स औद्योगिक मजदूरो से ही सफल साम्यवादी क्रान्ति की आशा करता था। उसके विचार में शोषण की कमी, सगठन की कठिनाई और जागृति के अभाव के कारण बिखरे हुए किसान अच्छा साम्यवादी मसाला नही हो सकते।

मार्क्सवाद के अध्ययन करते समय एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये, मार्क्स ने समाजवादी संगठन की निश्चित रूप-रेखा तथा परिभाषाएँ नहीं दिया। जो लोग मार्क्स के विचारो को समाजवाद पर अन्तिम शब्द मान लेते है उनका दृष्टिकोण संयत नही बनता। इसका कारण यह है कि मार्क्स ने एक नये विषय पर अपने नए विचार सामने रखा था; इसलिये जो कुछ उसने कहा उसे परिभाषाओं की सीमा में बाँध लेना अनुचित होगा। विचारो का जो नया मार्ग मार्क्स ने दिखलाया उसका ऐतिहासिक एवं तर्कपूर्ण विकास समय के साथ लगातार होते रहना चाहिये। मार्क्स के विशाल ग्रथ 'पूँजी' में हमें परिभाषाएँ नहीं मिलतीं : उसमे वास्तविकता की अत्यन्त गहन विवेचना है। इसी से प्रेरित होकर मार्क्सवाद के स्थापको ने बार-बार कहा कि वे भविष्य में आने वाले साम्यवादी सामाजिक सगठन की निश्चित रूप-रेखा नहीं दे सकते। उनके अनुसार ऐसे समाज का सगठन और साम्यवादी क्रान्ति का क्रम विभिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग होगा।

मार्क्स के अनुसार मजदूर वर्ग को पूँजीवाद के विरुद्ध सफल शिक्षा देने का काम उनकी एक स्वतत्र राजनैतिक पार्टी ही कर सकती है। बाद में लेनिन ने पार्टी के महत्व के सिद्धान्त को एकदम शिखर पर पहुँचा दिया। जनता के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में पार्टी को समाज के हर अग के सचालन का पूर्ण दायित्व सौपा गया। व्यक्ति तथा विचार पार्टी के आगे प्रभावहीन हो गये। पार्टी द्वारा संगठित राज्य [State] का मुख्य काम 'शोषको का शोषण' [Expropriation of the Expropriators] निर्धारित किया गया। यह करने का उपाय उत्पादन के साधनो को समाज की सम्पत्ति मे बदलना था।

इस प्रकार समाजवाद सामाजिक सगठन का एक सिद्धान्त है जिसमे, मार्क्स के अनुसार, उत्पादन के साधन का सामाजिक स्वामित्व हो [Social ownership of the means of production]; मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण बन्द हो गया हो, और उत्पादन की अव्यवस्था [Anarchy of production] के स्थान पर सम्पूर्ण

समाज का संयोजित संगठन [planned organisation] किया गया हो। इन सबका उद्देश्य उत्पादन शक्ति मे तेज वृद्धि तथा मनुष्य का संतुलित विकास होना चाहिये। इस प्रकार मार्क्स का समाजवादी समाज स्वतन्त्र व्यक्तियो का एक संघ है जहाँ सभी लोग साम्प्रदायिक उत्पादन के साधनो से काम करते है, और अपनी व्यक्तिगत श्रमशक्ति को एक योजना के अनुसार काम मे लाते है। स्वतन्त्र व्यक्तियो के इस संघ की श्रम शक्ति का सारा उत्पादन समाज का माना जाता है। इस प्रकार लोगो का काम [Work] और उत्पादन [Produce] के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। इससे उत्पादन तथा वितरण [Production and Distribution] की समस्या को सुलझाने मे भी मदद मिलती है। मार्क्स समाजवाद [Socialism] को साम्यवाद [Communism] का पहला और सबसे नीचा चरण [Phase] मानता था। इसका मुख्य काम उत्पादन शक्ति को बढाना और साम्यवाद की स्थापना के लिये नीव तैयार करना माना गया है।

मार्क्स के सिद्धात अथवा मार्क्सवाद की संसारव्यापी पसंद और प्रचलन के कुछ कारणो पर विचार करना असगत न होगा। इसका सबसे बडा आकर्षण शोषित मजदूरो के पुनरुद्धार मे लगभग धार्मिक विश्वास था। उस समय पूँजीवाद के विकास का आरम्भ काल [पूँजीवाद का शोषण] चल रहा था। मजदूर उत्पादन की वस्तु माने जाते थे। उनमे मानवता के चिन्ह देखना 'समाज द्रोही' बनना था। वेतन के नाम पर उन्हे जीवित रहने से अधिक धन देना उन्हें बिगाडने का प्रयत्न माना जाता था। आत्म-सम्मान और अपने महत्व से पूर्णतया अनभिज्ञ इन मजदूरो को मार्क्सवाद ने भूमि से उठाकर एकदम शिखर पर पहुँचा दिया। उन्हे समाज का एक मात्र आवश्यक वर्ग घोषित करके संपूर्ण उत्पादन का अकेला कर्त्ता बना दिया। उनको बतलाया कि पूँजीपति बिना भी समाज चल सकता है। पूँजीपतियो ने जो अधिकार प्राप्त कर रखे है वह वास्त-विकता मे मजदूरो के होने चाहिये। यह शिक्षा शायद इतनी सफल न होती अगर मार्क्स उचित-अनुचित, नैतिकता और आदर्शवाद का सहारा लेकर उसे सामने रखता। लेकिन मार्क्स ने तो कहा कि पूँजीवाद का पतन, मजदूरो का उत्थान और इसके लिये वर्ग संघर्ष वैज्ञानिक सत्य है, जिसको इतिहास अनिवार्य मानकर सिद्ध करता है। कठोर सत्य और स्पष्ट तथ्यो पर आधारित यह विचारधारा सभी को बहुत उचित और अनु-सरण-योग्य मालूम पडी। इसी कारण से आज दिन संसार के एक-तिहाई मनुष्य इसी व्यवस्था में रह रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पूँजीवाद का विकास मार्क्स के निर्देशित मार्ग पर नहीं हुआ जिससे उसकी शिक्षाओं में अनेको अपवाद उत्पन्न हो गये। उसकी आशाओ के बिपरीत पूँजीवाद ने शोषण की वृद्धि पर स्वयं रुकावट लगाकर वर्ग संघर्ष को क्रान्ति के

स्तर तक नहीं पहुँचने दिया। राजकीय हस्तक्षेप, एकाधिकार पर नियंत्रण, वेतन, सामाजिक सुरक्षा इत्यादि को नियमबद्ध करके पूँजीवाद ने साम्यवाद के मूलाधार को ही तोड़ने का प्रयत्न किया। पूँजीवाद का यह प्रयत्न कहाँ तक सफल और स्थायी होगा, इस पर संदेह करने वालो की संख्या बढती जा रही है।

रूस में मार्क्सवाद का आगमन—1917 की सफल साम्यवादी क्रान्ति अचानक जरूर हुई किन्तु उसका बीज लगभग 100 साल पहले बोया जा चुका था। बोल्शेविकवाद के अचानक सत्तारूढ होने से सबसे अधिक आश्चर्य स्वय बोल्शेविक नेताओ को हुआ। राष्ट्र के इस समूल परिवर्तन का सबसे पहला श्रेय नेपोलियन के युद्ध से लौटे हुए सैनिको को दिया जाना चाहिये जो पश्चिमी यूरोप के संपर्क से प्रजातंत्रात्मक विचारधाराएँ अपने साथ लाये। सीमित परिधि मे बद रूसी मस्तिष्क को इन्होने नया जीवन दिया।[1] 1855-1870 के बीच शून्यवादी धाराएँ [Nihilist Tendencies] उत्पन्न हुई। उन व्यक्तियो का वर्तमान सिद्धात धर्म और सस्थाएँ को नष्ट करना था क्योकि यह मानते थे कि पूर्ण विनाश से ही पुनर्जन्म होता है। छोटी-छोटी संस्थाओ और होटलो में गरम बहस के अतिरिक्त यह कर्म-क्षेत्र मे नही उतरे। धीरे-धीरे इस वर्ग के व्यक्ति शिक्षा द्वारा अपने को उन्नत बनाने पश्चिमी यूरोप के देशों में गये। इन पर उस समय के प्रबल प्रभावशाली दार्शनिक विचारको जैसे हारजेन, बकुइनीन और मार्क्सवादी पीटर लावरोव ने गहरी छाप डाली। वापस आने पर नये आदर्शवाद से उत्तेजित इन व्यक्तियो ने किसानो में घुलमिल कर उनके विचारो को सुधारना और उन्हे संगठित करना आरम्भ किया। जार के विचार से यह एक भयकर काम था। देशव्यापी खोज से इन नवयुवको को पकड कर दबा दिया गया। वैधानिक रूप से शिक्षा द्वारा उन्नति करने की मनाही होने पर इस आंदोलन ने क्रातिकारी रूप पकड़ा और आतंकवाद का सहारा लिया। गुप्त रूप से चलता हुआ यह कार्यक्रम मार्च 1881 मे जार की हत्या से अंत हुआ। पुलिस के भीषण दमन-चक्र और वैधानिक रुकावटो ने जनता के आंदोलन को मृतप्राय बना दिया। इस समय तक के क्रातिकारी आदोलन की विशेषता यह रही कि उनका कोई आर्थिक या राजनैतिक कार्यक्रम नही था। समस्त बुराइयो का प्रतीक उनके दृष्टि मे केवल जार था। दूसरे, इस समय तक रूसी विचारको का ध्यान पूरी तरह किसानो की ओर केन्द्रित था। अतः 1880 तक का क्रातिकारी आदोलन वस्तुतः ग्रामीण ही रहा। 1870 के तेज औद्योगीकरण का इस पर कोई प्रभाव नही पडा।

इसी समय के विद्वानो ने कार्ल मार्क्स का परिचय रूसियो से कराया। फिर भी मजदूरवाद को रूसी समाज और राज्य के लिये खतरनाक समझा जाता था। रूसी

1 N. Berdyayev. Origin of Russian Communism. London. 1937. p 113.

भाषा में 'पूँजी' का अनुवाद 1872 में हुआ। कितने आश्चर्य की बात है कि इस पुस्तक के प्रकाशन की अनुमति इसलिये मिल गई कि जार सरकार ने इसे अत्यन्त अरुचिकर एवं पढ़ने मे असम्भव पाया। उनके विचार से इस तरह की शुष्क पुस्तक हानिकारक नहीं हो सकती।[1] इसके पहले 1860 मे साम्यवादी घोषणा-पत्र [Communist Manifesto] का अनुवाद रूसियो को काफी प्रभावित कर चुका था। समकालीन लेखको के अनुसार 1880-90 के बीच मार्क्स रचित 'पूँजी' रूसी विद्यार्थियो मे सबसे अधिक पढ़ी जाती थी।[2] इन्हीं सब का प्रभाव था कि सामाजिक दोषो का उत्तरदायित्व, केवल जार पर न रखकर पूँजी तथा पूँजीपति पर भी रक्खा जाने लगा।

उस समय का प्रमुख सैद्धातिक तथा विचारक बी० जी० प्लेखानोव था। इस महान् व्यक्ति ने केवल मार्क्सवाद का ही घोर अध्ययन नहीं किया, परन्तु मार्क्सवाद को रूसी परिस्थितियो मे लागू करने का प्रयत्न किया। इनके विचार से साम्यवाद के आगमन के लिये पूँजीवाद का विकास मजदूरो के हित मे है।[3] 1895 में प्लेखानोव की प्रेरणा पर लेनिन ने सेन्ट पीटर्सबर्ग मे एक संस्था [Society for the Liberation of Labour] स्थापित की। 1898 मे विभिन्न वर्ग के मार्क्सवादियो ने मिलकर रूसी सामाजिक प्रजातन्त्रात्मक मजदूर दल [Russian Social Democratic Labour Party] बनाया। यही पार्टी आगे चलकर मार्क्सवादी क्रातिकारियो की जन्मदाता बनी।[4] दल के अनुशासन और सचालन के प्रश्न को लेकर 1903 मे दल का विभाजन हो गया। मेनशेविक अर्थात् अल्पसंख्यक और बोल्शेविक अर्थात् बहु-संख्यक। मेनशेविक नेताओ मे प्रमुख प्लेखानोव और ट्राट्स्की थे और बोल्शेविक मे लेनिन। इन दोनो भागो में समय के साथ विचारों का अन्तर बढ़ता गया। मेन्शेविक नेताओ का विचार था कि क्राति के बाद रूस में वैधानिक संविधान सभा द्वारा शासन हो जिसमे देश के प्रत्येक राजनैतिक दल का प्रतिनिधित्व होना चाहिये। इसके विरुद्ध लेनिन के विचार से राजनैतिक क्राति के बाद पूँजीवादियो से रक्षा करने के लिये यह आवश्यक है कि देश मे क्रातिकारी सरकार बने जिसका नेतृत्व समाजवादी दल के हाथ में केन्द्रित हो।

1901 मे अन्य क्रातिकारियो ने एक नये दल का निर्माण किया जिसे सामाजिक क्रातिकारी दल [Social Revolutionary Party] कहते है। इसका उद्देश्य था कि

1 F L Shuman · Russia Since 1917. p.)

2 Sir John Maynard Russia in Flux; pp. 118-128

3 Berdyayev The Origin of Russian Communism. Trans London 1937, p 111-112

4. B D Wolfe Three Who Made a Revolution, pp 99-117

जार को हटाने और किसानो के विप्लव का समय आ गया। इस काम के लिये खुले-आम हिंसा करने का उनमे कोई विरोध न था।

1905 की क्रांति—1904 के रूसी-जापानी युद्ध की हार, युद्ध का विशाल खर्च, किसानों की बिगडती हुई परिस्थिति और जार निकोलस द्वितीय के निजी कमजोरी के कारण विस्तृत हडताले हुई और गृहमंत्री की हत्या कर दी गई। सामाजिक साहस और कूटनीति से काम लेने की जगह जार का मन डर से कॉप उठा। परिस्थिति के बिना समझे सुधार की बातचीत और सुधार की मॉग करने वालो पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। रविवार जनवरी 9, 1905 को, शून्य से 30 अंश कम तापमान की भीषण सर्दी मे, धर्मगुरु गेपान के नेतृत्व मे कई हजार मजदूरो की एक भीड़ अत्यन्त शातिपूर्ण तरीके से जार के शीत-महल [Winter Palace] पहुँची। उनके मॉग पत्र मे जनता की स्थिति मे सुधार, अफसरवाद के विरुद्ध शिकायत और शासन मे जनता के प्रतिनिधित्व की मॉग अत्यन्त श्रद्धा और नम्रता से की गयी थी। जार उनसे मिलने नही आया। पुलिस उस समय तक गोली चलाती रही जब तक कि लगभग डेढ़ हजार निहत्थे पुरुष, स्त्री और बच्चों की आहुति देकर भीड चली न गई। क्राति की जो लहर यहॉ पैदा हुई वह सारे देश मे फैल गई। अगस्त 1905 मे कुछ वैधानिक सुविधाएँ दी गई और ड्यूमा अर्थात् प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। यह केवल जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड मात्र था। 1906-1917 के बीच अनेको बार ड्यूमा का चुनाव हुआ और प्राय: हर बार जार ने उसे भग कर दिया। इतना ही नहीं, ड्यूमा जार के विरोधियो का पता लगाने का साधन बना ली गई। जनता का बढ़ता हुआ आरोप और असन्तोष इतना अधिक हो चुका था कि 27 फरवरी 1917 को सेन्टपीटर्सबर्ग के मजदूरो की हडताल ने सारे देश को क्राति की आग मे झोंक दिया। 1905 तथा 1917 की क्राति के नेता वास्तव में प्लेखानोव द्वारा सचालित मेन्शविक विचारो के ही अनुयायी रहे। किन्तु एकदम ठीक समय पर सामने आकर, लेनिन की दूरदर्शिता अवसरवादिता, रणकुशलता और बुद्धिबल से बोल्शेविक दल ने, बहुत थोड़ी सख्या होने पर भी, सभी को हटा कर क्राति का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। दूसरों की भूलो को लेनिन की तीव्र दृष्टि ने देखा और तुरन्त नीति मे सशोधन करके लोकप्रियता प्राप्त कर लिया।

लेनिनवाद अथवा बोल्शेविकवाद

लेनिनवाद मार्क्सवाद के क्रमिक विकास में सबसे नई कडी है। चूँकि लेनिन बोल्शेविक पार्टी का नेता था इसलिये उसके द्वारा प्रतिपादित विचारधारा को बोल्शेविकवाद भी कहते है। रूसी आर्थिक विचारक्रम की परम्परा मे यह अत्यन्त स्वाभाविक रूप

से मिल जाती है। क्रान्ति के पहले लगभग १०० वर्ष से लेनिनवाद तक पहुँचने की तैयारी हो रही थी। मार्क्स के सिद्धान्तों को इसी रूप मे व्यवहारिकता प्राप्त हुई। मार्क्स शुद्ध सिद्धान्तवादी थां; लेनिन भी उतना ही महान् सिद्धान्तवादी होने के साथ-साथ क्रियाशील यथार्थवादी भी था। मार्क्स ने जो कुछ शब्दो मे कहा, लेनिन ने उसे कार्यों मे बदल दिया। वस्तुतः मार्क्सवाद दर्शन [Philosophy] है, और लेनिनवाद रूस के शासन मे प्रयोग किया गया मार्क्सवाद है। बोल्शेविक पार्टी के नेताओ को रूसी स्वभाव और मनोविज्ञान का अपार ज्ञान था जिसके साथ रूसी परम्परा से समन्वय रखते हुए लेनिन के नेतृत्व मे उन्होने मार्क्स के सिद्धान्तो को नई आकृति प्रदान किया। लेनिन, मार्क्स और एन्जिल्स के शिक्षाओं पर क्रियात्मक विश्वास [Creative belief] करता था किन्तु उनको अकाट्य अथवा अपरिवर्तनीय नहीं मानता था।

आरम्भ से ही रूसी जनता राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रो को छोडकर केवल सामाजिक दृष्टिकोण पर ही जोर देती थी। सम्पूर्ण इतिहास मे रूसी बुद्धिवादी, न्यायपूर्ण और सुन्दर सामाजिक व्यवस्था की खोज मे लगे रहे। परिणाम यह हुआ कि उनका आदर्श सामुदायिक सामाजिक जाग्रति[1] [Collective Social Co sciousness] और परिश्रम बन गया। इसकी अभिव्यक्ति क्रान्ति के पहले के मीर और आरटेल के रूप में हुई। इसी कारण लेनिन के सोवियत सघ मे व्यक्तिगत राजनैतिक स्वतन्त्रता मे रुचि न रही और वैयक्तिक आर्थिक स्वतन्त्रता को कोई स्थान नही मिला।[2] लेनिन ने अपने कार्यक्रम के प्रति जनता का अदम्य उत्साह प्रात करने के लिये, लेनिनवाद को धर्मप्रचारक की एकनिष्ठा और जोश की प्रवृति [Messianic Complex] प्रदान किया। प्रभाव यह था कि प्रत्येक अनुयायी अपने को इतिहास द्वारा नियुक्त साम्यवाद का सेवक और प्रचारक समझता है। इसके सिद्धान्तो को लागू करना उसका पवित्र धार्मिक कर्तव्य बन गया।

लेनिनवाद ने पुराने रूसी समाजवादियो का अपार कृषक प्रेम और शुद्ध मार्क्सवादियो का औद्योगिक श्रम से लगाव दोनो ही नही है। इसकी जगह पर सोवियत संघ को एकता के सूत्र मे बाँधने के लिये हँसिया और हथोडा को सम्मिलित रूप से प्रतीक बनाया गया। इस प्रकार लेनिनवाद ने समस्त श्रमिक-वर्ग का अनुसरण प्रात किया चाहे वह खेतो मे काम करता हो या कारखानो मे। रूस कभी भी धीमे क्रमिक विकास के आदर्श मे अपनी आस्था नहीं बना सका। लेनिन ने इस प्रवृत्ति से फायदा उठाकर, उस समय के यांत्रिक विकास को देखते हुए अचानक इतिहास की रेखाओ को बदलने

---

1. सोबोरनास्त [Sabornost] का अनुवाद नहीं हो सकता।
2. N. Berdyayev. Op. Cit pp 180-185

की नीति अपनाई। अत्यन्त पिछले हुए देश को, बिना पूँजीवादी शोषण से गुजारे हुए, एकदम समाजवाद पर लादने की सम्भावना स्वीकार किया। सामाजिक परिवर्त्तन के लिये षड्यन्त्रकारी और हिंसात्मक परम्परा को बोल्शेविक दल ने भी अपनाया। वर्त्तमान रूस की गुप्त पुलिस और विरोधियों के रक्तदान की विभीषिका को जनता द्वारा मूक सहमति प्राप्त होने का यही रहस्य है। औद्योगीकरण और सामुदायिक खेती लेनिनवाद की बुनियाद थी। महान् पीटर के समय से यह विचार जड़ पकड़ चुका था कि आर्थिक और यान्त्रिक शक्ति द्वारा ही रूस की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा हो सकती है। इस प्राचीन इच्छा को अपनी नीति मान कर देश का पुनर्निर्माण करने में अधिकतर जनता लेनिन के साथ थी।

लेनिन के अनुसार क्रान्ति द्वारा ही समाजवाद की स्थापना सम्भव है। एक दल के निर्देशन में मजदूरों की तानाशाही साम्यवाद तक पहुँचने का एकमात्र सही तरीका है। बोल्शेविकवाद राज्य को दमन का यन्त्र मानता है[1]। पूँजीवादी और समाजवादी राज्य में केवल इतना अन्तर है कि पहले में राज्य का काम मजदूरों को दबाना है और, दूसरे में, पूँजीवादियों और पूँजीवादी प्रवृत्तियों को दबाना है। किन्तु यह अवस्था शुद्ध साम्यवाद की प्राप्ति का मध्य-स्तर होगा। उत्पादन के साधनों का समाजीकरण और लोगों में बल प्रयोग से काम करने के लिये लाचार करना भी आवश्यक हो सकता है। अनिश्चित काल बाद एक वर्गहीन समाज बन सकेगा। हर प्रकार का धन समाज का होगा। लोग धन की लालच या सजा के डर से काम न करके, आत्म अभिव्यक्ति [Self expression] के लिये उत्पादन करेंगे। समाज में बल प्रयोग की आवश्यकता न रहेगी जिससे राज्य अपने आप विलीन हो जायगा। इस स्थान पर यह कहना आवश्यक है कि जिस प्रकार सोवियत संघ में वर्गहीन समाज की स्थापना का कार्य हो रहा है उससे यही मालूम पड़ता है कि कल्पित वर्गहीन समाज की जगह रूस एकवर्ग के समाज की ओर अग्रसित है।

स्तालिनवाद

लेनिन के शिष्य और उत्तराधिकारी स्तालिन का नाम जोसेफ विसारियोनोविच जुगाश्वीली [Josef Vissarionovich Dzhugashvili] था। इसका जन्म 1879 में हुआ। इनके पिता एक मोची और माता किसान महिला थी। यह रूस का पहला शासक था जो श्रमिक वर्ग में पैदा होकर ऊपर उठा था। रूस के बाहर की दुनिया से दूर, स्वाध्याय से शिक्षित अटूट मानवीय इच्छा शक्ति का प्रतीक स्तालिन था। अपार एकाग्रशक्ति, क्रूरता, चालाकी, अमानवीय धैर्य्य और स्थिरता के कारण ही उसे रूस का

---

1. State is a means of suppression.

लौह-पुरुष कहा जाता है। लगभग तीस साल के शासन में स्तालिन ने रूस को शक्ति के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया।

स्तालिन का सिद्धान्त बोल्शेविक सिद्धान्त लेनिनवाद का थोड़ा-सा परिवर्तित रूप था। मार्क्स और लेनिन के अंतर्राष्ट्रीय वर्ग संघर्ष को प्रबल राष्ट्रीयता में बदलकर स्तालिन ने प्रेरणात्मक वास्तविकता उत्पन्न किया। पूँजीवादियों से घिरे किसी एक देश में समाज-वाद की स्थापना असम्भव है; जिस देश में साम्यवाद स्थापित हो उसका यह कर्त्तव्य है कि दूसरे देशों में साम्यवादी क्रान्ति कराये; मार्क्स और लेनिन के इन विचारों को एकदम उलटकर स्तालिन ने कहा कि संसार के अन्य देशों के क्रान्तिकारी दलों का यह कर्त्तव्य है कि समाजवादी रूसी सरकार को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाँये जिससे उनको प्रेरणा और व्यवहारिक दृष्टान्त प्राप्त हो।

स्टालिन ने• पूँजीवादी देशों के आक्रमण का भयकर भय जनता में पैदा किया। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये दो उपाय बतलाये, औद्योगीकरण तथा अस्त्रीकरण। स्तालिन के अनुसार पूर्ण साम्यवाद की स्थापना बहुत दूर है यद्यपि रूसी समाजवाद निरन्तर उस ओर बढ रहा है।

लेनिन के साथ ही साथ समाजवाद से उदारता [Liberalism] समाप्त हो गई। लेनिन की सहानुभूति तथा समन्वय की नीति को छोड़कर, स्तालिन ने कठोरता की नीति अपनाई। वर्ग-विहीन [Classless] समाज की जगह, स्तालिनवाद में एक वर्ग [one-class] के समाज को महत्व दिया गया। यह था श्रमिक वर्ग।

पूँजीवाद तथा समाजवाद—[Capitalism and Socialism]

समाजवाद के मुख्य विचारको [मार्क्स-एन्जिल्स, लेनिन, स्तालिन तथा अन्य व्यक्ति] के अनुसार पूँजीवाद के प्रायः सभी अंगों पर समाजवाद की श्रेष्ठता दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। इनके कुछ प्रमुख तर्क इस प्रकार हैं।

[1] मनुष्य के इतिहास में प्रथम बार समाजवाद ने ऐसी स्थिति पैदा की जिसमे समाज के पूर्ण आर्थिक साधन और श्रम शक्ति का प्रयोग सारे समाज के लिये करना सम्भव हुआ।

[2] चन्द लोगों के व्यक्तिगत लाभ की जगह समाज की आवश्यकता की पूर्ति उत्पादन का उद्देश्य बनाया गया।

[3] साम्यवादी घोषणापत्र के अनुसार पूँजीवाद में मानवीय श्रम पूँजी संग्रह करने का केवल एक साधन होता है लेकिन समाजवाद में संग्रहीत पूँजी मानवीय श्रम के उत्थान तथा आराम के लिये प्रयोग की जाती है।

[4] पूँजीवाद मे उत्पादन की अव्यवस्था [Anarchy of production]

के कारण साधन तथा श्रम का अपव्यय होता है। समाजवाद से अर्थ-व्यवस्था का संयोजित विकास [planned development] किया जाता है। इससे सामाजिक श्रम तथा साधनों का अधिकतम लाभ मिल सकता है।

[5] पूँजीवादी विकास मे सामयिक संकट [Crisis or depression] के कारण विकास का क्रम एक-सा नहीं चलता। समाजवाद में इस तरह की उथल-पुथल तथा सामाजिक हानि नहीं होती। यह कहा जा सकता है कि जिस तरह बिना सकट, अपव्यय तथा हानि के पूँजीवाद की कल्पना कठिन है उसी प्रकार समाजवाद की कल्पना योजना तथा समाज के प्रत्येक अंग के सतुलित विकास के बिना नहीं की जा सकती।

[6] श्रमिक उत्पादकता मे वृद्धि [Higher labour productivity] समाजवाद और पूँजीवाद दोनो के उत्पादन का उद्देश्य है। समाजवाद में इसके लिये समाज की उत्पादन शक्ति को बढ़ाया जाता है और कर्मचारियों के उत्साह को क्रियात्मक बढ़ावा दिया जाता है। पूँजीवाद निरर्थक प्रतिस्पर्द्धा [Meaningless Competition] द्वारा यह काम करने की चेष्टा करता है जिसमें अपार अपव्यय तथा सामाजिक लागत [Social Cost] आवश्यकता की एक ही वस्तु के उत्पादन मे लगती है।

[7] पूँजीवाद मे आर्थिक विकास उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन से आरम्भ होता है। उपभोग के उद्योगों के सहारे बुनियादी भारी उद्योग स्थापित किये जाते है। उत्पादन-शक्ति का आधार भारी उद्योग होते हैं। इनके विकास मे लापरवाही होने से देश के विकास मे बहुत अधिक समय लगता है। इसके विपरीत, समाजवाद मे उत्पादन के साधनों का उत्पादन (Production of the means of production] अर्थात् भारी उद्योग को सबसे ऊँचा महत्व दिया जाता है।

[8] दोनो ही सामाजिक व्यवस्थाओं में श्रमिकों के समय की बचत का आदर्श सामने रक्खा गया है। आवश्यक आर्थिक उत्पादन मे जितना कम समय लगेगा, उतना ही अधिक समय लोग मानसिक एव सामाजिक कामों में लगा सकेंगे। इसके लिये दोनों प्रकार के संगठन अधिक से अधिक यन्त्रीकरण तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध का सहारा लेते है। फिर भी एक बहुत बडा अन्तर पाया जाता है। पूँजीवाद में समाज के एक वर्ग को अवकाश [Leisure] देने के लिए तमाम श्रमजीवियो [Working masses] का सारा समय काम में लगाना पड़ता है, समाजवाद इस अन्याय को पनपने नही देता।

[9] मार्क्स तथा ऐन्जिल्स के अनुसार समाजवादी श्रम संगठन मे प्रत्येक व्यक्ति पर काम करने का उत्तरदायित्व रक्खा गया है। "जो काम नही करेगा वह खाना नही खायगा" का साम्यवादी सिद्धान्त सदा से संसार के श्रमजीवियों का सपना बनता आया

है क्योंकि इस व्यवस्था में शोषण का स्थान होता ही नही। इसके अतिरिक्त वितरण के संगठन मे [Organisation of distribution] इस सिद्धान्त के द्वारा लोगों की माँगे उनके श्रम के अनुसार निर्धारित की जा सकती हैं।

[10] जहाँ तक वेतन का सम्बन्ध है पूँजीवाद की तरह समाजवाद मे वेतन का निर्धारण मजदूरो की माँग और पूर्ति [Demand and supply] के अनुसार नही होता। समाजवाद मे सामाजिक आवश्यकताओ [Social needs] को पूरा करने के बाद राष्ट्रीय आय का बचा हुआ भाग वेतन के रूप मे मजदूरों को दिया जाता है। पूँजीवादी अर्थशास्त्रियो ने इसकी बड़ी आलोचना की है। उनका कहना है कि अगर समाजवाद मजदूरों को उत्पादन का पूरा भाग उन्हे नही देता तो मार्क्स के अनुसार यह शोषण हुआ। यह विचार युक्तिसंगत नहीं मालूम पड़ता। समाजवाद मे मजदूरो की सरकार अगर श्रम-उत्पादन [Labour produce] का एक अंश रोक लेती है तो यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मजदूरो की ही भलाई में व्यय होता है। पूँजीवाद में यह सम्भव नही है।

[11] व्यक्तिगत प्रेरक [Personal incentive] को पूँजीवाद और समाजवाद दोनो ही अच्छे तथा अधिक उत्पादन के लिए अनिवार्य मानते हैं। पूँजीवाद में इस काम के लिए केवल आर्थिक प्रलोभन का सहारा लिया जाता है। समाजवाद मे आर्थिक प्रलोभन के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक एव भावात्मक [Psychological and emotional] प्रेरकों को लगभग बराबर महत्व दिया जाता है।

[12] प्रतिस्पर्द्धा [Competition] पूँजीवाद का मूल मत्र है। इसके उत्पादन सगठन में विद्वेश, अपव्यय तथा असन्तुलन का विकराल रूप दिखलाई पड़ता है। समाजवाद में भी प्रतिस्पर्द्धा के द्वारा उत्पादन में चमत्कारी वृद्धि सम्भव हो सकी। किन्तु समाजवादी प्रतिस्पर्द्धा मे योजना के लक्ष्यो को पूरा करके उसके आगे बढ़ने की स्वास्थ्यप्रद प्रवृत्ति देखी जाती है।

समाजवाद और साम्यवाद [Socialism and Communism]

पूँजीवाद के अलावा जिस नई सामाजिक संगठन-प्रणाली की कल्पना मार्क्स तथा ऐन्जिल्स ने किया था उसके दो चरण [Phases] है—पहला, समाजवाद और दूसरा, साम्यवाद। इस प्रकार नए सामाजिक संगठन की ऐतिहासिक परिपक्वता [Maturity] के यह केवल दो स्तर है। इनके सिद्धान्त और रूपरेखा समान हैं। साम्यवाद के उच्चस्तर का पहला विवरण मार्क्स के "गोथा कार्यक्रम की विवेचना" [Critique of Gotha Programme] मे मिलता है। उसके अनुसार इस स्तर तक विकास होने पर एक ऐसा समाज तैयार होगा जिसमें कठोर श्रम विभाजन [Divi-

sion of Labour] की दासता से मनुष्य मुक्त हो जायगा; मानसिक तथा शारीरिक श्रम में कोई अन्तर न होगा, काम [work] केवल जीविका का साधन मात्र न रहकर, जीवन की प्रथम आवश्यकता बन जायगा, लोगो के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीय [all sided] विकास होगा; समाज की उत्पादन शक्तियाँ इतनी बढ़ेगी कि ऐश्वर्य एव सम्पत्ति की बाढ़-सी आ जायगी; उत्कृष्ट मानसिक विकास से हर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार काम तथा आवश्तकता के अनुसार साधन मिल सकेगा, तब कही जाकर ऐसी स्थिति पैदा होगी कि निःस्वार्थ त्याग, स्वशासन तथा कर्तव्यपरायणता के विकास के कारण राज्य की आवश्यकता ही समाप्त हो जायगी [state shall whither away] ।

साम्यवाद की उपरोक्त रूपरेखा को व्यवहारिक रूप देने में कितना समय लगेगा, इस पर साम्यवादी अर्थशास्त्रियो में मतभेद रहा है । स्तालिन की मृत्यु के पहले तक तो यही माना जाता था कि साम्यवाद तक पहुँचने में सोवियत रूस को अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करनी होगी । किन्तु उसके मृत्यु के बाद प्रधान मत्री निकिता खु्श्चेव ने कम्युनिष्ट पार्टी के बीसवे अधिवेशन मे घोषित किया कि देश साम्यवाद के स्तर तक पहुँचने के लिए तैयार है । उनकी प्रेरणा पर रूसी अर्थशास्त्रियो ने सोवियत समाज की साम्यवादी रूपरेखा पर विचार प्रकट करना शुरू किया । मार्क्स और लेनिन ने साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था का बहुत धुँधला-सा चित्र दिया है । इसलिए इस नए संगठन के पूरे विस्तार को तैयार करने की जिम्मेदारी आधुनिक अर्थशास्त्रियो पर ही पडी । लेनिन के अनुसार साम्यवाद के आरम्भ होने पर राज्य के शासन कार्य कम हो जायँगे क्योकि इनकी देख-रेख जनता स्वयं राष्ट्रीय आर्थिक परिषदो [National economic councils] तथा मजदूर संघो [Trade Unions] के रूप मे सम्भाल लेगी । इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध मे आधुनिक रूसी साहित्य में निम्नलिखित विशेष परिवर्तनो का इशारा मिलता है । इनके अध्ययन से रूस में आने वाले आर्थिक सगठन का अनुमान लगाया जा सकता है ।

[1] वर्तमान व्यवस्था में रूस मे दो प्रकार की सम्पत्ति पाई जाती है—राज्य सम्पत्ति तथा सामुदार्यिक फार्मों की सम्पत्ति । साम्यवाद में इनकी आपसी भिन्नता को मिटाकर केवल एक प्रकार की सम्पत्ति रहेगी—राज्य सम्पत्ति । इसका अर्थ यह हुआ कि सामुदायिक तथा सहकारी क्षेत्र नष्ट हो जायगा । अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत स्वामित्व का [Individual ownership] तथा वर्ग स्वामित्व [Group ownership] को उठा देने का निश्चय किया गया है ।

[2] सामुदायिक फार्म मे दो बड़े परिवर्तन होगे । अविभाजनीय कोष [Indivisible fund], जिसे सामुदायिक फार्म के सदस्यो ने अपनी बचत से बनाया था, अब राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जायगा । फार्म के सदस्यो को मिली हुई निजी जमीन [Personal Plots] उनसे ले ली जायगी ।

[3] इन परिवर्तनों के द्वारा धीरे-धीरे मजदूर और किसान के बीच का अन्तर समाप्त हो जायगा। समाज में केवल एक वर्ग होगा और उत्पादन के साधनों का एक प्रकार का स्वामित्व होगा।

[4] उत्पादन पद्धति के लगभग पूर्ण यंत्रीकरण [Complete Mechanisation] के द्वारा कृषि तथा उद्योग में बुद्धिजीवी और श्रमजीवी [Mental and physical labour] में कोई भेद न रहेगा, प्रत्येक मजदूर को विज्ञान तथा इञ्जीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करना होगा। बिना इसके सर्वव्यापी यंत्रीकरण के कारण किसी भी प्रकार की मजदूरी करना सम्भव न होगा।

[5] न्यूनतम और अधिकतम वेतन को समानता की ओर बढ़ाकर साम्यवाद में समान वेतन [equal wages] की स्थिति प्राप्ति की जायगी। किन्तु इस स्थिति तक पहुँचने में काफी समय लगेगा।

[6] साम्यवाद में वस्तु तथा मुद्रा सम्बन्ध [Commodity and monetary Relationship] उठाया न जा सकेगा जब तक कि सारे संसार में साम्यवाद नहीं हो जाता। इसका कारण यह है कि बिना इस सम्बन्ध के साम्यवादी और पूँजीवादी देशों का आपसी सम्पर्क असम्भव हो जायगा।

[7] साम्यवाद और विज्ञान अभिन्न है। साम्यवाद की स्थापना में वैज्ञानिक प्रवृत्ति तथा दृष्टिकोण उत्पन्न करने के मार्ग में से हर एक बाधा हटाना होगा। दूसरे शब्दों में, धर्म और धार्मिक विचार का समूल्य उन्मूलन अनिवार्य है।

[8] साम्यवादी संगठन में केन्द्रीय सञ्चालन एवं स्वामित्व के उचित स्थान को लेकर साम्यवादी अर्थशास्त्रियों में मौलिक मतभेद हुआ है। युगोस्लाविया के अर्थशास्त्रियों के अनुसार साम्यवाद उस समय तक नहीं आ सकता जब तक कि राजकीय-सम्पत्ति समूह-सम्पत्ति [Group property] में नहीं बदल दी जाती। बिना इसके देश की जनता असली साम्यवादी स्वशासन [Communistic self government] तक नहीं पहुँचेगी। रूसियों का विचार है कि एकमात्र, सर्वव्यापी राज्य स्वामित्व ही साम्यवादी स्वशासन की स्थिति है। यहाँ तक पहुँचने के लिए कठोर केन्द्रीय संचालन और स्वामित्व को कम नहीं किया जा सकता, वरन् बढ़ाना पड़ेगा।

[9] जहाँ तक राज्य की आवश्यकता समाप्त होने का सम्बन्ध है, रूसी विचारकों के अनुसार, अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। क्रमशः शासन के प्रत्येक कार्य में जनता का सक्रिय सहयोग बढ़ाना जायगा जिससे समाजवादी प्रजातंत्र [Socialist democracy] का क्षेत्र बराबर बढ़ता रहे। इसके साथ-साथ नागरिकों को साम्यवाद तक उठाने के लिये हर प्रकार से तैयार किया जायगा। किन्तु जब तक पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा

आक्रमण का भय बना है, अर्थात् जब तक विश्वव्यापी साम्यवाद नहीं स्थापित होता, तब तक राज्य का अस्तित्व बना रहेगा।

इस अस्पष्ट तथा अपूर्ण विवेचना से यह नतीजा निकलता है कि रूस के नए नेता रूसी इतिहास मे एक नए युग का निर्माण कर रहे है। रूस की वर्तमान सप्त-वर्षीय योजना समाजवाद को साम्यवाद मे बदलने की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयत्न है। यह पूरी तरह न जानते हुए भी, कि जिस साम्यवाद की प्राप्ति के लिए देश जा रहा है वह वास्तविकता मे क्या है, रूस प्राय: अज्ञात की ओर अग्रसर हो रहा है। बुनियादी तौर पर साम्यवादी की दो आवश्यकताओ पर प्रयोग किया जा रहा है। पहला, किसी भी मूल्य पर किसी तरह उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि, दूसरा सर्वव्यापी पूर्ण राज्य-स्वामित्व तथा सचालन की स्थापना।

अध्याय १०

अर्थ-व्यवस्था व आयोजन प्रणाली का संगठन

[Economic Organisation and Planning System]

आयोजन-प्रणाली

समाजवाद को यथार्थ बनाने के प्रयत्न में जिस रूसी आर्थिक संगठन का निर्माण हुआ, वह इतना नया और आश्चर्यजनक था कि आरम्भ में दुनिया ने इसे गम्भीरता से मानना ही अस्वीकार कर दिया। धीरे-धीरे अपने प्रयोगात्मक काल से निकल कर यह संगठन जब सफलता की ओर अग्रसित हुआ, तब दो विचारधाराएँ उत्पन्न हुईं। प्रथम ने रूस को पृथ्वी पर आदर्श मानकर उसका अंधानुसरण किया—दूसरे ने अज्ञान, ईर्षा तथा निजी दम्भ से प्रेरित होकर मखौल उडाना आरम्भ किया। दोनों ही विचारधाराएँ सतुलन से दूर, सकीर्ण तथा पक्षपात से प्रभावित है। यह कहना उचित नही है कि रूस ने आदर्श की प्राप्ति कर लिया और यह कहना भी अनुचित है कि रूसी अर्थव्यवस्था, स्वय कुछ नही, केवल पूँजीवाद का रूपान्तर है। रूस समाजवादी सिद्धान्तो पर सगठित होने का एक प्रयास है, इसमे कोई सदेह नही। नई दिशा मे पहला प्रयत्न होने के कारण सिद्धान्त और सगठन की अनेकों जटिल गुत्थियाँ प्रकट होना स्वाभाविक है। ये समस्याएँ व्यवहारिक समाजवाद की दुर्बलता के चिन्ह नहीं है। प्रथम प्रयत्न की भूलो को समाजवाद के विनाश की पूर्व-सूचना न समझना चाहिये। रूसी अर्थव्यवस्था ससार के आर्थिक संगठन मे नवीनतम एव निश्चित रूप से स्थायी कड़ी है। इसे हँसकर टाल देना मूर्खता ही नहीं विनाश होगा। इस संगठन की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि व विशेषताओं का अध्ययन रुचिकर तथा लाभपूर्ण सिद्ध होना चाहिये।

रूस की वर्तमान अर्थव्यवस्था, आयोजित व्यवस्था [Planned economy] कहलाती है। पूँजीवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत कर्तव्य और कार्यों पर आधारित अर्थ-व्यवस्था को स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था कहा जाता है। इसका खास कारण यह है कि व्यक्तियो को अपने मनचाहे तरीके से धन कमाने की छूट है। इतना जरूर है कि कानून खुले आम समाज विरोधी व उपायों से धन-लाभ करने की आज्ञा नहीं देता। इन कानूनो मे तेज लोगो ने ऐसी कमजोरियो का पता लगा लिया है कि अप्रत्यक्ष रूप से प्रायः कुछ भी किया जा सकता है। पूँजीवाद की अन्य बुराइयाँ भी आयोजित अर्थ-

व्यवस्था में दूर की गई है जैसे, साधनों का अपव्यय, राष्ट्रीय धन का असन्तुलित वितरण, प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न होने वाली बुराइयाँ और आर्थिक लाभ को अधिकत्तम महत्व।

योजना का अर्थ अलग-अलग दशाओं में विभिन्न प्रकार से सामने रखा गया है। मामूली तौर पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक योजना राष्ट्र के विकास की एक पद्धति है जिसके द्वारा उपलब्ध साधनों के अधिकतम् प्रयोग से कम से कम समय में ज्यादा से ज्याद उन्नति की जा सके। योजना में उपभोक्ताओं का शासन [Consumers sovereignty] तथा स्वतन्त्र उत्पादकों के काम का सहारा लिये बिना अर्थ-व्यवस्था चलाती है। मुद्रा, बाजार तथा माँग-पूर्ति द्वारा मूल्य निर्धारण का कोई महत्व नहीं रहता। इनका काम एक केन्द्रीय आर्थिक संचालन समिति करती है जिसके सभी सदस्य राज्य कर्मचारी होते हैं। इन्हें प्रशिक्षित और राजनैतिक दृष्टि से सबसे योग्य अर्थविशेषज्ञ माना जाता है। इनका मुख्य काम देश की समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग में सन्तुलन [Co-ordination] लाना होता है। इस प्रकार आर्थिक निर्णय, व्यक्तिगत हाथों से हटकर सामूहिक रूप से सारे समाज की भलाई के लिये किया जाता है। जनता के प्रतिनिधि के रूप में यह काम राज्य अपने हाथों में ले लेता है।

उत्पादन के साधनों का सामुदायिक स्वामित्व

[Collective Ownerership of Means of Production]

मार्क्सवाद पर आधारित होने से निजी सम्पत्ति [Private Property] का उन्मूलन रूसी योजना का गुण बन गया। उत्पादन के प्रत्येक साधन पर पूर्ण राज्य-स्वामित्व स्थापित किया गया। इसका प्रमुख कारण लाभ के लिये होने वाला सामाजिक शोषण रोकना था। सम्पत्ति के समाजीकरण से इन्सान द्वारा इन्सान का अनुचित लाभ उठाना बन्द करने का प्रयत्न हुआ। इसके उपाय किये गये कि भविष्य में लोग सम्पत्ति इकट्ठा न कर सकें। विरासत और उत्तराधिकार के नये नियमों से धन-सम्पत्ति का हस्तान्तरण कम से कम कर दिया गया। उद्योग, व्यापार तथा कृषि में निजी संपत्ति और कार्यक्रम लगभग समाप्त हो गया। नवीन आर्थिक नीति के बाद व्यक्तिगत रूप से ब्याज, लाभ तथा किराया पाना असम्भव तथा अवैधानिक बन गया। कम के कम सिद्धान्त में श्रम का अतिरिक्त उत्पादन [Surplus value] होना बन्द हो गया क्योंकि अब मजदूर, मजदूरों के राज्य के लिये काम करते हैं। अर्थात् मजदूर अपने-आप के लिये श्रम व उत्पादन करता है। इस हालत में शोषण असंभव हुआ।

उत्पादन के साधनों का राज्य-स्वामित्व या सामुदायिक स्वामित्व का अर्थ यह नहीं कि सभी उत्पादन के कार्य केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार चलायेगी। कुछ प्रमुख

क्षेत्रो को छोड़कर, अन्य उद्योगो को राज्य प्रत्यक्ष रूप से नही चलाता। वे सहकारी और व्यक्तिगत हाथो मे छोड दिये जाते है। इन पर राज्य का अप्रत्यक्ष निर्देशन [indirect direction] रहता है।

योजनाओ के अन्तर्गत निजी सम्पत्ति [Private Property] के उन्मूलन से यह न समझना चाहिये कि रूस मे व्यक्तिगत सम्पत्ति [personal property] एकदम नही होती। हर नागरिक व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकारी है किन्तु यह उपभोग के लिये होनी चाहिये, उत्पादन के लिये नही। इतना ही नही, कृषि-क्षेत्र मे तो सामुदायिक किसानो को थोडी-सी व्यक्तिगत ज़मीन रखने का भी अधिकार है जिसकी उपज उनकी निजी आय हुई।

सामुदायिक निर्णय तथा संचालन

केन्द्रीय संचालन द्वारा सामाजिक लक्ष्यो की स्थापना और उसकी पूर्ति के लिये साधनो के बँटवारे का सामूहिक नाम योजना है। सामाजिक प्रयत्न तथा परिश्रम को विकास की ओर केन्द्रित करने का काम एक केन्द्रीय संचालन सस्था अर्थात् राजकीय योजना आयोग [State Planning Commission] करता है। इसके लिये प्रचार, प्रेरणा और दबाव से काम लिया जाता है। एकछत्र राजनैतिक दल, राज्य शक्ति, मजदूर सघ, ग्रामीण सगठन, औद्योगिक सघ [Trust], सिण्डीकेट, बैक, सहकारी समितियाँ, समाचार-पत्र, शिक्षा संस्थाएँ इत्यादि साधनो के चतुर इस्तेमाल से जनता पर ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव [psychological effect] डाला जाता है कि योजना उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग बन जाती है। रूस मे आयोजन [Planning] की आश्चर्यजनक सफलता का यही कारण है। रूसी योजनाएँ समाज का अपना पवित्र कर्तव्य होती है : वे राज्य की इच्छाओ का कोरा ब्योरा नही होती। चद व्यक्तियो द्वारा प्रतिपादित एक कार्यक्रम को प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी और गर्व बना देना रूसी योजनाओ का स्वाभाविक गुण है। सोवियत योजना तथा संगठन की शक्ति उसके कार्यप्रणाली मे नहीं है। यह तो वस्तुतः अपूर्ण है क्योकि पूर्णता की गहराइयो तक पहुँचने का इसे कम समय मिला है। इसकी शक्ति का आधार तो इसकी सामाजिक नीव मे है। देश के विकास में इस बात को नया महत्व और उचित प्रभाव देकर रूस ने मनुष्य समाज की उन्नति का नवीन युग आरम्भ कर दिया।

सामुदायिक निर्णय का प्रथम प्रभाव उपभोक्ताओ की रुचि [Consumers' Preference] पर पडा। स्वतन्त्र अथवा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे अनेको दबाव तथा तनाव उत्पादन के साधनो और शक्तियो को एक साथ अपनी ओर खींचते हैं। इससे लक्ष्य व कार्यक्रम मे विनाशकारी विरोधाभास [Paradox] पैदा होता है। पूँजीवाद में

आर्थिक साधनो का बॅटवारा उपभोक्ताओ की रुचि के अनुसार असंख्य व्यापारियो के निर्णय द्वारा होता है। व्यक्तिगत उपभोक्ता, उत्पादक, पूँजीपति [Financiers], व्यापारी तथा अन्य कितने ही वर्गों में स्वार्थ सघर्ष [Clash of interests] होना जरूरी है। इससे बचने का अकेला उपाय रूस ने अपनाया। कठोर केन्द्रीय सचालन और निर्णय द्वारा स्वार्थ-संघर्ष का अन्त किया जा सका। सभी आर्थिक निर्णय तथा लक्ष्य-निर्धारण व्यक्तिगत प्रभावो से हटाकर एक केन्द्रीय संस्था को सौंप दिये गये। इस केन्द्रीयकरण से व्यक्तियो व वर्गों के स्वार्थपूर्ण हितो के बजाय देश और समाज की भलाई के लिये कोशिश की जा सकी। देश के आर्थिक साधनों का सबसे लाभपूर्ण प्रयोग केन्द्रीय संचालन मे हो सकता है। यहॉ पर सीमित साधन अनावश्यक वस्तुओ में केवल इसलिये नहीं लगा दिये जाते कि उपभोक्ताओ की रुचि कोका-कोला या नाइलोन की तरफ बहक गई है। इस व्यवस्था मे उपभोक्ताओ की रुचि उसकी मात्रा [Quantity], गुण [Quality] एव प्रकार [Variety] को उचित सीमाओ मे बॉधना पड़ता है। राशनिंग, उपभोग के साधन की बनावटी कमी [Artificial scarcity] तथा प्रमापीकरण [Standardisation] इसके लिये मुख्य साधन है। अतः आयोजन में जनता की आवश्यकता तथा रुचि वैक्तिक रूप से न निर्धारित होकर, सामूहिक रूप से निर्धारित होगी।

योजना मे निर्धारित प्राथमिकताओं [Priorities] के अनुसार आर्थिक साधनो को अर्थव्यवस्था के विभिन्न अगो में बॉटा जाता है। इस काम मे ध्यान रखा जाता है कि बॅटवारे से साधनो का पूर्ण उपयोग और समाज का अधिकतम कल्याण हो। इसके लिये पहली समस्या उपभोग तथा उत्पादन उद्योगो [Consumers and Producers Industries] का आपसी अनुपात तय करना है। राष्ट्र की शक्ति उत्पादन-क्षमता पर निर्भर करती है जो कि स्वय मशीनो से पैदा होती है। मशीनों को बनाने वाली मशीने अथवा उत्पादन के साधनो का उत्पादन, अनिवार्य रूप से प्राथमिकता पाता है। अधिक-से-अधिक साधन इस ओर लगाने के लिये उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन बहुत कम कर दिया जाता है। इसके बाद दूसरी समस्या उद्योगो के स्थानीयकरण के बारे मे आती है। केन्द्रीय सस्था इस निर्णय मे बहुत-सी बाते देखती है। ईंधन [Fuel], कच्चा माल, श्रम और बाजार के अतिरिक्त देश मे हर प्रदेश के सन्तुलित विकास को काफी महत्व मिलता है।

रूसी योजनाकर्त्ताओ के सामने एक अत्यत गम्भीर प्रश्न यह उठा कि देश के विकास का आधार कृषि को बनाया जाय या उद्योग को। स्तालिन ने समाजवादी योजनाओ का आधार औद्योगीकरण निश्चित किया। इस निर्णय के लिये अनेको कारण जिम्मेदार है। सैनिक दृष्टिकोण से औद्योगीकरण अनिवार्य था। शत्रुतापूर्ण पूँजीवादी देशो

ने अपनी रक्षा के लिये आधुनिकतम अस्त्रों का निर्माण उद्योग पर निर्भर करता है। उद्योग के विकास से जनता का मजदूरीकरण [proletarianization] करके समाजवाद की जडों को मजबूत और गहरी बनाना सम्भव था। नये बोल्शविक ढाँचे मे जनता की आस्था उत्पन्न करने का सबसे आसान उपाय विस्तृत उद्योगो का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करना था। इसके लिये औद्योगिक उन्नति से प्रभावशाली कुछ नही हो सकता। इतना ही नहीं, औद्योगीकरण के आदर्श ने साम्यवाद के अनुयायियो के सामने नया कार्यक्षेत्र खोल दिया। इसकी बहुत जरूरत थी। जिस क्रान्तिकारी जोश की आग ने जारशाही का अंत किया था उसकी गर्मी और चमक धीमी पडने लगी थी। इसका कारण विश्व-साम्यवादी क्रान्ति के आदर्श का परित्याग और नवीन आर्थिक नीति के समय में पूँजी-वाद को छूट था। इसे दुबारा प्रज्वलित करने के लिये औद्योगीकरण के रूप मे साम्य-वादियों [विशेषकर नवयुवक क्रान्तिकारियों] को नया आदर्श मिला जिसकी प्राप्ति मे वे अपनी प्रतिभा एवं उत्साह को लगा सकें। औद्योगीकरण के जोश मे विशेष रुचि, धार्मिक कर्तव्य तथा सैनिक अनुशासन की कट्टरता लाने के लिये प्रतिस्पर्धा का पुट दिया गया। राष्ट्र के कोने-कोने मे पूँजीवादी देशों [खास कर सयुक्त राज्य अमरीका] के उत्पादन-स्तर से भी आगे बढ़ने की कोशिश करने का नारा बुलद किया गया। जनता के असतोष पर विजय पाने के लिये षड्यन्त्रकारियो और विदेशी जासूसों की देशव्यापी खोज, खुले मुकदमे और फाँसियों के साथ विदेशी आक्रमण के भय का नाटक रचा जाता था। नीति यह थी कि सिवाय अद्यौगीकरण और शक्ति-सचय के जनता को कभी और कुछ सोचने का अवकाश ही न मिले। इस प्रकार औद्योगीकरण दो बड़े उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन बन गया . बाहरी तरीके से, सैनिक शक्ति को बढ़ाना; आन्तरिक क्षेत्र मे, अर्थव्यवस्था के समाजवादी सगठन में विस्तार, दृढ़ता और गतिशीलता लाना। पहला उद्देश्य विदेशी पूँजीवादियो से रक्षा करता था : दूसरा देश के अंदर पूँजीवाद के अवशेषों के समूल विनाश के लिये उद्यत था।

कृषि और उद्योग के आपसी महत्व को लेकर राजनैतिक क्षेत्र मे इतनी तनातनी पैदा हुई कि बुखारीन, रेकोव और टाम्स्की ऐसे प्रभावशाली नेताओ को जान से हाथ धोना पडा। सफल औद्योगीकरण के लिये कृषि का पुनर्सगठन आवश्यक था। दूसरे शब्दों मे कृषि का भी औद्योगीकरण किया गया। इस काम के लिये लक्ष्य निर्धारित किया गया—कृषि का विस्तृत यंत्रीकरण [mechanisation] और कृषि सगठन का सामुदायिक ढाँचा [collective set up]। इनकी मदद किसानो में समाजवादी सिद्धान्तो को फैलाने का प्रयत्न था। सदा से रूस एक कृषिप्रधान देश रहा है किन्तु आधुनिक रूस को केवल उन्नत देश कहना अधिक उचित मालूम पड़ता है। वर्त-मान सोवियत योजना [समवर्षीय योजना 1959-1965] कृषि और औद्योगिक उत्पा-

दन को एक मे विलय [integrate] कर देना चाहती है। इसके द्वारा कृषि-उत्पादन का संगठन एकदम औद्योगिक उत्पादन की तरह बनाया जा रहा है जिससे भूमि और कारखानो के उत्पादन में कोई अंतर न रहे।

पूँजीवादी विचारधारा के व्यक्तियो में बहुत बड़ी शंका पैदा होती है कि केन्द्र में बैठी एक संस्था के सात या आठ सदस्य सारी अर्थव्यवस्था का सफल मार्ग निर्धारण तथा सञ्चालन कैसे कर पायेंगे। उद्योग में तो यह कठिनाई से सम्भव हो सकता है। कृषि में प्रकृति की कृपा एवं कोप का प्रभाव अधिक होता है। उत्पादन के लक्ष्य बनाना तथा पूर्वनिश्चत उत्पादन की पूर्ति प्रायः असम्भव दीखती है। अत्यंत सतर्कता और विचार के साथ-सार्थ विज्ञान तथा अनुभव के आधार पर यह काम किया जाता है जिससे प्राकृतिक बाधाओ का प्रभाव कम-से-कम पडे।

रूस की अर्थव्यवस्था, कुशलता और कम लागत की दृष्टि से आदर्श नहीं है। किन्तु इसमे वह भयकर और घृणित अवस्था कभी नही उत्पन्न हो सकती कि विहार-नौकाओ [yatch] तथा सुन्दरता-गृहो [beauty parlours] का प्रचुर उत्पादन हो जब कि करोडो व्यक्ति भोजन और आश्रय के अभाव में रहे: एक ही समय यह नहीं हो सकता कि शहरो में मजदूर रोटी बिना भूखे मरें, गाँवों में गेहूँ भरा रहने से किसान बर्बाद हो जाय।[1]

समाजवादी उत्पादन प्रणाली

प्रतिस्पर्धा [Competition]—सोवियत अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा के पूँजीवादी स्वरूप का कोई स्थान नही है। लाभ की लालच से प्रेरित होकर उत्पादको की आपसी प्रतिस्पर्धा पूँजीवाद की नीव है। इससे उत्पन्न होने वाली विशेष हानियो में यह मुख्य हैं: उत्पादन के प्रकार [variety] मे अनावश्यक वृद्धि, आर्थिक साधनो का उपभोग के क्षेत्र में प्रयोग, समाज के हर हिस्से का सन्तुलित विकास न होना, तथा उत्पादन और उपभोग के बीच आपसी सम्बन्ध में कमी। समाजवादी उत्पादन एक विशाल सहकारी संगठन की तरह काम करता है जिससे अधिकतम सन्तुलन द्वारा राष्ट्रीय साधनो का अनावश्यक प्रयोग तथा अपव्यय मिटाने की चेष्टा की जाती है।

प्रतिस्पर्धा से कुछ लाभ भी है जैसे उत्कृष्ट उत्पादन-प्रबन्ध [production management], पूँजी और मशीन का अधिकतम प्रयोग एवं लागत घटाने का प्रोत्साहन। समाजवाद में इनको अनार्थिक प्रतिस्पर्धा [non-economic competition] से पाने की कोशिश होती है। इसी से समाजवादी प्रतिस्पर्धा [Socialist Competition] का अनोखा सिद्धान्त लागू किया गया। इसमें अर्थव्यवस्था के हर-

[1] John Strachey : How Socialism Works. pp 44-45

एक अंग में काम करने वालों को उत्पादन सेनानी [production soldiers] कहते हैं। वह सेनानी पुराने उत्पादन के उच्चतम स्तर [records] को तोड़ने के लिये एक दूसरे को ललकारते हैं। सफलता के आकर्षक पारितोषिक इनको आगे बढ़ने के लिये व्यग्र बनाते हैं।[1] इसके द्वारा बिना आर्थिक लाभ की आशा के अपूर्व उत्पादन वृद्धि सम्भव हुई। नये बुद्धिवादियों को आदर तथा मान्यता देकर उत्साहित किया गया। रिकार्ड तोड़ने वाले मजदूरों [Stakhanovites] का एक सम्मानित सामाजिक वर्ग बनाया गया।[2]

प्रेरणा [Incentive]—सामान्य विश्वास है कि मनुष्य केवल धन-सचय के लिये काम करता है। जिस समाज से निजी सम्पत्ति उठा दी जायगी, वहाँ कार्य तथा उत्पादन के लिये उत्साह, बल और धैर्य कहाँ से आयेगा। यह सिद्ध करके कि निजी स्वार्थ की प्रेरणा ही अकेली उत्तेजक नहीं है सोवियत सघ ने ससार को चमत्कृत कर दिया। अनेकों समाजवादी प्रेरक सामने आये जिनका सफल प्रयोग रूस की आर्थिक शक्ति का आधार बन गया। लाभ की आशा सोवियत सघ मे की जाती है किन्तु यह उत्पादन का मुख्य ध्येय नहीं है। सफल प्रबन्ध का मापक लाभ की मात्रा के अतिरिक्त कम समय मे अधिक उत्पादन, श्रमिकों की दशा मे सुधार और उत्पादन की लागत मे कमी बन गया। पूँजीवाद मे कुशल उत्पादन के लिये धन से उत्पन्न सामाजिक प्रतिष्ठा और जीवन के सुखों की लालच दी जाती है। समाजवाद ने इन सब के स्थान पर व्यक्तिगत प्रभाव तथा शक्ति [personal influence and power] को लाकर बैठा दिया। इसमे सफलता का पारितोषिक महान् है : असफलता का दड कठोर। किसी भी योग्य व्यक्ति के सामने, यदि वह साम्यवादी दल का सदस्य है, शक्ति प्राप्त करने की इतनी सुविधा और अवसर है कि आर्थिक लाभ की ओर ध्यान ही न जायगा। तर्क के लिये कहा जा सकता है कि धन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का साधन मात्र है। धन के अतिरिक्त, प्रभुत्व और शक्ति विशेषाधिकारो द्वारा भी मिल सकते हैं। प्रोफेसर मोल्टन के इस विचार से सहमत होना कठिन मालूम पड़ता है कि व्यक्तिगत उत्साह, प्रेरणा व कार्यकुशलता केवल स्वार्थ और निजी लाभ से ही सबसे अच्छी तरह उत्पन्न होती है। वे समझते हैं कि जाश, पद, सम्मान, अधिकार और दड का भय [जो रूस मे प्रयोग होता है] केवल ऋणात्मक दबाव [Negative Compulsions] है।[3] यह अनुचित है। इतना तो मानना ही पड़गा कि आर्थिक निजी

---

1 Williams, A. R : The Soviets, p 266

2 Stalin Problems of Leninism, pp. 372-373.

3 Moulton H. G. . Controlling Factors in Economic Development, p 162.

स्वार्थ के अतिरिक्त अन्य प्रभावशाली प्रेरक भी हो सकते है। और रूस ने स्वार्थ को तो नष्ट नही किया, केवल स्वार्थ का रूप बदल दिया : आर्थिक स्तर से उठ कर, उससे ऊँचे मनोवैज्ञानिक उत्तेजको तक पहुँचने का प्रयत्न किया गया।

आरंभ में आर्थिक प्रबंध और राजनैतिक कार्यक्रम एक मे मिला दिया गया था। नवीन आर्थिक नीति और उसके बाद इनको पृथक करने का असफल प्रयत्न हुआ। किन्तु इससे प्रबधकुशलता मे नई प्रेरणा मिली। सफल प्रबधक पार्टी मे प्रभावशाली बन जाता है : पार्टी मे प्रभाव शक्ति का परिचायक है। सफल प्रेरणा के लिये आर्थिक वेतन [money wages] के अलावा दूसरी सुविधाएँ अधिक सफल हुई। मार्क्स का वह सिद्धान्त बदल दिया गया जिसके अनुसार श्रम का भुगतान श्रमिक की आवश्यकता से सम्बन्धित होना चाहिये। आवश्यकता की जगह उत्पादन और लाभ वेतन का मापक बना। लगन से काम करने वाला मेहनती मजदूर दूसरे साथियो से कई गुना अधिक कमा लेता है। वेतन के अतिरिक्त मोटर, निवास-स्थान, यात्रा का खर्च, प्रशिक्षण व शिक्षा के साधन और सुविधा दी जाने लगी। यह सुविधाएँ नये वर्ग के प्रबधको और श्रमिकों को कहीं अधिक आकर्षक तथा लाभदायक थी; क्योंकि अधिकतर नये प्रबधक अत्यन्त गरीब मजदूर श्रेणी से ऊपर उठे थे। इन बातो का प्रभाव इसलिये भी अधिक पड़ता था कि सामाजिक प्रतिष्ठा का अनुमान द्राव्यिक वेतन के स्थान पर इन विशेषाधिकारो द्वारा निश्चित किया जाता था। अन्त मे, समाजवादी प्रणाली में कार्यकुशलता और परिश्रम बढाने के लिये बल-प्रयोग का विशेष महत्त्व रहा है। कठोरता के साथ निरन्तर बल-प्रयोग आश्चर्यजनक सफलता का बहुत बडा कारण बना।

लाभ [Profit]—लाभ के जिस रूप को, जिस मात्रा मे, पूँजीवाद महत्व देता है, वह समाजवादी अर्थव्यवस्था से उठा दिया गया। फिर भी समाजवादी उत्पादन क्षेत्र मे लाभ की एक नई शक्ल को काफी ऊँचा महत्व दिया जाता है। पूँजीवाद मे उत्पादन व्यक्तिगत लाभ के लिये होता है, न कि सामाजिक कल्याण के लिये। मार्क्स ने कहा था कि पूँजीवादी उत्पादन उस समय नही रुकता जबकि उसकी आवश्यकता सन्तुष्ट हो चुकी हो। यह उस समय रुकता है जब लाभ की प्राप्ति कम होने लगे। बाजार की प्रणाली [Market Mechanism] तथा एकाधिकार के द्वारा लाभ कमाने के बड़े आसान तरीके निकल आये है। इतना ही नहीं, अक्सर तो श्रम उत्पादकता की वृद्धि, साधनो के अपव्यय मे बचत इत्यादि से लाभ का कोई सम्बन्ध ही नही रहता। समाजवाद में लाभ का अर्थ केवल मौद्रिक लाभ [Money Profit] से नही लिया जाता। इसमे उत्पादन के प्रयोग का लाभ [Use-value] भी शामिल रहता है। हर कारखाने को उत्पादन की लागत घटाकर लाभ मे विस्तार करने के लिये कहा जाता है। लेकिन अधिक लाभ के लिये दूसरी आवश्यकताओ पर उचित ध्यान न देना एक अपराध है।

योजना के लक्ष्य को पूरा करना, सामान की किस्म गिरने न देना और मजदूरों की दशा तथा वेतन मे लगातार सुधार के साथ-साथ लागत कम करके अगर कोई कारखाना लाभ दिखलाता है, तभी इसको प्रशंसनीय माना जायगा।

पूँजी [Capital]—आयोजित रूसी अर्थव्यवस्था मे पूँजी को वह श्रेष्ठता नहीं दी गई जो पूँजीवाद मे दी जाती है। इसका स्थान यंत्र-कौशल [Technical Skill] और प्रवन्ध [Management] ने ले लिया। सिद्धान्त रूप से पूँजी, भूमि व श्रम को समाजवाद मे वस्तु [Commodity] नहीं माना जाता क्योंकि इनका क्रय-विक्रय नहीं होता। कारखाने इनको राज्य से अनुदान की तरह प्राप्त करते है। सामान्य पद्धति के अनुसार राजकीय बजट से एक साथ कार्यशील पूँजी [Working Capital] का अनुदान [Grant] दिया जाता है। इसी धन-राशि से कारखाने की स्थापना होती है। यह ऋण कभी वापस नहीं करना पडता। इसी प्रकार औद्योगिक बैंक [Prombank] औद्योगिक निर्माण के लिये सारा प्रबन्ध कर देता है। पूँजी की समस्या इतने आसानी से हल हो जाने से इसके प्रयोग मे लापरवाही और अपव्यय रूसी योजना मे अब भी पाया जाता है।

स्थायी संपत्ति [fixed assets] की आयु पूरी होने पर उन्हे बेकार कर देने की [Write off] बड़ी अजीब प्रणाली सोवियत सघ मे मिलती है। ऐसी मशीनो को कारखाने की पूँजी से एकदम हटा दिया जाता है। इस तरह होनेवाली हानि को न तो कहीं लेखा मे दिखाया जाता है और न इससे कारखाने का लाभ प्रभावित होता है। यह एक खास कारण है कि रूस मे मशीनो और दूसरी अचल सम्पत्ति को उनकी उपयोगिता समाप्त होने के पहले ही बेकार कर देने मे कोई कारखाना नहीं हिचकता।

पूँजीवाद मे श्रम-उत्पादकता, लागत और लाभ पर ह्रास [Depreciation] की रकम का सीधा प्रभाव पडता है। लेकिन रूस मे उत्पादन की लागत मे ह्रास को बहुत कम महत्व दिया जाता है। 1955 में रूसी उद्योग के उत्पादन के कुल खर्चे में ह्रास का अनुपात लगभग 3% था। केवल पेट्रोल उद्योग में 42·8% और बिजलीघरो मे 16·8% ह्रास किया गया।

मूल्य निर्धारण [Price Formation]

समाजवाद मे अर्घ का नियम [Law of Value] तथा मूल्य का उतना ऊँचा महत्व नहीं है जितना कि पूँजीवाद मे होता है। अर्थ व्यवस्था के विभिन्न भागो मे उत्पादन के साधन और श्रम-शक्ति के बँटवारे का काम अर्घ के नियम द्वारा न होकर योजनाकर्ताओं द्वारा किया जाता है। फिर भी मूल्य निर्धारण मे इसका प्रयोग हटाया न जा सका। उत्पादन के साधनो के राजकीय स्वामित्व ने इसमें रूपान्तर कर दिया।

इस सम्बन्ध मे कुछ बाते रूसी योजना और व्यवस्था की विशेषताएँ कही जा सकती है।

[1] उत्पादन तथा उपभोग की वस्तुओ के मूल्य मे आरम्भ से ही अन्तर पाया जाता है। कभी-कभी तो यह अन्तर काफी होता है। उपभोग की वस्तुओ का मूल्य 1924-25 में 44%, 1926-27 55% और 1955 में उत्पादन की वस्तुओ से 45% अधिक था। इतना अवश्य है कि स्तालिन की मृत्यु के बाद से इस अन्तर में कमी करने की मॉग की जा रही है।

[2] रूस मे मूल्य को अर्घ के सिद्धात की अभिव्यक्ति मानते है लेकिन उनके विचार से किसी वस्तु के अर्घ [Value] और मूल्य मे निश्चित सम्बन्ध होना कोई जरूरी नही है। मूल्य निर्धारण मे अर्घ से भी महत्वपूर्ण योजना की दूसरी आवश्यकताएँ मानी जाती है।

[3] मूल्य पर मॉग और पूर्ति का प्रभाव अत्यन्त सीमित रूप से पड़ने दिय जाता है वस्तुओ की मॉग और पूर्ति का सन्तुलन, पूँजीवाद की तरह, जनता की मॉग पर नही छोड दिया जाता। मॉग का इतना प्रभाव नहीं होता कि प्रत्यक्ष रूप से वह उत्पादन की मात्रा निर्धारित करने में सहायता दे। आपसी सन्तुलन के लिये फुटकर मूल्य [Retail prices] के स्थान पर उत्पादन से इशारा लिया जाता है। यह उत्पादन योजना से संचालित होता है।

[4] उत्पादन की मात्रा मॉग से हमेशा कुछ कम रखी जाती है जिससे मॉग और पूर्ति का संतुलन कभी बिगडने न पाये। बहु उत्पादन [Over-production] और आर्थिक मंदी [Economic Depression] इस प्रकार सदा के लिये दूर कर दिये गये। उपभोग की वस्तुओ की मात्रा और मॉग में अधिक से अधिक अन्तर रखा जाता है। राष्ट्रीय साधनो को उपभोग की ओर से हटा कर भारी उद्योगों में लगाने का यह प्रचलित तरीका है।

[5] मूल्य के स्तर में स्थिरता लाना हर देश के लिये आवश्यक है, चाहे वह देश पूँजीवाद पर संगठित हो या समाजवाद पर। इस काम में सोवियत रूस ने विशेष सफलता पाई है। प्रोफेसर पीगू के अनुसार आदर्श सयोजित अर्थव्यवस्था वह होगी जहाँ पर जनता की क्रय-शक्ति [Purchasing power] तथा बाजार में मिलने वाली वस्तुओ का विक्रय मूल्य बराबर हो। इसी संतुलन पर मूल्य-स्तर की स्थिरता निर्भर करती है। रूसी आयोजन इस संतुलन के लिये सदा प्रयत्नशील रहता है। फिर भी यदि इसमे कुछ विकार [Maladjustment] उत्पन्न होते हैं तो कई उपाय काम मे लाये जाते है—कानून द्वारा मूल्य का स्तर घटाना-बढ़ाना, टैक्स और बलात् ऋण से आय को प्रभावित करना, तथा राशनिग।

व्यापार [Trade]—सोवियत सगठन मे व्यापार का उद्देश्य लाभ कमाना या उपभोक्ताओ की रुचि का पता लगाना नही होता। माँग से उत्पादन हमेशा कम रहने से विक्रेता अपना सामान बेचने मे उत्साह, प्रचार, विज्ञापन का सहारा नही लेते। पूँजीवादी देशो की तरह क्रेताओं में "बाजार करने" ["Marketing"] का शौक नहीं हो पाता क्योकि न तो उन्हे रोज नये माडल व डिजाइन दीखते है, न उनके पास इतनी क्रय-शक्ति होती है कि केवल फैशन मे रहने के लिये खरीददारी कर सके। समाजवादी उत्पादन पर उपभोक्ताओ की रुचि का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये व्यापार का एक खास काम—उपभोक्ताओ की रुचि पता लगाना का—समाप्त हो गया। इन बातो ने व्यापार का महत्व बहुत घटा दिया।

क्रान्ति के बाद ही देशी तथा विदेशी व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया था। देश मे थोक व्यापार राजकीय सस्थाओ के हाथ मे है। विभिन्न उत्पादनो को आयोजित मूल्य पर खरीद कर, सहकारी समितियो तथा कारखाना-स्टोर्स के जरिये, निर्धारित दाम पर उपभोक्ताओ तक पहुँचाया जाता है। फुटकर भाव अक्सर बदला करते हैं। इसके माध्यम से लोगो की आय और बाजार मे उपलब्ध वस्तुओ का विक्रय-मूल्य सतुलित रखने का प्रयत्न होता है। लगभग 1950 से फुटकर व्यापार के लिये बडे-बड़े शृङ्खला-बद्ध स्टोर्स [Chain Stores] सामुदायिक स्वामित्व मे स्थापित हो रहे हैं। इनमे से कुछ का सगठन तो विकसित पश्चिमी दूकानों की तरह है।

आरम्भ मे विदेशी व्यापार सोवियत राज्य के स्थापना और विकास में बहुत महत्वपूर्ण था। आजकल विदेशी व्यापार का महत्व आर्थिक की जगह राजनैतिक अधिक है। पूँजीवादी देशो से व्यापार करने की कोई आवश्यकता रूस को अभी नही है। आधा योरप और चान रूसी उत्पादन पर निर्भर करता है। इसलिये अधिकतर विदेशी व्यापार समाजवादी क्षेत्र के अन्दर ही किया जाता है। काफी समय तक अपने उत्पादन की बाजार के लिये देश को चिन्ता न करनी होगी।

सोवियत योजना प्रणाली में नई धाराएँ

सोवियत रूस की आयोजित अर्थव्यवस्था का बडा ही कठोर परीक्षण द्वितीय महायुद्ध ने किया। युद्ध के प्रभाव से योजना प्रणाली और भी परिष्कृत व चुस्त बनानी पडी। उसी समय से यह भी अनुभूति हुई कि कुछ आधारभूत परिवर्तन अनिवार्य हो गये है। इस दिशा मे पहला कदम तो स्तालिन ने ही उठाया था, पर गतिपूर्ण प्रगति नये राजनैतिक सगठन मे हुई।

केन्द्रीयकरण [Centralisation]

इस समय तक रूस उन्नति के उस स्तर तक पहुँच चुका है जहाँ पर केन्द्रीय

संचालन और निर्देशन में कमी की जा सकती है। आरम्भ मे इसकी मदद से राष्ट्रोन्नति की बुनियादी आवश्यकताओ का विकास किया गया। किन्तु अब स्थानीय [Local] तथा क्षेत्रीय [Regional] विकास पर अधिक महत्व दिया जा रहा है। केन्द्रीय सस्थाएँ प्रत्येक विषय का सारा विस्तार स्वय न तैयार करके, अपना अधिक समय मुख्य नीति निर्धारण पर देने की चेष्टा कर रही हैं। सामुदायिक फार्म और प्रजातन्त्र राज्यो के अधिकारो में वृद्धि की गई, वस्तुओ के वितरण में भी केन्द्रीय सस्थाओ के अधिकार कम किये जा रहे है, और योजना-निर्माण का आधार अब क्षेत्रीय विकास होगा। इस काम के लिये नये सगठन में सारा देश आर्थिक क्षेत्र [Economic Regions] मे बॉट दिया गया। हर क्षेत्र मे एक आर्थिक समिति [Economic Council] बनी जिसके सदस्यो मे प्रायः हर वर्ग के व्यक्ति शामिल होते है। अपनी आवश्यकताओ की पूरी योजना बनाकर, केन्द्रीय योजना आयोग के पास भेजा जाता है जहाँ पर इन्हे संतुलित और सम्बन्धित करके, राष्ट्रीय योजना का जन्म होता है।

दीर्घ-कालीन आयोजन [Long-range Planning]

समय के साथ योजना प्रणाली और संगठन मे काफी विकास हो चुका है। इसलिये अब यह सम्भव हो सका कि भविष्य मे और दूर तक देखने का सफल प्रयत्न किया जाय। साथ ही साथ, वैज्ञानिक तथा यान्त्रिक उन्नति ने उत्पादन सगठन के आकार और जटिलता [Complexities] मे इतनी वृद्धि कर दिया कि योजना काल बढ़ाना पड़ा। 1959 से राष्ट्रीय आयोजन लम्बे अर्से के लिये निर्धारित किया जा रहा है। उद्योग के प्रत्येक विभाग, प्रजातन्त्र राज्य, आर्थिक क्षेत्र, कारखाने और निर्माण कार्य [Construction Project] के लिये योजना के लक्ष्य वार्षिक आधार पर बनाये जाते हैं।

आयोजन का नया संगठन

अभी तक के रूसी आयोजन प्रणाली को विभागीय आयोजन [branch or departmental planning] कहा जा सकता है। इसमें अर्थ व्यवस्था को विभिन्न विभागो मे बॉटा जाता है जैसे भारी उद्योग, हलके उद्योग, कृषि, व्यापार, यातायात, और वित्त। इस प्रथा में विकास तो जरूर हुआ किन्तु देश के विकसित और कम विकसित क्षेत्र, औद्योगिक और कृषि क्षेत्र, उपभोक्ता और उत्पादक क्षेत्र मे सामञ्जस्य व सतुलन उत्पन्न न हो सका। इस कमी को दूर करने के लिये विभागीय आयोजन [branch planning] को क्षेत्रीय आयोजन [territorial planning] से जोडने का प्रयास किया गया है। इतना ही नहीं, शासन के क्षेत्रो [administrative regions] को भी आर्थिक दृष्टिकोण से पुनर्संगठित किया गया। 1957 मे

सोवियत संघ 104 आर्थिक-शासन क्षेत्र [economic-administrative regions] में बाँटा गया। साथ ही साथ, सफल आयोजन की दृष्टि से सारे देश को 13 विशाल आर्थिक क्षेत्र [economic regions] के अन्दर रखा गया है। हर क्षेत्र में कई प्रजातन्त्र आ जाते है। इस तरह राष्ट्रीय तथा स्थानीय लाभ के लिये, देश के प्रत्येक स्थान की उन्नति और उनके साधनो का विकास करने को रूस उद्यत है।

क्षेत्रीय विशिष्टीकरण तथा प्रमापीकरण [Territorial Specialization and Standardisation of Products]

क्षेत्रीय आयोजन पद्धति मे प्रत्येक क्षेत्र को कुछ वस्तुओ के उत्पादन पर ही पूरा ध्यान देने को उत्साहित किया जा रहा है। जलवायु और साधनो के अनुसार विशिष्टीकरण को, बचत और उत्पादन वृद्धि का प्रमुख साधन सिद्ध होने की आशा है। मास्को की आर्थिक समिति ने छोटे कारखानो के विविध उत्पादन मे एकरूपता लाकर उन्हे आधुनिक, बड़े कारखानो मे केन्द्रित कर दिया। इससे 1958 मे लगभग 93 मिलियन रूबल की बचत हुई।

संगठन तथा प्रबन्ध

योजना संगठन [Planning Organisation]

सोवियत संघ की स्थापना के बाद आर्थिक क्षेत्र पर राजकीय नियंत्रण तथा संचालन के लिए एक उच्चतम आर्थिक समिति [Supreme Economic Council] अथवा वेसेन्खा [Vesenkha] की स्थापना हुई। राज्य के आर्थिक मामलो का अध्ययन करना और अर्थ व्यवस्था को साम्यवादी उद्देश्यो के लिये तैयार करना इसका ध्येय था। अनुभव, कार्यकुशलता तथा आँकड़ो की कमी से यह समिति बँधी रही फिर भी आर्थिक क्षेत्र पर इसका प्रभाव तथा शासन एकछत्र था।

1921 मे नवीन आर्थिक नीति के आरम्भ से संयोजित विकास के लिये एक पृथक संस्था बनी जिसका नाम राजकीय योजना आयोग [State Planning Commission] अथवा गौस प्लान [Gosplan] था। अर्थशास्त्री, विशेषज्ञ, वैज्ञानिक तथा कुछ राज्य कर्मचारी इसके सदस्य थे। राष्ट्रीयकरण के बढ़ते हुए विस्तार का प्रबन्ध करने मे विशेष रूप से योग्य एव दक्ष संस्था की आवश्यकता गौसप्लान ने पूरा किया।

आरम्भ से इसका अधिकार केवल सलाह देने तक सीमित था। इसके मुख्य कार्य मे आर्थिक पुनर्संगठन तथा नीति के विषय पर राज्य के लिये प्रसविदा तैयार करना, विशेष समस्याओ पर सलाह देना और विस्तृत योजना के लिये आँकड़े इकट्ठा

करना होता था। धीरे-धीरे इस सस्था के अधिकार बढ़ते गये। 1941 के विधान ने इसका अधिकार-क्षेत्र इस प्रकार निश्चित किया—

[1] लम्बी अवधि, वार्षिक, तिमाही, तथा मासिक राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं की तैयारी।

[2] अन्य सस्थाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का साराश राज्य को देना। इन सस्थाओं मे राजकीय विभाग और प्रजातन्त्र राज्य [republics] मुख्य थे।

[3] राज्य द्वारा स्वीकृत योजना की सफल पूर्ति पर नियंत्रण।

[4] समाजवादी अर्थव्यवस्था की विशेष समस्याओं का अध्ययन।

[5] समाजवादी लेखा [socialist accounting] का निर्देशन।

इन कामो को पूरा करने में गौस प्लान को स्थानीय योजना सस्थाओं का पूरा सहयोग मिलता था। योजना आयोग के बाद महत्व के अनुसार राज्यो की योजना समितियाँ [State Planning Committees] और क्षेत्रीय योजना समितियाँ [Regional Planning Committees] आती है। इनके अतिरिक्त शहरो मे नगर योजना सस्थाएँ तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे जिला योजना सस्थाएँ होती हैं। अपनी इन शाखाओं के द्वारा गौस प्लान, विशाल देश के कोने-कोने की और प्रत्येक स्थानीय आवश्यकताओं की पूरी खबर रखता था। इस सगठन से एक लाभ यह भी है कि स्थानीय उत्साह, कुशलता और साधन की खोज होती रहती है। अधिकार तथा निर्णय का यह विकेन्द्रीयकरण इतना वास्तविक एव सक्रिय है कि इसी पर योजना अपनी सफलता के लिए निर्भर करती है।

राजकीय योजना आयोग केवल आर्थिक क्षेत्र की सस्था नहीं है। समाज के हर एक अङ्ग का सतुलित विकास करना इसका ध्येय है। एक पूर्व निश्चित रूपरेखा पर हर क्षेत्र मे उपलब्ध प्राकृतिक, आर्थिक और मानवीय साधनो का अधिकतम प्रयोग करने की चेष्टा की जाती है। वर्तमान अध्ययन मे इसके आर्थिक रूप को देखना ही युक्तिसंगत होगा। इस दिशा में देश के विकास का आधार औद्योगीकरण होने से उद्योग, श्रम और कृषि ही विशेष महत्वपूर्ण है।

सुविधा के लिये योजना आयोग ने उद्योगो को तीन वर्गों में बाँट दिया : सघीय महत्व के उद्योग [union industries], प्रजातत्र राज्य के महत्व के उद्योग [republic industries] और स्थानीय महत्व के उद्योग [local industries]। तीसरे वर्ग को फिर से जिला, क़स्बा, तथा गाँव के अनुसार विभाजित किया जाता है। इससे लाभ यह है कि साधनो के बँटवारे में प्राथमिकता [priority] की सूची तैयार करना

आसान हो जाता है। विभिन्न उद्योग और उनके हर कारखाने तक पहुँचने की एक और शृंखला है जिसे ट्रस्ट और सिण्डीकेट कहते हैं।[1]

गौस प्लान के अथक परिश्रम से आँकड़े इकट्ठा किये गये जिनको आधार मान कर योजना के लक्ष्य बने। 1925-26 मे निर्देशक आकड़े। [Control Figures] प्रकाशित किये जाते हैं जो कि अर्थव्यवस्था का सबसे अच्छा निर्देशाङ्क होता है। रूसी आँकड़ा को सदा से अविश्वास और सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। इसमे कोई सदेह नही कि अर्थव्यवस्था के सब आँकड़े प्रकाशित नही किये जाते। वास्तविकता यह है कि सोवियत नेता आकड़ो को रोक लेने में विश्वास करते है। यह मानने का कोई प्रबल कारण नही मिलता कि आँकड़ो मे हेर-फेर की जाती है या उनको अनुचित तरह से बदल दिया जाता है। इस विषय पर प्रोफेसर हैरी श्वार्ट्ज के विचार सबसे संतुलित प्रतीत होते हैं।[2]

जनवरी 1948 मे केन्द्रीय योजना व्यवस्था को फिर से सगठित किया गया। इसका नाम राजकीय योजना समिति रखा गया पुराने गौस प्लान का सबसे महत्वपूर्ण काम इससे ले लिया गया : उद्योगो के बीच साधनो का बँटवारा करने का कार्य एक नई संस्था को मिला जिसका नाम गासनैप था [Committee for material—technical supply of the national economy]। इसी समय एक तीसरी संस्था स्थापित की गई जिसे गासटेक कहते है [State Committee for introduction of advance technique into the national economy]। इसका काम आधुनिक यान्त्रिक तथा कुशलता प्रणालियों का रूसी अर्थ-व्यवस्था से प्रचलित करना था। यह आशा की जाती थी कि यह समिति आधुनिक कारण [modernization] में आई हुई सुस्ती को दूर कर सकेगी। किन्तु गासटेक सफलतापूर्वक कार्य न कर सका। विभागीय तनातनी इतनी बढ़ी कि 1951 मे इसे भग कर दिया गया। इस प्रकार गॉस प्लान का काम उत्पादन और सामाजिक जीवन के दूसरे अंगों की योजना तैयार करने तक सीमित हो गया। जोसेफ स्तालिन की मृत्यु के बाद केन्द्रीय योजना संगठन का रूप दुबारा बदला। गासनैप को गासप्लान में मिला दिया गया। आखिरकार फिर से वही स्थिति आ गई जो इन पुनर्संगठन के प्रयत्नों के पहले थी।

गॉसप्लान के प्रारम्भिक रूप मे, योजना कार्य पर केन्द्रीय सरकार का बड़ा कठोर संचालन था। योजना का प्रयोग इतना नया था कि लेनिन [बाद में स्तालिन] ने इसके हर पहलू पर राजनैतिक देख-रेख आवश्यक समझा। बाद में परिस्थिति स्थिर हो जाने

[1] इनका विस्तार नवीन आर्थिक नीति में देखिये।

[2] Schwartz. H., op cit., p. XVI

पर यह हस्तक्षेप कम होने लगा। कम्युनिस्ट पार्टी केवल मोटे-मोटे सिद्धान्तों को निश्चित कर देती है। इनकी सहायता से गॉसप्लान योजना बनाता है और राजनैतिक उद्देश्य भी अपने पूर्ण प्रभाव मे बने रहते है।

समय के साथ एक और बहुत बडा परिवर्तन योजना आयोग के अधिकार क्षेत्र में आया। यह अनुभूति जोर पकडती गई कि योजना बनाने से भी अधिक महत्वपूर्ण काम योजना को सफलता से लागू करना होता है। शुरू में योजना को कार्यान्वित [implement] करने का दायित्व राज्य के विभिन्न मन्त्रालय [Commissariat] पर था। इससे उद्देश्य तथा विचारो मे भिन्नता आने लगी। इसलिये केन्द्रीय योजना आयोग को योजना बनाने और उसे लागू करने का काम दोनों ही सौंप दिया गया। आयो-जन के इस दूसरे पहलू ने इतना ध्यान आकर्षित किया कि प्रायः हर कम्युनिस्ट पार्टी अधिवेशन मे कार्यान्वित योजना वाद-विवाद का मुख्य विषय होता है। रूस उस भयकर कमजोरी से बच गया जो अच्छी से अच्छी योजना को बेकार कर सकती है और जिसके कारण योजना की सफलता पर ही लोग अविश्वास करते हैं अर्थात् योजना पूर्ति का असफल सचालन।

रूसी योजनाएँ अपरिवर्तनीय नही होती। इसमे कोई सन्देह नही कि विशेषज्ञ भविष्य में आने वाली कठिनाइयों का अनुमान लगाते हैं और साधनों को दृष्टि में रखते हुए लक्ष्य निर्धारित करते है किन्तु वे भविष्यद्रष्टा नहीं होते। रूस मे यह बात काफी पहले से ही मान ली गई थी। इसीलिये वार्षिक, तिमाही और मासिक योजना तथा लक्ष्य बनाया जाता है। फिर भी परिस्थिति तथा प्रगति के अनुसार इनमें हेर-फेर करना न तो असफलता मानी जाती है, न इससे मानहानि का डर रहता है। सामयिक स्थिति और नई समस्याओं का अधिक से अधिक लाभ उठाना इसी तरीके से सम्भव हो सकता है। योजना का यह संगठन काफी पेचीदा लगता है किन्तु इसकी सफलता-शक्ति का परिचायक स्वयं सोवियत रूस का महान् आर्थिक विकास है।

औद्योगिक उत्पादन संगठन तथा प्रबन्ध

औद्योगिक व्यवस्था की विशेषताएँ :

रूसी आर्थिक संगठन एक कट्टरपथी धर्म के समान है जहॉ वही सत्य है जो कि धर्म-गुरु कहते है। धर्म पुस्तको मे कुछ भी लिखा हो, पर उसकी एकमात्र सही टीका वही हैं जो कि गुरु को विवेचना है। उचित-अनुचित का निर्धारण, धर्म-अधर्म का अन्तर, पाप-पुण्य की नियमावली, स्वर्ग-नर्क का ठेका सब कुछ केन्द्रित है धर्माधीश की समझ, इच्छा और प्रवृतियो पर। व्यक्तिगत बुद्धि-बल का प्रयोग केवल अनुसरण मे

किया जा सकता है, निर्देशन में नहीं। स्वतंत्र जिज्ञासा से ही धर्मनाश होता है। इस-लिये जिज्ञासु एक पथ-भ्रष्ट व्यक्ति है जिसको मिटा देने से ही लोक-कल्याण सम्भव है। 1936 के सोवियत संविधान में उच्चादर्शों से परिपूर्ण प्रजातंत्र के सिद्धान्त दिये गये हैं। पर जैसा कि एण्ड्राई विशिन्स्की, वैधानिक विशेषज्ञ [Constitutional law expert], ने समझाया कि उन लोगों की भूल है जो यह समझते हैं कि संविधान में व्यक्त प्रजातंत्र के सिद्धान्त किसी भी रूप में मजदूर की तानाशाही को सीमित करते हैं। यही एण्ड्राई विशिन्स्की था जिसने स्तालिन के दाहिना हाथ की तरह रूसी परजीक्यूटर जनरल के पद से देश की शुद्धि [purge] के आवरण में दमन की विभीषिका रचाई थी।

रूस एक विराट सैनिक शिविर है जहाँ पर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक अंग एक ही ईंधन से सचालित है—अतुलनीय तेजवान अनुशासन-शक्ति। इसका उद्गम देश का अकेला राजनैतिक दल-कम्युनिष्ट पार्टी है। साम्यवादी दल केवल सरकार का निर्माण ही नहीं करता वरन् सक्रिय निर्देशन ही करता है। सरकार, सेना, न्यायालय और पुलिस पार्टी द्वारा नियुक्त केन्द्रीय अनुशासन के रक्षक मात्र हैं। राजशक्ति का पूर्ण केन्द्रीयकरण रूसी व्यवस्था की बड़ी भारी विशेषता है। जिसमें कानून प्रबन्ध तथा न्याय [legislative, executive and judicial] का आपसी भेद मिटा दिया गया है। केन्द्र से लेकर प्रत्येक कारखाने और खेत को कठोर अनुशासन श्रृंखला में बाँधने के लिये संस्थाओं और कर्मचारियों का विशाल समुदाय बना जिसमें वर्गों और स्तरों की जटिल उलझन है। इनमें ही रूस की एक और विशेषता पाई जाती है—कठोर आधिपत्य। हर एक वर्ग तथा स्तर अपने से ऊपर वाले वर्ग तथा स्तर और केन्द्र के पूर्ण अधिपत्य में होता है।

वह धारणा कि रूस पृथ्वी पर स्वर्ग है—वह स्थान जहाँ सभी समान हैं, जहाँ गरीब-अमीर का भेद नहीं है, जहाँ का समाज वर्गहीन है—आधुनिक रूसी प्रगति के विद्यार्थी के लिए केवल विवादास्पद ही नहीं, काल्पनिक है। मार्क्स और ऐञ्जिल के वर्गहीन समाज के सिद्धान्त को कुछ थोड़े से प्रारम्भिक प्रयत्नों के बाद बदल दिया गया। वर्गहीन के स्थान पर ऐसे समाज को आदर्श माना गया जहाँ वर्गों में विरोधा-भास [antagonistic classes] न हों। किन्तु वर्गों के स्वयं वर्तमान रहने पर आपत्ति समय के साथ कम होती गई। आजकल सोवियत समाज एक पिरामिड की तरह बना है जिसका आधार है किसान वर्ग। आधार होने के कारण यह सबसे नीचा भी है। इसके ऊपर का स्थान मजदूर वर्ग को प्राप्त है। प्रबन्ध वर्ग, कर्मचारी वर्ग, राज्य के उच्चतम पदाधिकारी वर्ग, साम्यवादी-दल के अधिकारी और सबसे चोटी पर एक छोटा-सा चुना हुआ गुट जिसमें या जिसके नेता में सम्पूर्ण राजसत्ता निहित होती है। इस तरह सारा

देश बहुत से वर्गों मे बॅटा है जिनके आपसी ऊँच-नीच का निर्णय उनकी शक्ति व प्रभुता के अनुसार होता है। क्रान्ति के बाद किये गये आय की समानता [equality of income] के प्रयत्न अब इतिहास की बाते बन गई है। उनका बचा हुआ असर केवल इतना कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति को एक न्यूनतम जीवन-स्तर के योग्य धन-लाभ करने के लिए बाध्य किया जाता है। राज्य यह देखता है कि इसके लिए उनको अवसर प्राप्त हो।

राजकीय नियन्त्रण का जाल इतना विस्तृत और गम्भीर है कि जनता का आत्मिक और शारीरिक अस्तित्व पूरी तरह इसमे जकड़ा है। पार्टी और राज्य की आँखें सर्व-द्रष्टा है और उनके हाथ की पहुँच सर्वव्यापी है। छोटी-से-छोटी बातो का निर्णय पार्टी करती है। इनके उचित पालन के लिए जो विशाल नियंत्रण-यन्त्र बना है, उसकी पेचीदी बनावट निरर्थक नही। उसका उद्देश्य है चोटी पर बैठे चन्द नेताओं द्वारा समाज पर सर्वाङ्ग नियंत्रण और सचालन। इस प्रकार रूस के नागरिक अधिकारो के बारे मे यह कहा जा सकता है कि जनता को उन सभी कार्यों को करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है जिसमें राजकीय निषेध नही है। उपरोक्त पृष्ठ-भूमि मे इसका अर्थ स्पष्ट है।

सोवियत अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन के मुख्य अग हैं—कारखाना, मशीन और ट्रेक्टर स्टेशन; राजकीय खेत [सोवखोज], सामुदायिक खेत [कोलखोज] और नगर उत्पादक सहकारी समितियॉ [Urban Producers Cooperative]।

सोवियत उत्पादन संगठन की एक ऐसी विशेषता है जो कि पूँजीवादी उत्पादन में नही पाई जाती। रूसी मजदूर और किसान के लिए उसका कार्य-क्षेत्र जीविकोपार्जन का साधन मात्र न होकर उसका सम्पूर्ण सामाजिक जीवन है। उत्पादन केन्द्र के भीतर और बाहर के सभी आर्थिक और सामाजिक क्रियाओं का निर्देशन एक विशेष आयोजित उद्देश्य लेकर राज्य करता है। यह उद्देश्य सैद्धान्तीकरण [indoctrination] है अर्थात् मजदूर और किसानो को बोल्शेविक विचारधारा से अवगत करना तथा बोल्शेविक-कार्यक्रम को पूरा करने के लिए प्रेरित करना। हर समय, हर जगह काम मे और आराम मे उनके चारो ओर बोल्शेविक "सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान" का वातावरण बनाना भी उत्पादन सगठन का खास काम होता है। इस प्रकार उत्पादन केन्द्र चाहे, वे कोई भी हो, अत्यन्त प्रभावशाली समाजवाद के विद्यालय हैं जिनमें समाजवादी विधान को एक जीती-जागती शक्ति में बदल दिया जाता है। इसकी सफलता एक केन्द्रीय योजना की आशापूर्ण पूर्ति से मापी जाती है। पिछले चालीस वर्ष की आश्चर्यजनक प्रगति का यही भेद है। ससार को चकित कर देने वाली उन्नति का मूलाधार वहाँ के मजदूर-किसानों का अदम्य उत्साह, अकथनीय त्याग तथा अथक प्रयत्न है।

सोवियत उत्पादन व्यवस्था दो मुख्य भागों में बाँटी जा सकती है। राजकीय एवं सहकारी व्यवसाय और कोलखोज इनका उदाहरण है। सरकारी उद्यम [enterprises] में सोवियत आर्थिक व्यवस्था का आदर्श पाया जाता है। साम्यवादी दल और राज्य इस बात में प्रयत्नशील है कि सारी अर्थ-व्यवस्था को राजकीय उत्पादन क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाय। उनके विचार में इस प्रकार ही पूर्ण समाजवाद की स्थापना हो सकती है। सहकारी क्षेत्र एक अस्थायी व्यवस्था की तरह ही सहन किया जाता है। 19 वीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं के आरम्भ में जो व्यक्तिगत सम्पत्ति और उत्पादन की स्थापना हुई थी उससे एकदम राजकीय संगठन पर जाना जब सम्भव न हो सका तभी, लाचारी से, सहकारी उत्पादन पद्धति को अपनाया गया। आंतरिक स्वतन्त्रता के जो अवशेष कोलखोज में पाये जाते हैं उनको सिर्फ इसलिए रहने दिया गया है कि जनता का विरोध शान्त रहे। इन संस्थाओं के द्वारा किसानों में से तुच्छ पूँजीवादी प्रवृत्तियों [petty bourgoise mentality] को निकाल फेंकने की कोशिश है जिससे किसान एक सच्चा सोवियत उत्पादन सैनिक बन सके। कोलखोज में समाजवादी शिक्षा से प्राचीन व्यक्तिवादी विचारों [individualistic ideas] को समूल नष्ट करने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। शासन का सदा यह प्रयत्न रहता है कि हर एक व्यक्ति योजना में दिये सामाजिक लक्ष्यों को सामने रखकर काम करे।

1929 में इस ओर सुधार करने की चेष्टा की गई। प्रबन्धक को कारखाने के प्रबन्ध में अधिक अधिकार और स्वतन्त्रता मिली। साथ-ही-साथ सिद्धान्त रूप में यह भी मान लिया गया कि एक-व्यक्ति-प्रबन्ध ही अपनाया जाय किन्तु राजनीतिज्ञ इतनी आसानी से अपना प्रभुत्व छोड़ने वाले न थे और देश में पुराना ढाँचा ही चलता रहा। दोहरे संचालन के साथ-साथ इस ढाँचे की एक और विशेषता थी—हर एक कारखाना अलग-अलग विभागों में बँटा था। दोहरे संचालन के साथ इस समय के कारखाना संगठन में कुछ और विशेषताएँ थीं जिनके कारण इनको बहु-सूत्री प्रबन्ध व्यवस्था [Functional Management] भी कहा जाता है। इस व्यवस्था के दो रूप थे—आन्तरिक प्रबन्ध और बाहरी प्रबन्ध। एक कारखाने के आन्तरिक प्रबन्ध को ठीक तरह चलाने के लिए कारखानों को अलग विभागों में बाँट दिया जाता था। इन विभागों के अध्यक्ष अपने-अपने क्षेत्र में निर्णय करने और आज्ञा देने में पूर्ण स्वतन्त्र थे। संचालक एक तरह से इन अध्यक्षों के बीच सम्पर्क स्थापित करने का साधन मात्र था। संदेह नहीं, इस पद्धति में सुचारु रूप से संगठित उत्पादन असम्भव था। विभागों की आपसी स्पर्धा पूरे कारखाने में लाभ को उचित दृष्टिकोण से न देखने देती थी। आरम्भ से ही प्रबन्ध का केन्द्रीयकरण एक व्यक्ति में न किया जा सका। इसका कारण लाचारी कहा जा सकता है। प्रबन्धकों की कमी तथा पुराने अनुभवी लोगों पर

अविश्वास से अधिकतर कारखानों मे नये अनुभवहीन सचालकों को नियुक्त करना पडा जिनमे पूरे कारखाने के सभी विभागो मे कार्य को समझने और सचालित करने की क्षमता न थी। इसीलिए सचालन शक्ति ने विकेन्द्रीयकरण की आवश्यकता पड़ी। कुछ भी कारण रहा हो इसका प्रभाव बहुत बुरा पडा।

इस व्यवस्था के अनुसार कारखाने के बाहरी प्रबन्ध मे भी कम उलझन न थी। एक कारखाने का नियन्त्रण बहुत से विभागों पर निर्भर करता था। केन्द्रीय और प्रान्तीय [Union and Republic] सरकार के विभिन्न मन्त्रालय, आयोग और विभाग हर कारखाने को आज्ञाएँ जारी करते थे। योजना, अर्थ, व्यापार से सम्बन्धित संचालन योजना आयोग, वित्त विभाग और अन्तर्देशीय व्यापार विभाग से क्रमशः प्राप्त होता था। इसी तरह दूसरे क्षेत्रों मे भी व्यवस्था थी। इससे होने वाली हानियाँ स्पष्ट है। कारखाना सचालन के अधिकार और कर्तव्य का निर्धारण होना कठिन था। साथ ही साथ प्रबन्ध की बुराइयों के स्रोत का भी पता नही चलता था। अलग-अलग विभाग अपने अधिकार-क्षेत्र का स्पष्टीकरण न कर पाते थे इसलिए बहुधा एक ही समस्या पर दो या अधिक भिन्न आज्ञाएँ प्रबन्धक को मिलती थीं।

17 वी कम्युनिष्ट पार्टी अधिवेशन, 1934, में जोसेफ स्तालिन ने प्रबन्ध सुधार की ओर ठोस कदम उठाया। 1929 के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का श्रेय 1934 के अधिवेशन को ही है। एक-व्यक्ति प्रबन्ध को लागू करने के लिए अलग-अलग विभागो मे अध्यक्षो के अधिकारो मे बडे पैमाने पर कटौती की गई। स्वतन्त्र निर्णय और आज्ञा देने का अधिकार उनसे बिल्कुल ले लिया गया। अब वे केवल अपने विभाग मे आवश्यक परिवर्तनो और दूसरे कामो के लिए संचालक के पास अपनी सलाह भेज सकते थे। जितनी भी आज्ञाएँ थी वे सब संचालक के नाम पर ही निकलती थी।

1934 मे कारखाना पद्धति बदली गई। उस समय तक एक मैनेजर को अपने अलग-अलग कामो के लिए राज्य के अलग-अलग विभागो से सचालित होना पडता था जिससे मैनेजर का दायित्व निश्चित करना अत्यन्त कठिन था। 1934 मे 17 वे अधिवेशन ने यह तय किया कि उत्पादन का क्षेत्रीय सचालन किया जाय। इसके द्वारा एक क्षेत्र में एक ही वस्तु के उत्पादन मे लगे हुए जितने भी कारखाने हो उनको केन्द्रीय औद्योगिक प्रबन्ध समिति [Glavk or Central Board of Industrial Management] के पूर्ण सचालन मे दे दिया गया। इससे मैनेजर को योजना आयोग और राज्य के अलग-अलग विभागो से सम्पर्क न रखकर केवल ग्लाव्क [Glavk] से आज्ञा लेनी होती थी। इस समिति का उत्तरदायित्व था कि हर एक

मैनेजर उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करे। दूसरी ओर कारखाने की पूँजी की आवश्यकताओं का अनुमान और खर्च की सीमा का विस्तृत लेखा तैयार करे जिसके आधार पर केन्द्रीय योजना में इसका प्रबन्ध हो सके। उत्पादन प्रणाली, मशीन और मजदूरों का चुनाव और दूसरे आन्तरिक प्रबन्ध की बातों को भी यह समिति निश्चय करती थी। मैनेजर का कार्य इन निर्णयों को कार्यान्वित करना था।

कारखाना प्रबन्ध में दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक कारखाना एक स्वतन्त्र आर्थिक इकाई है जिसमें बचत और लागत को कम करना सफल प्रबन्ध की कसौटी मानी जाती है। एक फैक्टरी मैनेजर के लिए उत्पादन के लक्ष्यों की पूर्ति से भी अधिक यह आवश्यक है कि वह दिखा सके कि उसने पिछले साल से कम खर्च में अधिक उत्पादन किया। इस प्रकार हर एक कारखाने को सामान, यंत्र और ईंधन; यान्त्रिक सुधार [Technological Progress], उत्पादन के किस्म में उन्नति तथा प्रति व्यक्ति अधिक उत्पादन के लिये प्रयत्नशील होने की प्रेरणा और उत्साह प्राप्त होता था।

सोवियत कारखाना संगठन

यह दो विशेष धाराओं से प्रभावित होकर बना है। प्रथम, प्रभाव अधिक उत्पादन करने का सतत् प्रयत्न है। अधिक उत्पादन पर ही सोवियत औद्योगिक व्यवस्था की नींव पड़ी है। कारखाना संगठन की कमजोरियों और शक्तियों का उद्गम बहुत कुछ इसी में पाया जाता है। एक ऐसा संगठन बनाया गया है जिसके द्वारा अधिक उत्पादन के मार्ग में आने वाले सभी अवरोधों को दूर किया जा सके। दूसरे, प्रभाव द्वारा एक फैक्टरी को साम्यवाद की पाठशाला बनाने का प्रयत्न किया गया। साथ ही साथ पूँजीवादी प्रवृत्तियों और सहानुभूतियों को मजदूरों से दूर करने के लिये कारखाना एक सुधार केन्द्र भी है। व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति और सहानुभूति का पता लगाकर मजदूर और उसके परिवारों में से इनका उन्मूलन करना सोवियत कारखाने का एक विशेष अङ्ग है। इस क्षेत्र में जहाँ पर इस पूँजीवादी बीमारी को दूर न किया जा सके वहाँ इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को भी उत्पादन क्षेत्र से हटा दिया जाता है। उत्पादन और सिद्धान्त-शिक्षा के सफल मिश्रण के लिये यह आवश्यक हो गया कि यान्त्रिक विशेषज्ञ [Technician] और राजनीतिज्ञ का ऐसा सहयोग उत्पन्न किया जाय जहाँ उनमें कहीं पर भी विरोधाभास की सम्भावना न हो। यह दोनों वर्ग अपने क्रियात्मक रूप में सर्वथा पृथक है। कारखाना संगठन, इनके आपसी प्रभुत्व के झगड़े की एक लम्बी कहानी है। आरम्भ में स्वाभाविक रूप से राजनीतिज्ञ ने ही प्राथमिकता प्राप्त की। कारण यह था कि वे स्वतंत्रता के विजेता, स्वाधीनता के सैनिक थे। उनके अपने और जनता के विचार में वे सब कुछ कर सकते थे। उन पर किसी प्रकार की रुकावट लगाना अनुचित-सा प्रतीत हुआ। इसका विपाक

प्रभाव शीघ्र ही देश के गिरे हुए उत्पादन, वेकारी और भुखमरी में प्रकट हुआ। देश ने यह अनुभव किया कि स्वाधीनता का सैनिक होना कोई ऐसी प्रशिक्षा एव योग्यता नही है जिसके द्वारा एक मनुष्य हर काम को करने योग्य बन जाय। स्वतंत्रता संग्राम के लिये अडिग मनोवल, तेज आवाज तथा शक्तिशाली शरीर की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत राष्ट्र निर्माण विशेषज्ञो [वैज्ञानिक, इजीनियर, अर्थशास्त्री और औद्योगिक सङ्गठन कर्ता] द्वारा किया जाता है जो कि बहुत धीमी और कष्टप्रद विद्या-प्रशिक्षा और अनुभव से बनते हैं। योजना के आरंभ से तथा अधिक उत्पादन की आवश्यकता के दबाव मे धीरे-धीरे अनिच्छा के साथ राजनीतिज्ञ पीछे हटता गया और विशेषज्ञों को उनकी स्वाभाविक प्राथमिकता प्राप्त हुई।

वास्तविकता मे कारखाना ही सोवियत औद्योगिक व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु है। उनका उचित सङ्गठन एवं संचालन पहली आवश्यकता मानी जाती है। सोवियत कारखाना प्रबन्ध के क्रमिक विकास पर कुछ बातों का विशेष असर पडा है। मैनेजर और इन्जीनियर उत्पादन की प्रथम आवश्यकता हैं। इसलिये उनकी कार्यकुशलता को अधिक-तम प्रोत्साहन दिये जाने की कोशिश होती है। प्रबन्धक को उचित शक्ति व प्रतिष्ठा देने के लिये उसे साम्यवादी दल मे मिला लिया गया। सफल प्रबन्धक अपने प्रभाव के विस्तार के लिये साम्यवादी दल के ऊँचे अधिकारी बनने का सदा स्वप्न देखा करते हैं। अन्त मे प्रबन्धक वर्ग की शक्ति इतनी अधिक न बढ़ जाय कि वे अपना स्वतन्त्र मार्ग निर्धारण करने का प्रयत्न करने लगे, इसलिये उन पर साम्यवादी दल से निरीक्षण और नियंत्रण की भी आवश्यकता हुई। इन सब बातो का समन्वय कारखाना-प्रबन्ध-व्यवस्था है।

कारखाना-प्रबन्ध सङ्गठन का विकास-क्रम इन कारणो से बहुत जटिल बन गया। शक्ति देश केन्द्रीय राज्य सत्ता पर आधारित है इसलिये समाज के हर एक वर्ग तथा स्तर के कार्यों की ओर उच्चतम सतर्कता रखनी पड़ती है। औद्योगिक प्रबन्धक वर्ग अत्यन्त शक्तिशाली, वाणियुक्त [Vocal] तथा प्रशस्त प्रभावशाली है। इसलिये साम्यवादी दल के आदर्शों की ओर स्वामिभक्ति [Loyalty] तथा उच्च कार्यकुशलता को जीतने और बनाये रखने के लिये विशेष प्रयत्न किये जाते है। इसी कारण कारखाना संगठन ने प्रबन्धक के अतिरिक्त दो और प्रभावो का समावेश किया गया। इस तरह त्रि-सूत्री [Triangular] प्रबन्ध-व्यवस्था बनी। प्रबन्धक के अतिरिक्त कारखाने मे समाजवादी दल समिति तथा श्रमिक सङ्घ समिति का निर्माण हुआ। दोनो नई संस्थाएँ कहने को तो एक सहायक के रूप मे बनाई गई थी, लेकिन इनके अधिकार इस प्रकार के है कि जैसे ही प्रबन्धक में किसी प्रकार की कमी दिखलाई पड़ती है ये संस्थाएँ उसकी भाग्यनिर्णा-

यक बन जाती है। इस विहगम दृष्टि के बाद कारखाना सगठन मे इन तीनो अङ्गों का थोड़ा-सा विस्तृत अध्ययन किया जायगा।

कारखाना प्रबन्धक

1917 की क्राति के बाद अनुभवी प्रबन्धको की बहुत कमी हो गई। पुराने प्रबन्धक या तो पूँजीवादी होने के कारण मारे गये या निष्कासित किये गये। थोडे से जो बचे भी उनकी सख्या इतनी कम थी कि औद्योगिक प्रबन्ध एक महान् समस्या बन गया। आरंभ मे इन पुराने प्रबन्धको पर साम्यवादी सरकार पूर्ण विश्वास भी नहीं करती थी। इसलिये दोहरी प्रबन्ध प्रणाली चली। हर कारखाने मे दो संचालक होते थे। एक तो साम्यवादी दल का कोई प्रमुख नेता, प्रायः इनके सहायक के रूप मे एक प्रशिक्षित प्रबन्धक। स्पष्ट है कि इसमे आपसी सामजस्य होना असम्भव था क्योंकि प्रबन्धक अपने को अपमानित समझता था कि वह एक अशिक्षित व्यक्ति के अधीन काम करे।

सचालक को कारखानो का एकमात्र प्रबन्धक माना जाता है। उसका अधिकार-क्षेत्र कारखानो के सभी भागो मे व्याप्त है। यान्त्रिक औद्योगिक और पूँजी सम्बन्धी कारखाने की योजनाओ को वह बनाता है। कर्मचारियो का चुनाव, सामूहिक रूप से काम का बँट-वारा, उत्पादन प्रगति की देख-रेख, श्रमिक अनुशासन उसके एकमात्र दायित्व के विषय है। योजना लक्ष्य की पूर्ति साधनो का उचित व्यय और श्रम के लाभपूर्ण सगठन की पूरी जिम्मेदारी संचालक पर होती है।

कारखाने का हर एक विभाग उप-विभागो [Sections] मे, और उप-विभाग ब्रिगेड मे बाँटे जाते है। उप-विभाग का अध्यक्ष [incharge] अथवा फोरमैन उत्पादन-श्रृङ्खला का अन्तिम नायक होता है। इसे उत्पादन कार्य नहीं करना पड़ता। इनका मुख्य-काम अनुशासन, ऊपर से आई हुई आज्ञाओ को लागू करना और संयोजित उत्पादन होता रहे इसकी देख-रेख करना है। ब्रिगेड नेता मजदूरो के अग्रदूत होते है। मजदूरो के साथ काम करके, उनके अपने आदमी की तरह, सहायता, शिक्षा और प्रोत्साहन देते हैं।

औद्योगिक प्रबन्ध के ढाँचे में उत्पादन वृद्धि की सबसे अधिक जिम्मेदारी इस ब्रिगेड पर पडती है। इस प्रकार यह पता लगता है कि सोवियत औद्योगिक संगठन मे ऐसी प्रणाली स्थापित हो चुकी है जिसके द्वारा हर एक व्यक्ति मे, अधिकतम उत्पादन करके, योजना-लक्ष्यो से भी आगे बढ़ने का उत्साह पैदा होता है [या बलात् पैदा किया जाता है], और मजदूर का पृथक व्यक्तित्व पूरी तरह दल या समूह [Team] मे विलीन हो जाता है।

कारखाना साम्यवादी दल संगठन

आरम्भ से ही रूसी साम्यवादी दल अपने को सर्वज्ञानी समझकर सर्वव्यापी बनने की चेष्टा करता रहा है। सदेह और आशका पर आधारित रूसी आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था मे ऐसा होना अस्वाभाविक नही था। धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगा कि कारखाना प्रबन्ध और राजनैतिक दल में कारखाने के अन्दर भेद करना आवश्यक है। प्रबन्ध के विशेषज्ञ पार्टी के हस्तक्षेप को पसद नही करते थे। दूसरी ओर पार्टी के लोग स्वामिभक्ति और त्याग में अपने को विशेषज्ञों से श्रेष्ठ मानते थे तथा उनसे अधिक अधिकार चाहते थे। इससे उत्पन्न विरोध और असन्तोष ने देश को बहुत हानि पहुँचाई।

समय के साथ जब क्रान्ति और विजय का नशा उतरने लगा तब कारखाना प्रबन्धकों के अधिकार मे वृद्धि हुई। फैक्ट्री के दैनिक व्यवस्था मे हस्तक्षेप कम करने की चेष्ठा की गई। पार्टी के मुख्य कार्य निश्चित कर दिये गये : सयोजित उत्पादन लक्ष्य की पूर्ति, उत्पादकता बढ़ाने के लिये आन्दोलन तथा समाजवादी सिद्धान्तों की शिक्षा का नियत्रण। दूसरा परिवर्तन 1929 मे सामने आया। इसके द्वारा पार्टी तथा कारखाना प्रबन्ध को एक सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न किया गया। सचालक, इञ्जीनियर, फोरमैन, ब्रिगेड नेता तथा 'स्तैखोनेवाइट श्रमिक' को साम्यवादी दल मे ही मिला लिया गया। दल मे इनकी बढ़ती हुई सख्या और प्रभुत्व के कारण कारखाना सचालकों के अधिकार तथा स्वतत्रता मे वृद्धि हुई।

प्रत्येक कारखाने मे एक साम्यवादी दल समिति होती है जिसका अस्तित्व सचालक से स्वतत्र होता है। इस समिति की नियुक्ति साम्यवादी दल का केन्द्र करता है तथा इसका उत्तरदायित्व केवल उन्ही की ओर होता है। योजना के लक्ष्य की पूर्ति और श्रम उत्पादकता बढ़ाने का विशेष प्रयत्न यह समिति करती है। कारखाना प्रबन्ध के अधिकारियों पर निगाह रखना भी इसका काम है।

1939 मे 18वी पार्टी अधिवेशन ने सचालक और समिति के आपसी सम्बन्ध सुधारने पर काफी विचार किया। उस समय तक यह प्रश्न एक विकट समस्या बन चुका था। साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति ने कहा कि किसी भी प्रकार से सचालक और समिति परस्परविरोधी नही कहे जा सकते क्योंकि दोनो का उद्देश्य एक ही है। कहने का अर्थ यह था कि समिति के अधिकारों का विरोध वही सचालक करते है जिनमे कोई कमी है। 1941 मे तो कारखाना दल समिति के कर्तव्यों तथा अधिकारों की एक लम्बी सूची बनाई गई जिसमे कठिनता से ही कोई कार्य का नाम छूटा हो।

कारखाना श्रमिक संघ समिति

यह संगठन कारखाने के त्रि-मूर्त्ती संगठन को पूरा करता है। राज्य द्वारा नियुक्त संचालक, साम्यवादी दल समिति के बाद सोवियत कारखाने का तीसरा संगठन श्रमिक संघ समिति [Fabzavkom] है। रूसी श्रमिक संघ के विशाल संगठन में यह प्राथमिक संस्था है। 1949 में हुए सोवियत श्रमिक संघ के दसवें अधिवेशन में इनके कार्यों का एक लेखा प्रस्तुत किया गया था। मजदूरों को योजना-लक्ष्य की पूर्ति अथवा उससे अधिक उत्पादन, श्रमिक अनुशासन को शक्तिशाली बनाना तथा समाजवादी प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन देना, सामूहिक समझौता की तैयारी, श्रमिक उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के प्रयत्न तथा सुझाव, स्तैखनोवाईट शिक्षण केन्द्रों का संगठन, कर्मचारियों के कल्याण कार्य, सांस्कृतिक तथा खेलकूद के कार्यक्रम का आयोजन एवं उच्च श्रमिक संघ अधिकारियों द्वारा प्राप्त आदेशों का पालन, इनके कार्य बतलाये गये हैं। इस संक्षिप्त सूची से यह स्पष्ट है कि श्रमिक संघ का कार्य-क्षेत्र इतना व्यापक है कि अगर यह अपने सभी अधिकारों को प्रयोग में लायें तो संचालक का अधिकतर काम इनके द्वारा ही हो जायगा। यही नहीं, श्रमिक संघ समिति तथा साम्यवादी दल समिति प्रायः एक-सी लगती हैं। इस अनुरूपता का अर्थ यह हुआ कि अनेकों स्थान पर इन दोनों का अधिकार-क्षेत्र उलझा हुआ है। इससे कुशल प्रबन्ध में अवरोध उत्पन्न होता है।

यह कहना अनुचित न होगा कि श्रामिक संघों के अधिकार तथा कार्य इस प्रकार के बने हैं कि एक आदर्श परिस्थिति उत्पन्न होती है जिसमें श्रमिकों की अधिकारपूर्ण, क्रियात्मक एवं प्रभावशाली आवाज प्रबन्ध के हर कोने में सुनाई दे सकती है। इसी से श्रमिक-राज्य [Workers' state] का साम्यवादी लक्ष्य पूरा किया जा सकता है; किन्तु ऐसा हो न सका। समय के साथ श्रमिक संघ का प्रभुत्व भी कम होता जा रहा है। कहने को तो श्रमिक संघ समिति का अध्यक्ष उच्च संघ अधिकारियों द्वारा ही नियुक्त होता है तथा वह पूर्ण स्वतंत्र कार्यकर्ता है, परन्तु कारखाना संगठन में उसका स्थान संचालक, दल सचिव तथा विभाग-अध्यक्ष के बाद ही आने लगा है। श्रमिक समिति अध्यक्ष की स्वतन्त्रता पर सबसे बड़ा आघात इस बात से लगता है कि केवल वही व्यक्ति इस पद पर नियुक्त हो सकता है जो कि कारखाना-संचालक को मान्य हो।

सोवियत औद्योगिक संगठन का केन्द्रीय लक्ष्य है अधिक उत्पादन। सभी संस्थाएँ, संगठन और नियम इसी की पूर्ति के लिये बनाये गये हैं। श्रमिक संघ समिति के भी अस्तित्व का आधार यही है। इसका एक विशेष साधन सामूहिक समझौता [Collective Agreement] है। यह प्रबन्ध और श्रमिकों के बीच एक वादा [Pledge] है जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कार्य-क्रम को पूरा करने का

उत्तरदायित्व दोनों पक्ष इसलिये लेते हैं कि उत्पादन-शक्ति तथा उत्पादन में वृद्धि हो सके। किन्तु सामूहिक समझौता, श्रमिकों के अधिकार और कर्तव्य की स्पष्ट विवेचना करने के स्थान पर, कारखाना सगठन में श्रमिकों को स्वतंत्रता का केवल एक ढोंग बन कर रह गया। पाश्चात्य देशों की तरह प्रबन्ध और श्रमिक सघ अधिकारी आमने-सामने बैठकर यह समझौता नहीं करते जिसमे कि मजदूरी, काम का समय, उत्पादन, मकान, सुविधाएँ इत्यादि तय होती है। समझौते की रूप-रेखा का इशारा तीन बातों से लिया जाता है—[1] देश मे उस समय चलती हुई योजना के सिद्धान्त, [2] श्रमिक अधिनियम तथा [3] 'आदर्श सामूहिक समझौता' [Model Collective Agreement] जिसे उच्च अधिकारी मजदूरों के 'सहूलियत और मदद' के लिये भेजते हैं। इस मदद को स्वीकार न करना अनुशासनहीनता का प्रमाण माना जा सकता है। इसका अच्छा प्रभाव इस बात से और भी कम हो जाता है कि इन समझौतों में कोई वैधानिक शक्ति नहीं होती तथा मजदूरों की नियुक्ति इसके क्षेत्र से बाहर है। नियुक्ति के समय, मजदूरों को प्रबन्धकों के साथ अलग एक व्यक्तिगत समझौता करना पड़ता है। इन्हीं कारणों से सामुदायिक समझौते को मजदूरों की शक्ति का प्रतीक नहीं माना जा सकता।

श्रमिक सघ के प्रतिनिधि कई आयोग और समितियों मे भाग लेते है।[1] पूर्ण

[1] [a] Council of Social Insurance . सामाजिक बीमा का सक्रिय संगठन व संचालन।

[b] Wage Commission · यह वेतन का निर्धारण नहीं करता। निर्धारित वेतन को कारखाने में लागू करने पर सचालक को सलाह देता है।

[c] Commission for Labour Protection काम, समय, सुरक्षा सम्बन्धी नियमों के उचित पालन की देख-रेख के लिये निरीक्षकों [inspectors] की नियुक्ति।

[d] Commission for Cultural and Educational Activity : प्रशिक्षण और कार्य कुशलता मे वृद्धि के लिये शिक्षा का प्रबन्ध।

[e] Housing Commission : निवास स्थान का प्रबन्धक।

[f] Commission for Workers, Suppliers . कारखाने के फार्म व बगीचों की देख-रेख। कैन्टीन व सहकारी दुकानों का प्रबन्ध।

[g] Commission for Workers Inventions and Rationalization : कर्मचारियों द्वारा की गई खोज व आविष्कार को प्रोत्साहन। विवेकीकरण का प्रयत्न।

अधिकार के साथ यह समितियाँ केवल सामाजिक बीमा, चिकित्सा सुविधा और पेन्शन के प्रबन्ध मे काम करती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इन कल्याण कार्यो ने श्रमिक संघ के दूसरे कामो का स्थान ले लिया। उद्योगो का प्रजातन्त्रात्मक सचालन [democratic control] और मजदूरो का सौदा करने का अधिकार [Right to bargain] से श्रमिक सघ का सम्बन्ध टूट चुका है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रायः सभी विषय उच्च राजकीय स्तर पर तय किये जाते है। श्रमिक सघ समिति इन निर्णयो पर मजदूरो की स्वीकृति का मुहर लगा देती है। बाद मे सरकारी तौर पर इन्ही को श्रमिक सघ के निर्णय की तरह जनता के सामने रखा जाता है।

सिद्धान्त से रूसी सरकार एक मजदूर सरकार है। मजदूरो की सरकार ही जब उनके लिये काम, वेतन, कार्य-काल तथा कल्याण-सेवाओं की रूप-रेखा तथा विस्तार निश्चित करती है, तब मजदूरो को किसी प्रकार भी असतोष या मतभेद नही अनुभव करना चाहिये। 1949 मे श्रमिक सघ के नियम [Statute of the Trade Union] ने मान लिया कि प्रत्येक मजदूर बाध्य है कि वह राज्य एव श्रमिक अनुशासन का कठोर पालन करे। इस प्रकार रूसी औद्योगिक संगठन मे मतभेद और हडताल का कोई स्थान ही नहीं है। फिर भी औद्योगिक झगडो को तय करने के लिये एक विशेष सस्था है [Appraisal and Conflict Commission or Norms and Conflicts Commission] जिनको R K K. कहा जाता है। इसमे प्रबन्ध तथा श्रमिक सघ समिति के सदस्य बराबर संख्या मे बैठते है। अधिकतर संचालक ही इसका सभापतित्व करता है। इसके निर्णय अगर दोनो पक्षो को मान्य न हुए तो उन्हे ग्लाव्क [Glavk] और उनके बाद अदालत मे भी भेजा जा सकता है। यह आयोग कानून द्वारा सचालित [Controlled] विषयो को निर्णय के लिये स्वीकार नही करता। इनमें मुख्यतः काम का बॅटवारा, अतिरिक्त कार्य और छुट्टी इत्यादि छोटे-छोटे मामले ही आते हैं। संचालक के हाथो मे अधिकार-शक्ति के केन्द्रित होने के साथ ही साथ इस सस्था का महत्व भी घटता जा रहा है।

अपूर्ण निर्माण कार्य

औद्योगिक उत्पादन सगठन तथा योजना प्रणाली मे एक गम्भीर असंतुलन मिलता है। योजना का आकार इतनी तेजी से बढ रहा है कि प्रतिवर्ष पूॅजी विनियोग [Capital Investment] की मात्रा राष्ट्रीय आय का बहुत बडा भाग बन जाती है। सातवी योजना मे पूॅजी विनियोग इतना अधिक है कि उसकी मात्रा आज तक की कुल सोवियत पूॅजी विनियोग से कुछ ही कम है। ऐसी दशा मे पूॅजी के व्यय और उपयोगिता मे जरा भी कमी होने से राष्ट्र को बहुत हानि हो सकती है। मालूम पड़ता

है कि राजशक्ति के बल पर इकट्ठा की हुई पूँजी उतनी महत्वपूर्ण नहीं हो पाती जितना होना चाहिये। इसी कारण प्रतिवर्ष अपूर्ण निर्माण कार्यों [Unfinished construction] की सख्या मे वृद्धि होती जा रही है। 1958 के आरम्भ तक 1,76,100 मिलियन रूबल तक अपूर्ण कार्यों मे लगी पूँजी पहुँच चुकी थी। तुलनात्मक दृष्टि से यह 1958 की कुल पूँजी विनियोग का लगभग 85% हुआ। अनेकों उदाहरण इस प्रकार के है कि 15-18 वर्ष पहले शुरू किये हुए काम अभी तक पूरे नहीं हुए। स्तालिनस्क-अबाकान रेल मार्ग 1940 मे शुरू हुआ था। जनवरी 1958 तक कुल 78% पूरा हुआ। फरगना मे पेट्रोल साफ करने का कारखाना पिछले नौ सालों मे योजना का कुल 27% पूरा कर सका।

पूँजी का यह विशाल अपव्यय और अनावश्यक देरी योजना में कमजोरी तथा उत्पादन संगठन में सुस्ती का प्रमाण है। इसके कारणों का संक्षिप्त अध्ययन विशेष शिक्षाप्रद होगा :

1. योजना मे धन और साधन एक साथ इतने अधिक काम शुरू करने पर लगाये जाते है कि पूरी शक्ति से कोई भी काम नहीं हो पाता।

2 बहुत बडी सख्या मे अपूर्ण कार्य होने पर भी प्रतिवर्ष नये निर्माण कार्यों को आरम्भ करने की अनुमति मिलती रहती है।

3 कार्यों को योजना-काल मे पूरा न होने का एक कारण है : निर्माण कार्य तथा निर्माण सामग्री मे सन्तुलन न होना। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सगठन की दुर्बलता से कुछ योजना-कार्यों [projects] को आवश्यकता से अधिक मशीने तथा अन्य वस्तुएँ पहुँच जाती है। दूसरी ओर अनेकों कार्य इन्ही मशीनों की कमी से पूरे नही हो पाते। अनेकों बार यह भी देखा गया है कि आवश्यक निर्माण के साधन समय से नही प्राप्त होते।

4. पूँजी विनियोग को पूरे वर्ष तक व्यय के लिये एक-सा नहीं बाँटा जाता। अक्सर यह होता है कि शुरू के महीनों की लापरवाही बाद के चन्द महिनों मे पूरी की जाती है। वर्ष की अन्तिम तिमाही मे 70% से ज्यादा पूँजी खर्च करने की सामान्य पद्धति मालूम पडती है।

अपूर्ण निर्माण कार्य मे पूँजी का असफल प्रयोग होता है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन शक्ति का निर्माण पूँजी के दुरुपयोग का तरीका है। ख्याति तथा क्षेत्रिक प्रतिद्वन्द्विता [Regional Rivalry] के साथ-साथ यह योजना-सचालन की कमी दिखलाता है।

कृषि उत्पादन संगठन तथा प्रबन्ध

कृषक और राज्य—ससार मे सभी जगह किसान धरती का पुत्र होता है। हजारों साल से अपनी जमीन का प्रेम उसके खून मे भरता आया है। लेनिन ने बोल्शेविक क्रान्ति के लिए जब उनसे सहयोग माँगा, तो किसानो ने समझा कि स्वर्ग पृथ्वी पर आने वाला है। किसानो की कल्पना ने उडान भरी और विश्वास जमने लगा कि लेनिन कुलक, भू-स्वामी व सामन्तो से जमीन ले कर उनको दे देगा। ईश्वर का पुत्र राष्ट्रपिता जार [Son of God Little Father the Czar] हटा दिया गया। सामत और भू-स्वामी मार डाले गये या भाग गये। किन्तु कल्पना साकार न हुई। पूर्ण भू-स्वामित्व की जगह उनकी अपनी जमीन, घोडे, गाय तथा अन्य औजार सामाजिक सम्पत्ति घोषित कर दिये गये। किसानो को एक नया स्वामी मिला जो कि कठोरता मे किसी भी तरह पुराने से कम न था। इसका नाम था सोवियत राज्य। स्वतन्त्रता का पहला परिचय था अनाज को जब्त करना, भूमि का सामुदायिक स्वामित्व, बढ़ते हुए उत्तर-दायित्व, तथा कपडे, जूते और दूसरी आवश्यक वस्तुओ मे आश्चर्यजनक मूल्य की वृद्धि।

सोवियत कृषि नीति के दो आधार थे। प्रथम, किसानो को बडे सहकारी तथा सामुदायिक सगठन मे बाँधना। अनुशासन तथा अनाज वसूली मे सुविधा के साथ उनको समाजवाद के सिद्धान्तो से अवगत कराया जा सकेगा। किसान का भूमि-प्रेम उसके सच्चे समाजवादी बनने मे सबसे बडी रुकावट थी। इसी से किसान पर राज्य का सदा से कडा हाथ रहा। सामुदायिक सगठन और समाजवादी प्रवृत्ति उत्पन्न करने मे सोवियत नीति को सफलता नहीं मिली। इसका प्रमाण द्वितीय महायुद्ध में दिखलाई पड़ा। नाजी जर्मनी को मध्य और दक्षिणी कृषि प्रदेशो पर अधिकार करते ही, किसान कोलखोज़ [सामुदायिक फार्म] छोड कर व्यक्तिगत खेती पर चले आये जबकि इस समय तक उन्हे लगभग २५ वर्ष नये सगठन मे रहते हो चुके थे। कृषि-नीति का द्वितीय आधार था किसानो के अधिकतम प्रयत्न तथा त्याग से औद्योगीकरण को सहारा देना। अधिकतर पाश्चात्य विद्वानो ने उसे सोवियत राज्य का किसानो के प्रति धोखा, शोषण या शत्रुता माना है। इस विषय पर एक और दृष्टिकोण रखा जा सकता है। इसमे कोई सदेह नही कि जब भी पिछडे हुए कृषि-प्रधान देश के विकास का प्रयत्न किया जायगा, राज्य पर उद्योगो के प्रति पक्षपात का दोष सदा लगाया जा सकता है। विकास की योजना में उद्योगो को उच्चतम प्राथमिकता मिलना स्वाभाविक है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि कृषि-विकास पर कुछ ध्यान नहीं दिया जायगा। उद्योगो के पक्षपात की विचारधारा कुछ मनोवैज्ञानिक मूलो का परिणाम भी कही जा सकती है। उद्योग की उन्नति उतनी प्रत्यक्ष और तीव्र होती है कि उसके आगे दूर गाँवो मे होने वाली प्रगति तुलनात्मक दृष्टि से [relatively] सदा ही कम मालूम पडेगी। उसी प्रकार मजदूरो का सामा-

जिक स्तर भी किसानो से ऊँचा रहेगा। मजदूर वर्ग समाज मे उठता हुआ नया वर्ग होता है जिसके नये दृष्टिकोण [Sense of Values], श्रम-भुगतान की नई पद्धति तथा अनेको राजकीय प्रेरणाएँ व प्रोत्साहन उसे किसानो से इतना भिन्न बना देता है कि तुलनात्मक रूप मे उसकी दशा-सुधार और जीवन स्तर ऊँचा उठ जाता है। एक स्थान पर इकट्ठा होकर सगठित होने का मौका मिलने से मजदूर वर्ग राजनीति और राज्य मे भी अपना स्थान बना लेता है। अन्त मे यह कहना अनुचित न होगा कि रूसी कृषि-नीति पर परिस्थितियो का प्रभाव अधिक था। इसे समकालीन जटिल समस्याओ को हल करने का प्रयास कहना चाहिये : राज्य का किसानो के प्रति विद्वेष [hostility] का प्रतीक नही।

कृषि संगठन :

क्रान्ति के बाद खेती के पुनर्संगठन की आवश्यकता पड़ी। यह अनुभव किया गया कि किसानो को बड़े समूहो [groups] मे विभाजित करना अनिवार्य है। सहकारिता के तीन प्रधान रूप इस सम्बन्ध मे अपनाये गये। प्रथम, तोज [Toz] अथवा सयुक्त खेती के लिये आपसी सगठन आता है। इसमे किसान भूमि पर काम करने के लिये आपस मे मिल जाते थे। हर एक सदस्य का अपने भूमि पर स्वामित्व अलग होता था। इसके साथ पशु तथा औजार भी अपना होता था। बाद मे अपनी जमीन पर हुई फसल बॉट ली जाती थी। द्वितीय, आरटेल [Artel] था जिसमे हर एक सदस्य के पास अपना घर और जमीन का छोटा-सा भाग निजी सम्पत्ति के रूप मे रहता है। अधिकतर उत्पादन के साधनो का स्वामी कोलखोज या आरटेल होता था। सामूहिक रूप से खेतो पर काम किया जाता है। बाद मे सामुदायिक उत्पादन की आय सदस्यो मे बॉट ली जाती है। इस प्रकार प्रत्येक किसान की दोहरी आय होती है, सामुदायिक क्षेत्र से तथा निजी भूमि व पशु से। इसका अर्थ यह हुआ कि आरटेल सिद्धान्त पर आधारित सामुदायिक संगठन मे समाजवादी एव व्यक्तिगत प्रेरणाओ का समावेश रहता है। तृतीय, कम्यून [Commune] कहलाता है। इस प्रणाली मे सदस्य सामुदायिक रूप से केवल काम ही नहीं करते परन्तु वे सामुदायिक रूप से रहते भी हैं। उत्पादन के साधन और तमाम सम्पत्ति कम्यून की होती है। सदस्य सामुदायिक मकानो मे रहते है, सामुदायिक रूप से एक साथ उनका भोजन बनता है और उनके बच्चो का पालन-पोषण समुदाय करता है। इसे सामुदायिक विकास का उच्चतम रूप माना गया है। इसमे व्यक्तिगत प्रवृत्ति पूरी तरह नष्ट हो जाती है। स्तालिन ने कम्युनिस्ट पार्टी के 17 वे अधिवेशन मे कम्यून को ही भविष्य का रूसी कृषि सगठन घोषित किया था। यह तीनो वर्गीकरण स्पष्ट नही हैं। इनके बीच-बीच मे अनेको प्रकार के सामुदायिक सगठन हैं जिनमे उपरोक्त तीनो वर्गों के

गुण अलग-अलग परिमाण मे व्यवहार किये जाते है।[1] इन तीनों मे से रूसी कृषि संगठन के लिये आरटेल के सिद्धांतों पर आधारित सामुदायिक फार्म चुना गया। 1933 मे कुल कोलखोज का 96 3% आरटेल, 1 9% तोज और 1 8% कम्यून थे।[2] आज-कल कम्यून और तोज प्रायः लुप्त हो चुके हैं और आरटेल को ही कोलखोज पुकारा जाता है।

आधुनिक रूसी कृषि संगठन के तीन प्रधान अंग हैं : सामुदायिक फार्म या कोलखोज, राजकीय फार्म या सोवखोज तथा मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन [या संक्षेप में 'मट्रस']।

कोलखोज़ [Kolkhoz]

विशेषताएँ—कोलखोज की रूप-रेखा 1935 के "कृषि आरटेल के आदर्श नियम" मे सामने रखी गई। इसके अनुसार आदर्श कोलखोज मे निम्नलिखित बातें होनी चाहिये :

उद्देश्य—श्रम तथा उत्पादन के साधनों का सामान्य प्रयोग करके किसान शोषण, गरीबी, अज्ञानता, व्यक्तिगत कृषि पर विजय पायेगा। इससे श्रम की उत्पादकता बढ़ेगी और किसान के जीवन-स्तर मे सुधार होगा। प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि आरटेल को शक्तिशाली बनाये, पूरे ईमानदारी और मेहनत से काम करे, सामुदायिक आय को काम के अनुसार बाँटा जाय, सार्वजनिक सम्पत्ति की देख भाल करे, राजकीय योजनाओं की पूर्ति मे पूर्ण सहयोग दे तथा इन सब कामों से सच्चा बोलशेविक बने।

भूमि—सारी भूमि सोवियत राज्य की है। आरटेल का इस पर स्थायी अधिकार होगा। भूमि बेची या खरीदी नहीं जा सकती। सदस्यों की भूमि को आपस में मिला कर एक विशाल खेत मे बदल दिया जायगा। मकान के नजदीक हर सदस्य को निजी भूमि मिलेगी जो लगभग आधे एकड से 2 5 एकड तक हो सकती है। इसकी मात्रा सदस्य की राज्य सेवा पर निर्भर करती है।

उत्पादन के साधन—सारे उत्पादन के साधन जिससे कोलखोज पर काम होता है, सामुदायिक स्वामित्व मे रहेगा। सदस्य के परिवार का निवास-स्थान, पशु-पक्षी तथा औज़ार, जिसका वह निजी प्रयोग करता है, व्यक्तिगत स्वामित्व मे रहेगा।

सदस्यता—नये सदस्यों के लिये सार्वजनिक सभा से स्वीकृति लेना आवश्यक है। 16 वर्ष के युवक-युवतियों को सदस्य बनाया जा सकता है। किसी सदस्य का निष्कासन

---

1 Calvin Hoover The Economic Life of Soviet Russia, p. 92

2 Naum Jasny The Socialized Agriculture of the U. S S R., p. 320

भी आम सभा ही कर सकती है। यदि कोई सदस्य अपनी इच्छा से आरटेल छोड़ना चाहे तो उसको नगद पूँजी वापस कर दी जायगी और सामुदायिक भूमि के बाहर उसे भूमि भी दी जायगी।

आर्थिक साधन—भूमि तथा पशु उत्पादन का प्रयोग इस प्रकार होगा :

[i] राज्य से प्राप्त सुविधाओं का भुगतान करना उत्पादन का प्रथम कार्य है। इसमें मशीन व ट्रैक्टर स्टेशन की सहायता, राज्य से मिले बीज की वापसी और राज्य को अनाज देने के समझौते का पालन आता है।

[ii] अगले वर्ष के बीज तथा चारे के लिये एक कोष बनना जो अनुमानित आवश्यकताओं का 10 से 15% होना चाहिये।

[iii] वृद्ध, पगु, सैनिकों के परिवार तथा बच्चो के पालन-गृहों [nursuries] के लिये भी सचय करना, इसकी मात्रा कुल उत्पादन के 2% से अधिक नहीं हो सकती।

[iv] उत्पादन का एक अश राज्य या बाजार को बेचने के लिये अलग रखा जाय।

[v] कार्य-दिवस [work days] के अनुसार बचा हुआ उत्पादन सदस्यों मे बॉट दिया जायगा।

इसी तरह पूरे सामूहिक फार्म की वार्षिक आय के बटवारे के लिये भी नियम बनाये गये—

[i] राजकीय टैक्स और बीमा

[ii] उत्पादन की वर्तमान आवश्यकताओं का खर्च जैसे मशीन, मरम्मत, जङ्गल साफ करना इत्यादि।

[iii] प्रबन्ध तथा व्यवसायिक खर्चे

[iv] सास्कृतिक तथा प्रशिक्षण कार्यों के लिये व्यय

[v] अविभाजनीय कोष [indivisible fund] में जमा, बाहरी कारीगरो व मजदूरो का वेतन, कृषि बैंक से प्राप्त दीर्घ-कालीन ऋण का भुगतान।

[vi] बचा हुआ धन सदस्यो मे कार्य-दिवस के अनुसार बॉट दिया जायगा।

कोलखोज की आर्थिक शक्ति अविभाजनीय कोष [indivisible fund] पर निर्भर करती है। सदस्यो के अंशदान [contribution] से इसका निर्माण होता

है। किसी भी अवस्था मे इसे बाँटा नहीं जा सकता। आय का कम से कम 10% और अधिक से अधिक 20% इस कोष मे रखा जा सकता है।

संगठन—फार्म का सभी काम सदस्यों के व्यक्तिगत श्रम से होगा। विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त वैतनिक श्रम नहीं रखा जा सकता। फार्म के सदस्य उत्पादन ब्रिगेड [production brigade] मे बाँट दिये जायेंगे। इनके सदस्यों की सख्या निश्चित नहीं है। कुछ ब्रिगेड मे 100 से भी अधिक व्यक्ति होते है। ब्रिगेड को लगभग 7 से 14 व्यक्तियों के दल मे बाँटा जाता है। इन्हे ज्वीनो या कडी [Zveno or link] कहते है। खेतो पर नियुक्त ब्रिगेड कम से कम एक फसल-क्रम [crop-rotation] के लिये रहेंगे जिससे काम की जिम्मेदारी उन्हीं पर डाली जा सके। औसतन इनकी नियुक्ति तीन सालो के लिये होती है। प्रत्येक ब्रिगेड को सभी आवश्यक औजार, पशु तथा अन्य वस्तुएँ दी जायँगी। ब्रिगेड फार्म के पशुओं की देख-रेख और वृद्धि का काम करेगा। ब्रिगेड का नेता [ब्रिगेडियर] काम का बँटवारा, अनुशासन तथा भुगतान सँभालेगा।

ब्रिगेड तथा ज्वीनो के आपसी महत्व मे समय-समय पर बहुत परिवर्तन हुआ। कोलखोज संगठन का आधार होने से इसका प्रभाव बहुत गहरा पडा। द्वितीय महायुद्ध के पहले तक कार्यकुशलता, अधिक उत्पादन और उत्तरदायित्व की दृष्टि से बडे-बडे ब्रिगेड अच्छे नही समझे जाते थे। इनको छोटे कार्य समूह [working groups] अथवा ज्वीनो मे बाँटने की पद्धति लागू करने पर बहुत जोर दिया जाता था। युद्ध के बाद भी यही क्रम चलता रहा। अचानक फरवरी 1950 मे यह नीति बदल दी गई। ऐसा विचार किया जाता है कि ज्वीनो का प्रचलन बढता देख कर सोवियत नेताओं को व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के पुनर्जागरण का डर हुआ।[1] आजकल ब्रिगेड द्वारा काम कराने को ही ठीक समझा जाता है।

भुगतान—कृषि का कार्य कर्म-भृत्ति अथवा वेतन [piece-wage] प्रणाली पर होगा। कोलखोज शासन की ओर से कार्य के प्रमाप [standards for work] तथा वेतन निश्चित किया जायगा। इस औसत से यदि कोई ब्रिगेड अधिक उत्पादन कर ले तो सामान्य सदस्यों को उपार्जित कार्य दिवस [number of work-days earned] का 10%, उदार्निक [udarnik] अथवा विशेष योग्य, परिश्रमी व कर्मठ सदस्य को 15% और ब्रिगेडियर को 20% अतिरिक्त भत्ता मिलेगा। आय का आधार सदस्य के द्वारा उपार्जित कार्य-दिवस की सख्या होगी। कार्य-दिवस [work-day] एक काल्पनिक माप है। अलग-अलग कामो के लिये ब्रिगेडिर कार्य दिवस निश्चित

---

1 Lazar Volin A Survey of Soviet Russian Agriculture, p. 30

करता है। कठिन कार्य करने वालों को अधिक कार्य-दिवस मिलता है, आसान काम करने वालों को कम।

आरम्भ से ही किसान समुदाय को अधिकार, कार्य तथा वेतन के अनुसार वर्गों में बाँटने का प्रयत्न किया गया। इसके द्वारा आपसी प्रतिस्पर्धा, अधिकत्तम प्रयत्न तथा मनोवैज्ञानिक रूप से श्रेष्ठता के अनुभव का लाभ उठाना सम्भव था। 1933 में ही कृषि-कार्य को सात वर्गों में विभाजित किया गया। कार्यकुशलता की आवश्यकता और परिश्रम की मात्रा इस वर्गीकरण का आधार बनाये गये। प्रतिदिन का वेतन इस बात पर निर्भर करता था कि उस दिन किस वर्ग का काम किया गया। पहले वर्ग के कार्य के लिये आधा कार्य-दिवस जोड़ा जाता था। प्रत्येक ऊँचे वर्ग के लिये चौथाई कार्य-दिवस अधिक मिलता था। साल के अन्त में किसान द्वारा अर्जित कार्य-दिवस के योग [Total] के अनुसार पारिश्रमिक की मात्रा नापी जाती थी। 1948 में नया वर्गीकरण किया गया जिसमें नौ श्रेणियाँ थीं। प्रथम तथा अन्तिम श्रेणी के पारिश्रमिक की दर में पाँचगुना पारिश्रमिक का अन्तर था। इसके अतिरिक्त उत्पादन के लक्ष्य से अधिक काम करने वालों को और भी कार्य-दिवस का लाभ दिया गया। लक्ष्य तक न पहुँचने वालों का कार्य-दिवस काट लिया जाता था। उद्देश्य यह था कि सुस्ती और लापरवाही करने वालों को सजा देने के साथ अच्छे कार्य-कर्ताओं को पुरस्कृत किया जाय।

कोलखोज प्रबन्ध

'आरटेल के आदर्श नियम' के अनुसार कोलखोज का प्रबन्ध एकदम प्रजातन्त्रात्मक तरीके से होना चाहिये। प्रायः हरएक पदाधिकारी का चुनाव होता है। 16 वर्ष से ऊपर के सभी व्यक्तियों की एक आम सभा होती है। इसके द्वारा एक सभापति, प्रबन्ध समिति, अंकेक्षण समिति [Auditing Commission], वार्षिक आय-व्यय का अनुमान, वार्षिक उत्पादन लक्ष्यों का निर्धारण, कृषि बैंक से ऋण, राज्य तथा मशीन-ट्रेक्टर स्टेशन [मट्रस] के साथ समझौता इत्यादि सभी काम पर विचार तथा निर्णय किया जाता है। प्रबन्ध समिति के सभापति पर सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का उत्तरदायित्व रहता है। अगर आम सभा अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो सभापति को स्तीफा देना होगा। प्रबन्ध का यह चित्र प्रजातंत्रात्मक सिद्धान्त तथा स्वशासन [Self-government] का आदर्श रूप प्रतीत होता है। वास्तविकता में कोलखोज प्रबन्ध पर दो इतने शक्तिशाली प्रभाव हैं कि यह स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय अर्थहीन बन गया है।

राज्य का प्रभाव—सर्वव्यापी आयोजन पद्धति में राज्य का प्रबल प्रभाव कोलखोज पर पड़ना स्वाभाविक है। फैक्टरी तथा कोलखोज प्रबन्ध में राजकीय संचालन

[या हस्तक्षेप] लगभग एक ही तरह का मिलता है। अन्तर केवल यह है कि कारखाना में प्रत्यक्ष संचालन होता है : कोलखोज में आम सभा के जरिये अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की 'सलाह' पर विचार करके उनको सदा स्वीकार किया जाता है। रूसी लेखकों के अनुसार राज्य कारखानों का प्रबन्ध करता है किन्तु कोलख़ोज़ का केवल पथ-प्रदर्शन [guide] करता है। इस काम में गाँव की सोवियत, जिला सोवियत, मशीन ट्रेक्टर स्टेशन और कोलख़ोज समिति [The Council of Kolkhoz Affairs] की सहायता ली जाती है। मट्रस केवल भारी कृषि यन्त्रों को किराये पर देकर कोलख़ोज़ की सहायता नहीं करता, संगठन तथा अन्य समस्याओं पर विशेषज्ञ सलाह [expert advice] भी देता है। इसके द्वारा कोलख़ोज को कुछ भी मानने के लिये राजी किया जा सकता है क्योंकि विना यान्त्रिक सहायता के उत्पादन सम्भव नहीं होता। 1946 में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के आधीन कोलख़ोज समिति का निर्माण किया गया। इसका उद्देश्य कोलखोज संगठन, प्रबन्ध तथा कार्य-क्रम में सन्तुलन उत्पन्न करना है। कोलख़ोज में होनेवाले साधनों का अपव्यय, दुरुपयोग तथा अन्य बुराइयों को दूर करने के लिये समिति कार्यशील रहती है। विशेष निरीक्षकों [Inspectors] के द्वारा यह काम किया जाता है। राज्य के हितों के रक्षक की तरह इन निरीक्षकों का अधिकार-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। अतः कोलख़ोज़ प्रजातंत्र एक संचालित प्रजातंत्र [Controlled democracy] है जो वास्तविक शक्ति का प्रतीक न होकर, शासन प्रबन्ध की कला में शिक्षा देने का माध्यम है।

कम्युनिष्ट पार्टी का प्रभाव—कारखाना सङ्गठन की तरह कृषि-क्षेत्र में भी साम्यवादी दल की शाखाएँ प्रायः हर क्षेत्र में फैली है। गाँव, ज़िला के अतिरिक्त प्रत्येक कोलख़ोज में दल का सङ्गठन पाया जाता है। इतने दिन हो जाने पर भी ग्रामीण क्षेत्रों में आबादी का एक हिस्सा साम्यवादी दल का सदस्य नहीं बना है। इसलिये कोलख़ोज़ के साम्यवादी नेता बोलशेविक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप में काम करते हैं। कोलख़ोज़ की आम सभा या प्रवन्ध समिति के कार्यों की आलोचना करना और उनको सलाह देना इनका अधिकार है। समाजवाद के विस्तार के लिये आवश्यक समझ कर कोई भी काम करा लेना, इनके लिये कठिन नहीं।[1]

इन प्रभावों को सुदृढ़ तथा आसान बनाने के लिये 1950 से एक नई योजना चलाई गई। इसके अनुसार कोलख़ोजों की संख्या में कमी करना निश्चित हुआ। इसका प्रत्यक्ष कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभ प्राप्त करना था। अधिकारियों द्वारा यह भी

[1] राज्य तथा पार्टी के प्रभाव का सब से शक्तिशाली माध्यम मट्रस है। इसका अध्ययन उपयुक्त स्थान पर होगा।

बतलाया गया कि बड़े सामुदायिक फार्मों की मदद से सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र को समाजवादी ढाँचे में मिला लेना आसान होगा और कृषि-कार्य मे श्रम उत्पादकता [labour productivity] बढ़ सकेगी। इतना ही नहीं, अनावश्यक श्रम, कर्मचारी तथा प्रबन्धको मे कमी कर देने से कोलखोज अधिक लाभपूर्ण बन सकेंगे। ऐसा अनुमान है कि आफिस कर्मचारी तथा अफसरो की सख्या मे नई नीति के द्वारा 30% कमी की गई है। बड़े पैमाने पर कृषि सङ्गठन होने से विशाल कृषि नगर [Agricultural cities] का निर्माण निश्चित है। इस तरीके से गाँव और शहर के बीच का अन्तर कम किया जा सकता है। कोलख़ोज की सख्या मे कमी करने की प्रगति अत्यन्त तीव्र रही। 1950 मे 2,52,000 कोलख़ोज को एक साल के अन्दर 1,23,000 मे बदल दिया गया। अक्टूबर 1958 में कुल 78,000 सामुदायिक फार्म थे।

यह कहा जा सकता है कि सोवियत नेता सदा से ही कोलखोज को एक अस्थायी संगठन मानते थे। स्तालिन ने अपने प्रसिद्ध "रूस मे समाजवाद की समस्याएँ" [Economic Problems of Socialism in USSR][1] में यह आशा की थी कि सामुदायिक फार्म को धीरे-धीरे राष्ट्रीय सम्पत्ति मे बदल दिया जायगा जिससे फार्म का उत्पादन राज्य को सीधे मिल जाय तथा उसके बदले मे राज्य उन्हे निर्मित वस्तुएँ दे। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का पूर्ण राष्ट्रीयकरण ही सोवियत संघ का अन्तिम ध्येय है।

सोवख़ोज़ [Sovkhoz]

विकास—राजकीय कृषि फार्म को, गुणों तथा विशेषताओ के अनुसार अन्न उत्पादन के राजकीय कारखाने [State factories of agricultural produce] कहा जा सकता है। इन खेतो का प्रबन्ध औद्योगिक कारखानो की तरह होता है। क्रान्ति के बाद कृषि सङ्गठन का यह रूप साम्यवादियो को बहुत आकर्षक लगा। 1917 से 1932 तक राज्य की ओर से सोवख़ोज सगठन तथा विस्तार में पूरी सहायता दी गई। सार्वजनिक स्वामित्व तथा अन्य साम्यवादी सिद्धान्तो से सोवख़ोज का इतना सादृश्य था कि इसके विकास मे सैद्धान्तिक जोश का बहुत हाथ रहा। आदर्श फार्म के रूप मे भी यह महत्वपूर्ण थे। इनके द्वारा आधुनिक कृषि प्रणाली तथा सामुदायिक सगठन के लाभ प्रदर्शित किये जाते थे। क्रान्ति के बाद किसानो का खुला असहयोग और अन्न की भीषण कमी ने भी सोवख़ोज के प्रचलन मे बहुत मदद किया। प्रत्यक्ष रूप से, बिना किसानो की सहायता लिये, अन्न प्राप्त करने का सबसे अच्छा साधन राजकीय फार्म मालूम पड़े।

---

[1] Translated in "Current Digest of Soviet Press", November 22 1952, p. 23

राजकीय फार्म की प्रगति अत्यन्त तीव्र रही। 1918 से आरम्भ होकर 1928 में इनकी सख्या 1,400, औसत वार्षिक मजदूर 3,16,300, और जोती हुई जमीन का क्षेत्रफल 17,00,000 हेक्टर हो गया इसके बाद विकास का क्रम और बढा। 1932 मे यही ऑकडे इस प्रकार थे—सख्या 4,337, मजदूरो की सख्या 18,91,500 और जोती हुई जमीन का क्षेत्रफल 1,34,00,000 हेक्टर हो गया। इस समय से राजकीय फार्मों का अपव्यय, कुप्रबन्ध तथा अनार्थिक सचालन को दूर करने का प्रयत्न किया गया। इनके आकार और कार्य प्रणाली को पुष्ट तथा लाभपूर्ण बनाने के लिये नये फार्मों की स्थापना रोक दी गई। इस काम मे विशेष सफलता न मिलने का कारण सोवखोज का विशाल आकार और खराब भूमि थी। औसत राजकीय फार्म केन्द्रीय रूस मे 3,000 हेक्टर का और ओमस्क क्षेत्र मे 22,000 हेक्टर का पाया जाता है। आरम्भ के सोवखोज पुराने सामन्तो के विस्तृत खेतो पर स्थापित किये गये थे। किन्तु बाद मे नई भूमि को कृषि मे लाने के लिये इस संगठन का व्यवहार किया गया। पिछले चार सालो मे इन फार्मों के आकार तथा उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई। 150,00,000 हेक्टर नई भूमि इनके द्वारा खेती योग्य बनाई गई। बहुत बडे बजर भूमि के टुकडो पर सोवखोज स्थापित कर दिये जाते थे। स्वाभाविक है कि प्रबन्ध की कठिनाइयों के साथ-साथ बंजर भूमि का विकास महँगा पडता है। इतना सब होने पर भी सोवखोज का महत्व कम नहीं होने पाया। राजकीय फार्म पर पूँजी विनियोग इस प्रकार रहा : 1946-50 मे 4 2 मिलियर्ड रूबल; 1951-55 मे 15 7; और 1956-57 में 14 9। 1956 मे ६,000 से भी अधिक राजकीय फार्म थे। उनके अधिकार मे लगभग 121 मिलियन हेक्टर भूमि है जिसमें से 25 मिलियन हेक्टर पर खेती होती है। इनका यंत्रीकरण भी बहुत अधिक है। 1956 में **2**,57,000 ट्रैक्टर, 63,000 हारवेस्टर-कम्बाइन और 70,000 लारी इनके पास थीं। इनके महत्व का अनुमान इन ऑकडो से लगता है : 1956 मे 17% खेती योग्य भूमि इनके पास थी, राज्य की आवश्यकताओ मे से 27%, अनाज, 15%, मांस और 18% दूध इनसे प्राप्त होता था।

सोवखोज़ और कोलखोज़ मे अन्तर :

कृषि क्षेत्र मे सहयोगी होने पर भी सोवखोज तथा कोलख़ोज मे समानता पाना अत्यन्त कठिन है। राजकीय फार्म मे सहकारिता का कोई चिन्ह नही मिलता। किसी प्रकार का भी सोवख़ोज हो, इसके संगठन तथा प्रबन्ध में किसानो का सहयोग नहीं लिया जाता। एक कारखाने की तरह इसके प्रबन्धक राज्य द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और उनका उत्तरदायित्व भी राज्य की ओर रहता है। किसी एक प्रकार के उत्पादन या कृषि कार्य में ही सोवखोज पूरा ध्यान देते है। यह विशिष्टीकरण कोलखोज मे नहीं पाया जाता है। आजकल यह चेष्टा की जा रही है कि एक तरह के उत्पादन के साथ-साथ अन्य

सम्भावित दिशाओ मे भी इनको बढ़ाया जाय। कोलखोज एक एच्छिक समुदाय [Voluntary association] है जिसे किसान आपस में मिलकर बनाते हैं। राजकीय फार्म केवल राज्य बना सकता है। सोवखोज का प्रबन्ध ट्रस्ट और ग्लावूक [glavk] तथा सोवखोज मंत्रालय या अन्य मन्त्रालय करते हैं। इस प्रकार इनका प्रबन्ध निर्वाचित व्यक्तियो द्वारा न होकर राज्य द्वारा नियुक्त संस्थाएँ तथा व्यक्ति करते है। सोवखोज मे निजी भूमि, निवास-स्थान तथा अन्य मकानो के लिये भूमि मिलती है। उसकी मात्रा इतनी कम होती है कि इससे होने वाली आय [कोलखोज़ की तरह] सदस्यो की आर्थिक स्थिति का आधार नही होती। 1947 से पहले कर्मचारियो को 0·37 एकड़ तथा प्रबन्धको को 0 50 एकड भूमि मिलती थी, इनको बढ़ाकर अब 1·25 एकड़ कर दिया गया है। इसकी तुलना मे कोलखोज़ के सदस्यों को 2·5 एकड़ तक निजी भूमि मिलती है जिसमे निवास स्थान इत्यादि की भूमि शामिल नहीं की जाती। मजदूरों का सगठन कोलखोज से मिलता-जुलता है। मजदूरो को ब्रिगेड तथा ज़्वीनो मे बॉटकर काम कराया जाता है। वेतन के भुगतान मे विशेष अन्तर दिखलाई पडता है। राजकीय फार्म सीधे तौर पर काम के अनुसार [straight piece wages] रूबल मे वेतन देते हैं। यह तरीका एकदम कारखानों की तरह है। अच्छा काम करने वालो को प्रोत्साहन देने के लिये अपने वेतन का 10 से 30% तक बोनस दिया जा सकता है। श्रम के क्षेत्र मे एक बुनियादी भिन्नता मिलती है। सोवखोज़ मे काम करने वालो को मजदूर [worker] का पद तथा अधिकार मिलते है जो कि एकदम कारखाना मजदूर की तरह होते हैं। कोलखोज़ के सदस्य केवल किसान [Peasant] है। इनको मजदूरो से कम विकसित तथा महत्वपूर्ण समझा जाता है। अर्थ-व्यवस्था मे भी इनको मजदूरों के समान स्थान नही मिलता।

संगठन तथा प्रबन्ध

सोवखोज का संगठन तथा प्रबन्ध औद्योगिक ढाँचे पर किया गया है। एक क्षेत्र में, एक ही प्रकार का उत्पादन करने वाले सोवख़ोज एक ट्रस्ट मे बॉधे जाते है। अधिकतर यह ट्रस्ट सोवख़ोज़ मत्रालय के केन्द्रीय बोर्ड [Central Board of the Ministry of Sovkhozy] के आधीन कार्य करते है। इन केन्द्रीय बोर्ड को ग्लावूक [glavk] कहा जाता है। कुछ विशेष वस्तुओ के उत्पादन करने वाले सोवख़ोज अन्य मंत्रालयो से भी सम्बन्धित रहते है।

कारखाने की तरह एक-व्यक्ति-प्रबन्ध [one-man-management] सोवखोज में अपनाया गया है। इसका संचालक [director] विशेष अधिकारप्राप्त राज्य कर्मचारी होता है। फार्म की पूरी जिम्मेदारी इसको उठानी पड़ती है। संचालक

को अधिक स्वतत्रता देने के लिये, उसके ऊपर से स्थानीय सोवियत शासन का अधिकार हटा दिया गया।

आर्थिक प्रबन्ध, हिसाब-किताब और लागत लेखा [cost accounting] के लिये प्रशिक्षित एकाउन्टेन्ट तथा आडीटर को सोवखोज का मुख्य अफसर माना जाता है। सोवखोज संगठन मे कम्युनिस्ट पार्टी तथा मजदूर संघ का अपना अलग अस्तित्व होता है। इनके काम करने का ढङ्ग और अधिकार प्रायः उसी प्रकार के है जैसा औद्योगिक क्षेत्र मे मिलता है।

सोवखोज़ सगठन मे कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन 1954 मे किये गये। सिद्धान्त रूप में यह निश्चित किया गया कि प्रत्येक राजकीय फार्म लाभदायक उद्यम [enterprise] होना चाहिये। इसके लिए यह कदम उठाए गये : [1] सोवखोज मुद्रा-प्रणाली मे अपना हिसाब रखे जिससे लागत नियंत्रण [cost control] सभव हो सके। [2] अपने ही साधनो से हर फार्म अपने सभी खर्चे पूरा करे। इस दृष्टि से 1954, अप्रैल से राजकीय अनुदान [state subsidy] बद कर दिया गया। [3] फार्म के उत्पादन की मूल्य-निर्धारण प्रणाली बदल दी गई। नई प्रणाली मे सभी फार्म पृथक क्षेत्रो [zones] मे बॉटे गये। हर क्षेत्र में मूल्य-निर्धारण अलग-अलग होता था। उत्पादन की लागत पर ध्यान रखते हुए मूल्य का स्तर इतना रखा जाता था कि हर फार्म को कुछ लाभ हो सके। चूँकि सोवखोज को अपनी आय से ही सम्पूर्ण खर्च पूरा करके आवश्यक कोष भी बनाना पड़ता था, इसलिये यह तरीका बडा सफल रहा। सोवियत फार्म को लाभपूर्ण बनाने के साथ कृषि आयोजन प्रणाली मे भी परिवर्तन किया गया। इसके द्वारा फार्मों को अपना साधन देखते हुए कई बातो का निर्णय करने का अधिकार दिया गया जैसे, जोताई का क्षेत्रफल, कृषि उत्पादकता, पशुओ की संख्या, पशु-उत्पादन इत्यादि। इन सब परिवर्तनो से राजकीय फार्म के प्रबन्धको पर अच्छा प्रबन्ध-संगठन का पूरा उत्तरदायित्व आ गया और इसके लिये काफी प्रोत्साहन भी मिला।

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन [मट्रस]

कृषि विकास के लिए, आधुनिक यात्रिक सहायता केन्द्रीय रूप से दी जाती है। मट्रस राजकीय संस्थाएँ है जिनका मुख्य काम सामुदायिक फार्मों को सहायता करना है। इसकी अन्य सहायताओं में सिचाई, सड़क निर्माण, कुएँ-तालाब बनाना, चरागाह की उन्नति तथा नई भूमि खेती योग्य बनाना उल्लेखनीय है। प्रायः हर प्रकार की बड़ी मशीनें राज्य की ओर से इन केन्द्रो को दी जाती है। लगभग 20 लाख कर्मचारी, इञ्जीनियर, तथा कृषि-विशेषज्ञ मट्रस मे काम करते हैं। इनकी सहायता तथा सलाह निःशुल्क

[free] नही होती। कोलखोज और मट्रस के आपसी प्रसविदा [contract] के द्वारा मशीनो की आवश्यकता, समय, कार्यकाल तथा किराया तय होता है। यह किराया उत्पादन के एक अंश मे दिया जाता है इसकी औसत मात्रा विभिन्न क्षेत्रो मे उत्पादन के 15 से 20% तक होती है। कुछ सेवाओं का भुगतान नगद भी होता है।

पहला मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन 1928 मे स्थापित किया गया। 1956 मे लगभग 9,000 स्टेशन सारे देश मे फैले थे। इनकी प्रगति अत्यन्त तीव्र रही। 1930 में मट्रस के पास कुल 25,000 ट्रैक्टर और सात हारवेस्टर-कम्बाइन [harvester-combine] थे। 1955 मे 11,09,000 ट्रैक्टर तथा 2,80,000 हारवेस्टर-कम्बाइन तथा विविध प्रकार की अन्य मशीने काम मे लगी थी।

मट्रस का उद्देश्य बहुमुखी है। सामुदायिक उत्पादन विकास मे यह प्रबल शक्ति बन गई। कोलखोज प्रबन्ध तथा सचालन मे भी इनका महत्वपूर्ण प्रभाव रहता है। राज्य के वित्त [fiscal] व्यवस्था का यह विशेष अङ्ग है।

यह सगठन रूस के कृषि संचालन का एक विभाग है फिर भी एक कारखाने की तरह इसका प्रबन्ध आर्थिक सिद्धान्तो पर किया जाता है। लेकिन लागत-प्रणाली [cost accounting] इसमे लागू नही होती। पूँजी केन्द्रीय बैङ्क से मिलती है परन्तु कारखाने की तरह निर्णय तथा काम की स्वतत्रता नही होती।

मट्रस का प्रबध-सङ्गठन सोवखोज से मिलता है। कृषि मत्रालय को मट्रस केन्द्रीय बोर्ड [glavk] 1947 मे स्थापित की गई। इसके द्वारा सभी स्टेशनो के बीच संतुलन, कोलखोज से सम्बन्ध तथा राजकीय नीति निर्धारण किया जाता है। एक स्टेशन 5 या 6 कोलखोज का काम देखता है। मट्रस और सदस्य कोलखोज के प्रतिनिधियों की एक समिति घनिष्ट आपसी सम्बन्ध स्थापित करने के लिये काम करती हैं। प्रत्येक मट्रस मे एक संचालक के साथ तीन सह-संचालक और एक एकाउन्टेन्ट रहता है। सह-सचालकों में राजनैतिक कार्यकर्ता [political worker], कृषि-वैज्ञानिक [agronomist] और इञ्जीनियर-मिस्त्री [engineer-mechanic] नियुक्त होते है। इनको उच्च वेतन पाने वाले राज्य कर्मचारी माना गया है। अन्य कर्मचारियो को निश्चित वेतन दिया जाता है। काम के बॅटवारे की सुविधा के लिये अनेकों ट्रैक्टर-ब्रिगेड बनाये जाते है। एक ब्रिगेड मे तीन या चार ट्रैक्टर तथा अन्य आवश्यक यत्र होते है। प्रत्येक ट्रैक्टर संचालक [operator] ब्रिगेड की सबसे छोटी इकाई होती है। मिले हुए काम को ब्रिगेड इनमे बॉट देता है जिससे मशीनो का अधिकतम प्रयोग हो सके।

कृषि आयोजन में नई धाराएँ

जोसेफ स्तालिन की मृत्यु के बाद से देश मे परिवर्तनो का नया युग आरम्भ

हुआ। कृषि क्षेत्र पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। दिसम्बर 1958 में ख्रुश्चेव ने पिछले पाँच सालों के कृषि विकास पर एक रिपोर्ट तैयार किया जिसमें कई धाराओं पर विशेष ध्यान दिया गया। वर्तमान योजना में कई परिवर्तन तो स्थान भी पा गये। यह आशा की जाती है कि योजना के समाप्त होने तक [1965] कृषि संगठन और प्रबन्ध का ढाँचा एकदम बदल जायगा। इन परिवर्तनों के लिए सारा श्रेय ख्रुश्चेव को नहीं मिलना चाहिये। मृत्यु के कुछ ही पहले स्तालिन ने कृषि-क्षेत्र को नई चेतना देने के लिए तीन उपाय बतलाये थे—[1] कोलखोज की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध, [2] राजकीय संचालन में वृद्धि, तथा [3] कृषि में लगभग उन्हीं सिद्धान्तों को लागू करना जो उद्योग में सफल सिद्ध हो चुके थे।[1]

कोलखोज तथा मट्रस : यह अनुभव किया गया कि देश के कृषि-विकास में वह स्तर आ चुका है जब कि मट्रस और कोलखोज को मिला देना चाहिये। खेती पर इन संस्थाओं का दोहरा संचालन [dual control] रुकावट बन गया है। मट्रस की कुछ अपनी कमजोरियाँ भी इस निर्णय का कारण थीं। अनावश्यक मात्रा में मशीनों का संग्रह केवल प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए किया जाने लगा। मशीनों के लिए पूरा काम नहीं मिलता था। कोलखोज के विलयन [merger] की नीति से साधन इतने बढ़ गये थे कि सामुदायिक फार्म अपनी निजी मशीनें रखना पसन्द करने लगे। यह भी विश्वास किया जाता है कि कोलखोज के साधनों को राष्ट्रीय काम में लगाने का यह आसान तरीका होगा। मशीनों का भुगतान पा कर राज्य की आर्थिक सहायता होगी।

सामुदायिक तथा राष्ट्रीय संपत्ति : साम्यवाद के उच्चतम विकास के लिए आवश्यक है कि उत्पादन के सभी साधन राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दिये जायँ। सामुदायिक फार्म की सम्पत्ति एक समूह [group] की सम्पत्ति है जिसे सच्चा समाजवादी रूप नहीं माना जा सकता। इसलिए कोलखोज को पूर्ण राजकीय स्वामित्व में बदलना होगा। यह उसी समय हो सकता है जब सामुदायिक फार्म को राजकीय फार्म में बदल दिया जाय। मट्रस की संस्था को तोड़कर मशीनों को कोलखोज को बेचना उस दिशा में पहला क़दम है।

समय के साथ कोलखोजों के अविभाजनीय कोष [indivisible fund] ने विशाल आकार ग्रहण कर लिया है। 1932 में कुल सामुदायिक फार्मों के पास इस कोष में 4·7 बिलियन रूबल था। इस समय लगभग 100 बिलियन रूबल है। इस धन-राशि को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित करने के लिए आन्दोलन चलाया गया है। सातवीं योजना ने कोलखोज और राष्ट्रीय सम्पत्ति को सहयोगी मान कर साथ रखा है।

---

[1] "Economic Problems of Socialism in Russia, Op. Cit."

1959-1965 में कृषि पर लगभग 500 विलियन रूबल खर्च होगा जिसका 70% कोलख़ोज़ की सम्पत्ति से लिया जायगा।

इसके अतिरिक्त, अविभाजनीय कोष को सार्वजनिक रूप में लगाने का एक और तरीका अपनाया जा रहा है। अन्तर-कोलख़ोज़ [inter-kolkhoz], औद्योगिक तथा अन्य निर्माण में इसका उपयोग होगा। एक क्षेत्र के कई सामुदायिक फार्म आपसी आवश्यकता के काम पूरे करेंगे और इसका खर्च अविभाजनीय कोष से आयेगा। इनके मुख्य काम है—बिजलीघर निर्माण, सड़क, सिचाई, कृषि उत्पादन को रखने के लिए कोल्ड-स्टोरेज [Cold Storage], कृषि के कुछ उद्योग [चीनी मिल, एल्कोहल, कैनरी, दूध तथा मास के उद्योग] अन्न संग्रह स्थान [elevators], स्कूल, अस्पताल इत्यादि। यह केवल योजना ही नहीं है। 1958 के अन्त तक इन पर 102 विलियन रूबल खर्च हो चुका है।[1]

निजी भूमि तथा पशु—व्यक्तिगत सम्पत्ति का यह अवशेष भी शीघ्र ही मिट जायगा। दिसम्बर 1958 में ख्रुश्चेव ने इनको अनावश्यक तथा "प्राचीन-काल की वस्तु" कहा और सोवख़ोज मे इस प्रथा को उठा देने की सलाह दी। इस काम के लिए कोई समय निश्चित नहीं किया गया है। फिर भी, इसमे संदेह नही कि कोलख़ोज की निजी-भूमि के 20 मिलियन टुकड़े ज्यादा समय तक व्यक्तिगत स्वामित्व मे नही बचेगे। इन पर पलने वाले करोड़ो पशु भी राज्य द्वारा खरीदने की योजना है। इस प्रकार किसानो की आय के दोनो मुख्य साधन उनसे छिन जायँगे।

आर्थिक साधन तथा वेतन प्रणाली—1953 से कोलख़ोज के आर्थिक साधन बढ़ाने के लिए अनाज खरीदने का सरकारी मूल्य बढ़ा दिया गया। अधिक उत्पादन के साथ यह मूल्य वृद्धि तथा अन्य सुविधाओ ने सामुदायिक फार्म की मौद्रिक आय को काफी बढ़ा दिया : 1953–49·6 विलियन रूबल, 1955–75 और 1956-94·6। किसानो के आर्थिक प्रोत्साहन [material incentive] की नई विधियो की खोज हो रही है। मार्च 6, 1956 में एक आज्ञा द्वारा वेतन तथा दूसरे पारिश्रमिक निर्धारित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता कोलख़ोज को दी गई। वेतन प्रणाली के कई नये रूपों पर विस्तृत परीक्षण किया जा रहा है। कोशिश यह है कि किसानों को निश्चित वेतन मिले [regular guaranteed payment]। अलग-अलग कोलख़ोज इस लक्ष्य की प्राप्ति मे प्रयत्नशील हैं। इसका एक प्रचलित तरीका है जिसमें महीने के आरम्भ में निश्चित धन किसानो को दे दिया जाता है [Monthly Payment in Advance System]। इसका आधार पिछले महीने मे उपार्जित कार्य-दिवस [work-days] होते है। 1956 में देश के 40% कोलख़ोज इस प्रणाली का प्रयोग कर रहे थे।

---

1 Bulletin . Institute for the Study of the U.S.S.R May, 1959, p. 41

श्रमिक संघ संगठन तथा प्रबन्ध

रूस मे श्रमिक संघ के वही अर्थ नहीं माने जाते जैसा कि पश्चिमी देशो में समझा जाता है। मजदूरो के सगठित प्रतिनिधि के रूप मे उनके अधिकार तथा सुविधाओं के लिये प्रयत्नशील रहना, रूस मे कोई महत्व नहीं रखता। सरकार मजदूरो से बनी है। कारखाना सरकार के है इसलिये मजदूर अपने आप ही बनाये नियमो के अनुसार अपने लिये ही काम करता है। सिद्धान्त मे, इस ढाँचे के अन्दर शोषण हो ही नही सकता। समाज कल्याण को देखते हुए राज्य जितना वेतन और सुविधाएँ दे सकता है, अपने आप दे देगा। इससे अधिक 'माँगना' समाज के हितो के विरुद्ध होगा। जो भी राज्य देना तय करे उसे 'स्वीकार' करना ही मजदूरो का कर्तव्य है।

क्रान्ति के बाद राज्य तथा श्रमिक संघ के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर बहुत मतभेद था। एक वर्ग यह मानता था कि श्रमिक सघ को स्वतंत्र काम करने देना चाहिये। 1922 के श्रमिक सघ काग्रेस ने इसी विचार को उचित माना और इसी के आधार पर श्रमिक नियम [Labour Code] बनाया गया। किन्तु स्तालिन के सचालन मे दूसरे वर्ग ने श्रमिक सघ तथा राज्य के घनिष्ठ सम्बन्ध को ही ठीक माना। राजशक्ति पाने के बाद, प्रथम योजना के आरम्भ [1928-1929] से ही पुरानी नीति को एकदम उलट दिया गया और इस वर्ग के नेता, टाम्स्की [Tomsky] को पदच्युत कर दिया गया। उस समय से रूसी श्रमिक सघ राज्य के एक अग की तरह काम करते हैं।

इस राजकीय प्रभाव से श्रमिक संघ के कुछ बुनियादी गुण उत्पन्न हुए। राज्य ने इनको अपनी सुविधा और इच्छा के अनुसार प्रयोग किया। असर यह हुआ कि श्रमिक सघ कानून और व्यवहारिक कार्य-प्रणाली [Law and practice] में अन्तर लगातार बढ़ता गया। धीरे-धीरे आजकल यह स्थिति आ गई कि श्रमिक संघ के कानून को पढ़ना ही बेकार हो गया है। राजनैतिक कारणो में इनको बदला नहीं गया। इनमें लिखी उदार बाते तथा अधिकारो की सूची देखकर धोखे मे न पड़ना चाहिये। असलियत मे आजकल श्रमिक संघ के दो विशेष कार्य हैं। मजदूरो को कठोर अनुशासन मे रखना [Labour discipline] और मजदूरो को मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध। प्राय: अन्य सभी काम मे राज्य से प्राप्त 'सलाह' को स्वीकार किया जाता है।

श्रमिक संघ का विकास : पुराने रूसी शासन मे इसका जन्म हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त मे होने वाली हड़तालो के कारण ही श्रमिक संघ बनाये गये थे। पहला श्रमिक सघ कीव [Kiev] मे 1903 मे बना। लेकिन वास्तविक आरम्भ 1905 के आन्दोलन से माना जाता है। 1905 के अन्त तक 199 श्रमिक संघ बन चुके थे।

इनकी सख्या 1906 मे 453 और 1907 मे 652 हो गई। इस समय इनके 2,45,000 सदस्य थे। 1906 मे प्रथम अखिल-रूसी श्रमिक सघ सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के प्रभाव से श्रमिक सघ को वैधानिकता तो मिल गई किन्तु राष्ट्रीय सगठन बनाने का अधिकार नही दिया गया। अक्टूबर क्रान्ति के बाद कम्युनिस्ट सरकार ने श्रमिक सघ का संचालन ले लिया। अनेक शासन सुधार तथा शुद्धि [purges] से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की गई कि केवल साम्यवादी ही ऊँचे पदो पर नियुक्त हो सके। इसका प्रबल राजनैतिक विरोध हुआ। 1955 तक स्तालिन इसे दबाने मे सफल हुआ और राज्य तथा श्रमिक सघ का स्थायी गठबन्धन हो गया। इतना होने पर भी श्रमिक सघ सगठन तथा कार्य-प्रणाली में स्थिरता न आने पाई। समय-समय पर होने वाले परिवर्तन कभी सतुलन नही आने देते। 1930 मे 23 श्रमिक सघ थे और इनकी संख्या बराबर बढ रही थी: 1931-45, 1934-154, 1939-168, 1948 के बाद इनमे फिर संकुचन आरम्भ हुआ। 1948-136, 1954-43, 1957-47। नये पुनर्सगठन मे इनकी सख्या केवल 23 रह जायगी।

श्रमिक सघ की सदस्यता ऐच्छिक [Optional] है लेकिन मजदूरो को इसका सदस्य बनना ही पडता है। 1957 मे 5,00,00,000 श्रमिको मे से 4,71,00,000 सघ के सदस्य थे। बचे हुए श्रमिक या तो नये थे या अस्थायी।

श्रम सघ का सगठन—सोवियत श्रमिक सघ सगठन का आधार एक उद्योग होता है। उस उद्योग मे काम करने वाले सभी व्यक्ति [मजदूर, कर्मचारी, अफसर तथा संचालक] एक सघ के सदस्य होगे। प्रजातत्रात्मक केन्द्रीयकरण [Democratic Centralism] से इनका सचालन होता है। फैक्ट्री समिति से लेकर केन्द्रीय समिति तक प्रत्येक पदाधिकारी का चुनाव किया जाता है। सदस्य अपनी मासिक आय का 1% शुल्क के रूप मे देते है। सदस्यता ऐच्छिक है फिर भी श्रमिक सघ के सदस्य बनने पर कुछ विशेष लाभ प्राप्त होते है। काम मिलने मे प्राथमिकता इसमे मुख्य है। सामुदायिक समझौते [Collective Agreement] के अनुसार सघ के सदस्यो को पहला अवसर देने के लिये बाध्य किया जाता है। अगर ऐसी हालत आ जाय कि कर्मचारियो की संख्या मे कटौती करना पडे, तो सघ के सदस्य सबसे बाद मे निकाले जायँगे। सामाजिक बीमा की सुविधाओ मे भी इनको ऊँची दर पर लाभ मिलता है।

श्रमिक सघ के आधार पर तीन सगठन होते है। उद्योगो में फैक्टरी समिति, आफिस तथा अन्य सस्थाओ मे स्थानीय समिति, और फैक्ट्री की दुकानो के कर्मचारियो के लिये [यदि उनकी संख्या 100 से अधिक है] दुकान समिति। इनमें से प्रत्येक, एक नेता [Group Steward], एक सामाजिक बीमा एजेन्ट तथा एक मजदूर इन्स्पेक्टर का चुनाव करती हैं। अखिल सोवियत श्रमिक संघ काग्रेस देश भर के संघों की उच्चतम

सस्था है। कार्य-भार सँभालने के लिये यह काग्रेस एक अखिल सोवियत श्रमिक संघ की केन्द्रीय समिति [All Union Central Committee of Trade Unions or AUCCTU] चुनती है। वास्तविकता मे काग्रेस कभी-कभी ही बुलाई जाती है। 1912 और 1949 के बीच एक बार भी काग्रेस नहीं बुलाई गई जबकि विधान के अनुसार चार वर्षों मे काग्रेस का इकट्ठा होना जरूरी है। श्रमिक सघ की केन्द्रीय समिति का निर्णय सभी सदस्यो पर अनिवार्य होता है। दैनिक कार्य के लिये यह समिति एक प्रेसिडेन्ट, एक सिक्रेट्री तथा एक चेयरमैन चुनती है। केन्द्रीय समिति विभिन्न विभागो द्वारा कार्य-सचालन करती है जैसे सगठन विभाग, सामाजिक बीमा, वेतन, श्रमिक सुरक्षा, मकान, सास्कृतिक तथा शिक्षा, वित्त, विधान, कसरत तथा खेल, और लेखा के विभाग, सेना-टोरियम तथा विश्राम गृह विभाग, तथा कार्य-कारिणी-शासन विभाग।

श्रमिक संघ के कार्य—1949 मे श्रमिक संघ विधान कम्युनिस्ट पार्टी ने बनाया। 1954 मे कुछ परिवर्तन के साथ इनको फिर से स्वीकार किया गया। दिसम्बर 1957 में इनको सरकारी तौर पर मान्यता दी गई। इसके अनुसार श्रमिक सघ के मुख्य कार्य है : [1] मजदूर तथा अन्य कर्मचारियो मे समाजवादी प्रतिस्पर्धा का सिद्धान्त फैलाना; [2] श्रम-उत्पादकता को अधिकतम प्रोत्साहन देना; [3] योजना के लक्ष्यो की पूर्ति और लक्ष्य से अधिक उत्पादन; [4] उत्पादन के गुण [quality] में उन्नति; [5] उत्पादन के लागत मे कमी, [6] आर्थिक साधनो का अधिकतम प्रयोग; [7] वेतन निर्धारण मे सहयोग; [8] कारखाने के साथ सामुदायिक समझौता करना, [9] सामाजिक बीमा तथा जन कल्याण के कार्य का प्रबन्ध, [10] सदस्यो की शिक्षा, प्रशिक्षण [Training] तथा समाजवादी सिद्धान्तो की जानकारी बढाना, [11] स्त्रियो को औद्योगिक और सामाजिक जीवन मे आकर्षित करना, तथा [12] मजदूरो के प्रतिनिधि के रूप मे उनको समस्याओ का अध्ययन करना और सुझाव देना।

इन कामो मे सामुदायिक समझौता [Collective Agreement] रूसी श्रमिक सघ की विशेषता है। कारखाने मे काम करने वाले मजदूरो के प्रतिनिधि की तरह, श्रमिक सघ कारखाने के साथ यह समझौता करता है। इसके द्वारा कारखाना प्रबंध और मजदूर दोनो ही कुछ कर्तव्य-पालन की प्रतिज्ञा करते है जिससे [1] योजना के लक्ष्य पूरे हो सके, [2] मजदूरो के काम के वातावरण में सुधार हो, और [3] मजदूरो का जीवन-स्तर ऊँचा उठे।

अध्याय ११

रूसी योजनाएँ

[Russian Plans]

रूसी योजनाएँ

जोसेफ स्तालिन के सचालन मे कृषि-प्रधान, पिछड़ा हुआ, दुर्बल रूस औद्योगिक, विकसित तथा शक्तिशाली बनने के लिये उद्यत हुआ। प्रगति के नये मार्ग की खोज हुई, जो इतना प्रशस्त और व्यापक था कि ससार चकित हो उठा। इस मार्ग का नाम था 'राष्ट्रीय योजना' और लक्ष्य था देश के सभी अङ्गो का सयोजित तथा सतुलित विकास। कौन जानता था कि प्रगति की ओर अग्रसर होने की यह प्रणाली एक दिन संसार के सभी अविकसित देशो का आदर्श बन जायगी। इतना ही नहीं नाजी जर्मनी को तोड़कर पाशविकता से सारे संसार को बचाने का श्रेय योजनाओ को ही है। यदि 1940 तक रूस की दो योजनाएँ पिछले 60 वर्ष के पिछलेपन को दूर न करती तो आज इतिहास नए तरह से लिखा गया होता। इस प्रणाली की सफलता एवं आवश्यकता मे अब सदेह करना अज्ञानता का परिचायक होगा। समय के साथ योजना प्रणाली मे इतनी प्रगति हो चुकी है कि सकटकाल में तो इसी के एक रूपान्तर का सहारा प्राय: सभी पूँजीवादी देशो ने लिया। सैद्धान्तिक तनातनी और 18वीं शताब्दी की अर्थहीन आदर्शवादिता से प्रेरित होकर अभी भी विश्व के विचारक रूसी ढङ्ग की योजना को उसका उचित स्थान नही देते। रूस, और अभी हाल में चीन, की सफलता को देखते हुए यह विचारधारा अनुचित प्रतीत होती है।

गोयलरो योजना [Goelro Plan]

रूस में व्यवहारिक योजना का सूत्रपात लेनिन के द्वारा किया गया था। उसके विचार से रूस मे समाजवाद स्थापित करने का एकमात्र उपाय देश की आर्थिक व्यवस्था को विद्युतकरण के आधार पर पुनर्संगठित करना था। बिजली पर मशीनो का उत्पादन निर्भर करता है जिनके बिना समाजवादी औद्योगीकरण और सैनिक शक्ति नही बन सकती। लेनिन का प्रसिद्ध फार्मूला था कि साम्यवाद सोवियत शक्ति तथा सम्पूर्ण देश के विद्युतकरण का योग है [Soviets plus Electicity equals Commu-

nism]। इसी कारण से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का काम लेनिन ने अपने सामने देश के विद्युतकरण की योजना [Electrification-Plan] के रूप मे आरम्भ किया। राज्य के स्थायी अङ्ग की तरह एक योजना सगठन का सूत्रपात इस काम के लिये किया गया। इस आयोजन संस्था को राजकीय विद्युतकरण आयोग [State Commission for Electrification] अथवा गोयल्रो [Goelro] कहते हैं। गोयल्रो मार्च 1920 मे स्थापित हुआ और दिसम्बर 1920 मे इसकी योजना को स्वीकृति मिली। फरवरी 1921 मे इसे गासप्लान से मिला दिया गया। इसके अनुसार 10 से 15 वर्षों के बीच सारे देश मे विद्युनशक्ति पहुँचा दी जायगी। इसका उद्देश्य था कि 30 नये बिजलीघर बना कर विद्युत उत्पादन की क्षमता 1 75 मिलियन किलोवाट बढा दी जाय और पुराने बिजलीघरों की नये नक्शे के अनुसार मरम्मत हो। इसका प्रभाव, यह अनुमान किया गया था कि योजना काल मे औद्योगिक उत्पादन 1913 का लगभग दूना हो जायगा। क्रान्ति के पहले रूस के उद्योग बिजली का अधिक प्रयोग नहीं करते थे। 1913 मे रूसी बिजलीघरो की उत्पादन शक्ति कुल 1·1 मिलियन किलोवाट थी और वार्षिक उत्पादन 1·9 बिलियन किलोवाट-घण्टे [kwh]। धन, सगठन, अनुभव तथा विरोध की कठिनाइयों को झेलते हुए इस योजना ने 1930 तक करीब-करीब अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लिया। इस समय तक औद्योगिक उत्पादन 1913 का लगभग दुगना हो गया था। 1931 के मध्य तक नये बिजलीघर बन गये और 1932 मे बिजली का उत्पादन भी योजना से अधिक होने लगा। 1935 में इस 15 वर्षीय योजना की पूर्ण सफलता घोषित की गई। उस समय तक औद्योगिक उत्पादन 1913 का 5·7 गुना और बिजली का उत्पादन 14·5 गुना अधिक होने लगा।

आगे आने वाली योजनाओं मे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की प्रगति के साथ विद्युत शक्ति पर पूरा ध्यान रहा। प्रथम योजना मे 2 97 मिलियन किलोवाट की नई उत्पादन शक्ति स्थापित हुई; दूसरी योजना मे 3·6; चौथी में 8·5 और पाँचवी में 17·6 मिलियन किलोवाट की नई उत्पादन शक्ति स्थापित की गई। छठी योजना में लगभग 40 मिलियन किलोवाट विद्युत-शक्ति की स्थापना होगी। 1957 के आरम्भ में रूसी बिजलीघर की उत्पादन शक्ति 43 मिलियन किलोवाट अथवा 1913 का 39 गुना बढ़कर हो गई। इस प्रगति मे लगभग 300 बडे बिजलीघर स्थापित हुए जिनमे 10 जल-विद्युत केन्द्र थे। इस प्रकार रूस तेजी के साथ संयुक्त राज्य अमरीका को पकडने की कोशिश कर रहा है। 1913 मे संयुक्त राज्य अमरीका रूस से 11·8 गुना अधिक बिजली पैदा करता था। यह संख्या घटकर 1932 मे 7 4 और 1957 मे कुल 3·4 गुना रह गई। 1959-65 की सप्तवर्षीय योजना मे यह आशा की जाती है कि बिजली का उत्पादन लगभग 575 बिलियन-किलोवाट-घण्टे हो जायगा।

बिजली का उत्पादन और महत्व[1]

वर्ष	उद्योग मे विद्युत शक्ति का उपयोग		औसत वार्षिक श्रम सख्या [उद्योग मे]		प्रति औद्योगिक श्रमिक द्वारा बिजली का उपयोग		औद्योगिक श्रम की उत्पादन शक्ति [Labour Productivity]
	बिलियन kwh	%	हजार	%	kwh	%	%
1928	3.3	100	3,124	100	1,056	100	100
1932	8.7	264	6,007	192	1,448	137	141
1937	24.4	740	7,924	254	3,079	292	258
1940	32.1	973	8,290	265	3,872	367	343
1950	60.6	1,836	11,208	362	5,319	507	470
1955	113.3	3,433	14,281	457	7,399	751	679
1956	126.0	3,818	15,180	486	8,300	786	726

प्रथम पंचवर्षीय योजना [1928-1932]—६ वर्ष की विस्तृत खोज घोर विवाद और अथक परिश्रम के बाद इसका जन्म हुआ। यह एक प्रयोग था जिसमे प्रथम प्रयास के उत्साहपूर्ण विश्वास और अनुभवहीनता की त्रुटियाँ थी, इसलिये असन्तुलन के साथ क्षमता से अधिक काम करने की आशा इसके प्रत्येक क्षेत्र मे दिखलाई पड़ती है। इनको योजनाकर्ताओ ने देखा और आगे आने वाले प्रयत्नों मे इनका संशोधन किया।

प्रथम योजना का आम उद्देश्य एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना था जिसमें उत्पादन शक्तियो का अधिकत्तम विकास हो और सयोजित रूप से मजदूरो की दशा मे सुधार हो।[2] नवीन आर्थिक नीति का पुर्नसंगठन और समाज का औद्योगिकरण के

---

1 "Problems of Economics", October 1958. p 16,

2. V. V. Obolensky-Ossinsky : World Social Economic Planning p. 330

आधार पर पुनर्निर्माण का मार्ग अपनाया गया। आरम्भ में तो उद्योगों को केवल संकेत द्वारा निर्देशित किया गया, जोकि शीघ्र ही कठोर आज्ञाओं में बदल गए। पूँजीवाद के समूल विनाश के प्रयत्न का चिन्ह इसके हर अंग में दृष्टिगोचर होता है विशेषकर कृषि-क्षेत्र में जहाँ कि इसकी जड़ें दृढ़ता के साथ जमने लगी थीं। सिद्धान्त रूप से यह अटल विश्वास बन चुका था कि पूँजीवाद और समाजवाद साथ-साथ नहीं चल सकते। यह आवश्यक है कि इनमें से एक का ही सहारा लिया जाय। यह कहा जा सकता है कि इसपर और भविष्य की योजनाओं पर राजनीति की छाप गहरी थी। राजनैतिक तथा सैनिक उद्देश्य के आगे आर्थिक योजना के दूसरे सभी पहलुओं का समर्पण हुआ।[1] जन-कल्याण के लिये समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना प्राथमिक उद्देश्य न रही। इस प्रकार बुनियादी तौर पर प्रथम योजना गृह-युद्ध की सैनिक प्रणाली का विस्तार था या यों कहा जाय कि यह दूसरी क्रान्ति थी जिसे स्तालिन ने सफलतापूर्वक पूरा किया। पहली क्रान्ति में लेनिन ने राजसत्ता प्राप्त कर नए रूस का निर्माण किया। दूसरे में स्तालिन ने देश के औद्योगिक और सैनिक क्षेत्रों को मूलरूप से बदलकर नई समाजवादी राज्यसत्ता को स्थायी बनाया। लेनिन ने जारशाही का अन्त किया और विदेशी शत्रुओं से देश की रक्षा की, स्तालिन ने देश के अन्दर के उन सभी केन्द्रों को उखाड़ फेंका, जिसमें नए विचारधारा के शत्रुओं का सृजन और पोषण हो सकता था। दो आधारभूत विचार योजनाकर्त्ताओं के मन में जमे : प्रथम किसी भी मूल्य पर शीघ्रतम औद्योगीकरण अतिआवश्यक है, द्वितीय सोवियत कृषि का समूल पुनर्संगठन से कम कोई भी प्रयत्न इस औद्योगीकरण को आगे बढ़ाने के लिये आवश्यक अन्नकोष नहीं बना सकता।

यह सब परिवर्तन जनता पर ऊपर से लादा गया। 1917 की क्रान्ति समाज के निम्नतर स्तरों को उत्तेजित करके उत्पन्न की गई थी, स्तालिन ने दूसरी क्रान्ति उच्चतम स्तर से आरम्भ किया और सारे देश को उसमें सम्मिलित होने के लिये बाध्य किया। कटुता, रक्तपात और असम्भव को सम्भव बनाने वाली सफलता इसी का परिणाम था।

कृषि क्षेत्र में प्रथम योजना ने बड़े महत्वपूर्ण कदम उठाये। यह पूर्णतया निश्चित हो गया कि कृषि का स्थान केवल उद्योगों के बाद ही नहीं आता, वरन् कृषि का उद्देश्य हर प्रकार से उद्योगों को सहारा देना है। विख्यात रूसी प्रोफेसर कौन्ड्रेतीव ने कहा कि औद्योगीकरण की गति इतनी अधिक है कि आर्थिक साधनों की खोज में किसानों पर अत्यधिक दबाव डालना होगा।[2] जून 1928 में स्तालिन ने घोषित किया,

---

1. Oscar Lange in Lippincot (Ed), On Economic Theory of Socialism, p. 43

2. Manya Gordon, Workers before and after Lenin, p. 377.

'हमारे पास उपनिवेश, साख, अथवा ऋण नही है। वे [पूँजीवादी देश] हमें देंगे नही। परिणामस्वरूप कृषक पर टैक्स लगने को आधार बनाना होगा'[1] और यही हुआ भी। सरकार ने राष्ट्रीय साधनो का मुख्य अंग विदेशो से मशीन और कौशल प्राप्त करने के लिये अलग कर दिया। 1927-28 में राष्ट्रीय बजट को उद्योग से 288 मिलियन रूबल प्राप्त हुए और 783 मिलियन रूबल इन पर खर्च किए गए। 1932 में 945 मिलियन रूबल मिला और 15,357 मिलियन रूबल उद्योग पर खर्च हुआ। इससे यह स्पष्ट है कि सदा की भाँति सोवियत सघ में भी किसान अपने पसीने से दूसरो को ही सहारा देता रहा। क्राति के पहले जार तथा उच्च वर्ग की समृद्धि का किसान साधन था; क्राति के बाद औद्योगिक प्रगति का आधार। लेनिन का विख्यात सिद्धान्त 'किसान मजदूर सहयोग' [smytchka] उसकी मृत्यु के बाद खुले पक्षपात मे बदल जायगा, इसकी आशा किसी को न थी। प्रथम योजना [बाद की अन्य योजनाओ की भी] यह विशेषता रही है कि लक्ष्य का निर्धारण अर्थशास्त्रियो, विशेषज्ञो तथा राजनैतिक नेताओ के द्वारा होने पर भी, उसे लागू करते समय फिर से सशोधन [बिना योजना आयोग के पूछे] किया जाता था। इसीलिये यह धारणा काफी प्रबल है कि समाजवादी सरकार ने आर्थिक योजनाओं को भी अपने राजनैतिक खेल का एक अंग बना लिया है। जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिये उत्पादन के लक्ष्य की जो रूपरेखा तैयार होती थी, उसका व्यवहारिक महत्व केवल सैद्धान्तिक था। सैनिक दृष्टि से भारी उद्योग की वृद्धि करने का सिद्धान्त इन लक्ष्यो में परिवर्तन का आधार बनाया जाता था। प्रथम योजना में मशीन व बिजली के सामान का उत्पादन अपने लक्ष्य का 157% हुआ जबकि उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन केवल 73 5% था। इसी प्रकार सामुदायिक खेतो में 25% कृषक परिवारों को सम्मिलित करने की योजना 1932-33 तक बढ़ कर 60% हो गई।

लक्ष्यो की पूर्ति केवल निर्देशित ही नहीं थी वरन् असन्तुलित भी थी। 1932-33 में मशीन व बिजली के सामान की उपरोक्त वृद्धि के साथ स्पात का उत्पादन 44 लाख टन कम हुआ और अनाज का 106 मिलियन टन के स्थान पर केवल 70 मिलियन टन था। इन सब बातो से यह स्पष्ट है कि रूसी योजनाएँ जन-कल्याण की समाजवादी अर्थव्यवस्था को संतुलित रूप से स्थापित करने में भी राजनैतिक प्रभाव से अपने को न बचा सकी।

कृषि

कृषि-क्षेत्र मे प्रथम योजना अत्यन्त सक्रिय रूप से पुनर्सङ्गठन के काम में लगी।

---

1. Ibid p. 382.

इसमें पहला उद्देश्य पूँजीवादी प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकना था। इस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत स्वामित्व, स्वतन्त्रता तथा प्राचीन प्रथाओं में पाई जाती थी। बिना इसको बदले हुए स्थायी व सुरक्षित समाजवादी राज्य की स्थापना वस्तुतः असम्भव थी। छोटे-छोटे खेतों में बँटी हुई कृषि और बहुत ही विस्तृत क्षेत्रफल होने के कारण किसानों तक पहुँचने का एक ही सफल साधन था—उनको बड़ी इकाइयों में बाँट दिया जाय जिससे राजनैतिक शिक्षा सङ्गठित रूप से देना सम्भव हो। इसी उद्देश्य-प्राप्ति के लिये परिवर्तन की आवश्यकता की मनोवैज्ञानिक स्थिति और वर्ग-संघर्ष को भी सहारा दिया गया। खेतों की बड़ी इकाइयों से 'समाजवादीकरण' के अतिरिक्त उत्पादन पर राज्य को पूर्ण संचालन तथा नियन्त्रण मिल पाता था। इस प्रकार प्रथम योजना के कृषि सम्बन्धी दो मुख्य कार्यक्रम बने—सामुदायिक खेती का विकास तथा समृद्धिशाली किसान अथवा कुलक वर्ग का समूल विनाश।

सामुदायिक कृषि के साथ उत्पादन के यन्त्रीकरण से राज्य को अनेकों लाभ प्राप्त हुए। किसानों का विरोध, कम खेत जोतना और अनाज को सरकार के हाथ न बेचना सामुदायिक कृषि प्रथा में सम्भव नहीं था। मशीन, ऋण, बीज, खाद इत्यादि सुविधाएँ तथा उनके भुगतान में राज्य के प्रति किसानों का दायित्व इतना अधिक हो जाता था कि बाध्य होकर किसान निश्चित मूल्य पर उत्पादन का बहुत बड़ा भाग सरकार को दे देता था। इस तरह रूसी अर्थव्यवस्था की अत्यन्त प्राचीन समस्या—राज्य द्वारा अन्न की प्राप्ति—सदा के लिये हल हो गई; क्योंकि इस व्यवस्था में राज्य के पंजों से बच निकलने का कोई उपाय न था। मार्च 1930 तक सामुदायिक खेती की वृद्धि किसानों के खुले विरोध पर भी बराबर होती रही। यहाँ तक कि अधिकारियों द्वारा पूरे जिले को सामुदायिक कृषि का क्षेत्र घोषित कर दिया जाता था और सभी किसान अपने आप कोलख़ोज [Kolkhoz or Collective Farms] के सदस्य मान लिये जाते थे। इसका जरा भी विरोध किसान को समाजवाद का शत्रु और देशद्रोही बनाने के लिये काफी था। प्रथम योजना ने स्पष्ट रूप से आगाह किया था कि इस काम में अनुचित दबाव या जल्दी हानिकारक होगी। क्रमिक सामुदायिक खेती का उद्देश्य योजना ने सामने रखा था। इसके विपरीत, इस बात में मतभेद है कि इतना दबाव स्तालिन की चाल थी अथवा कर्मचारियों का अनुचित उत्साह। शायद नये जोश में आकर किसानों पर हर प्रकार का सम्भव दबाव डाला गया जिससे कि वे डर कर कोलख़ोज का सदस्य होना स्वीकार करें। खुले बाजार में अनाज बेचने का अधिकार छिन गया। किसान केवल सरकारी समितियों को ही निश्चित मूल्य पर अपनी उपज बेच सकते थे। शताब्दियों बाद 1917 की क्रान्ति में अपनी आशाओं को फलित होते देखकर रूसी कृषक ने नया जीवन प्राप्त किया था। उन सबको अचानक खो देने पर किसानों की शोषण सहन करने की

अपार शक्ति अपनी सीमा तक पहुँच गई । सुप्त विरोध प्रत्यक्ष हो उठा । जगह-जगह पर सरकारी अफसरो की हत्याएँ, कोलखोज मे आग लगाना और पशु-वध तेजी से बढ़ने लगा ।

नवीन आर्थिक नीति के अन्तिम वर्षों में यह दिखलाई पडने लगा था कि कृषि-क्षेत्र कुलक वर्ग का बढता हुआ प्रभुत्व सोवियत किसानो से मेल नही खा सकता । इनको हटाने की नीति फरवरी 1930 में सरकारी तौर पर घोषित की गई किन्तु 1929 मे ही इनको सामाजिक शत्रु कह कर हटाने का प्रयत्न चल चुका था । यह किसान वर्ग सपन्न, शिक्षित और कुशल कृषि उत्पादक होने के साथ व्यक्तिगत उत्पादन प्रणाली का खुला पोषक था । अपने अधिकार व स्वामित्व को छोडकर इन्हे सामुदायिक खेतो मे सम्मिलित करने के लिये किसी भी तरह आकर्षित नहीं किया जा सकता था । इसी से यह निश्चित किया गया कि इस छोटे से वर्ग की बलि देकर दूसरे सभी किसानो को सामुदायिक खेतो मे सङ्गठित होने के लिये लाचार किया जाय । यह काम काफी आसान था क्योंकि गरीब, आलसी किसानों की ईर्ष्या तथा क्रोध का लक्ष्य मेहनती, धनी किसानो को आसानी से बनाया जा सकता है । स्तालिन के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र मे पूँजीवादी प्रभावो को क्रमिक प्रतिबन्ध द्वारा हटाने की पुरानी नीति के स्थान पर कुलक वर्ग के पूर्ण उन्मूलन [elimination] की नई नीति अपनाना आवश्यक था । इसके विपरीत प्रथम योजना ने व्यक्तिगत किसान विशेषकर समृद्धिशाली किसानों की पूरी सहायता लेने के लिये प्रेरित किया था । 1917 के बाद से दबी हुई अपढ जनता की पाशविक प्रवृत्तियाँ कुलक वर्ग पर एक साथ टूट पडी । जिस प्रकार का जघन्य अत्याचार इस समय सामने आया वह रूसी इतिहास पर स्थायी कलक है । क्रूरता, दमन और प्रतिशोध की जो आग भडकी वह इतनी भयंकर थी कि सारा ससार यह समझने लगा कि स्तालिन ने आखिरकार अपनी क्षमता से अधिक बोझ उठा लिया । सोवियत शक्ति का आधार लाल सेना थी जिसके अधिकतर अफसर कुलक वर्ग के थे । अपने परिवार की दुर्दशा देखकर सेना मे भी असन्तोष फैलने लगा ।

मार्च 1930 तक परिस्थिति इतनी बिगडी कि स्तालिन को अपनी एकतंत्रात्मक, असीमित राज्य-शक्ति तथा विलक्षण बुद्धिबल व चातुर्य को प्रयोग मे लाने के लिए बाध्य होना पड़ा । 2 मार्च 1930 को स्तालिन ने एक ऐतिहासिक लेख लिखा जिसका शीर्षक 'सफलता का उन्माद' [Dizzy with Success] था । इसमें उसने स्वय अनावश्यक जोश से उत्पन्न भयकर भूलों को दिखलाया और सलाह दी कि यंत्र तथा बल प्रयोग के स्थान पर ऐच्छिक रूप से कोलख़ोज का विस्तार किया जाय । कुलक वर्ग के उन्मूलन में व्यक्तिगत प्रतिशोध तथा ईर्ष्या के प्रयोग से जो मध्यवर्गीय किसान भी कुलक मान लिये गये थे उसकी स्तालिन ने बुराई की । शिक्षा और प्रबन्धकुशलता न होने से कोलख़ोज

की तीव्र वृद्धि ने उत्पादन को बहुत हानि पहुँचाई थी। स्तालिन ने सलाह दी कि जहाँ कोलखोज के आवश्यक साधन न हो वहाँ पुरानी पद्धति ही रहने दी जाय। इस नई विचारधारा ने तहलका मचा दिया। यह समझा जाने लगा कि जिस प्रकार लेनिन ने अपनी जल्दबाजी की भूलो को नवीन आर्थिक नीति [New Economic Policy] से सुधारा, उसी प्रकार स्तालिन भी अब नवीनतम आर्थिक नीति [Newest Economic Policy] अपनायेगा। किन्तु स्तालिन ने आश्चर्यजनक तत्परता से परिस्थिति को सम्भाला। इस शासक की शक्ति इतनी सर्वव्यापी थी, और किसान इतनी असहाय अवस्था मे थे कि थोडी-सी छूट पाकर उनका असन्तोष शान्त हो गया। सामुदायिक कृषि की अभूतपूर्व तीव्र-गति ने ससार को चमत्कृत कर दिया। प्रथम योजना के साधारण आशाओं के विपरीत जनवरी से मार्च 1930 के बीच कोलखोज मे 21·6% कृषक परिवारो से बढ़कर 55% कृषक परिवार आ गये। 'सफलता का उन्माद' के धक्के के बाद बडे पैमाने पर किसानो ने सामुदायिक सङ्गठन की सदस्यता छोडकर पुराने ढाँचे पर आना शुरू किया। मई 1930 मे कुल 24·1% परिवार कोलखोज मे बचे। यह सब क्षणिक छूट ही थी। कुलक उन्मूलन और सामुदायिक कृषि के सिद्धान्त की प्राथमिकता कभी कम न हुई। 1930 मे अच्छी फसल हो जाने से नये ढङ्ग की खेती पर योजनाकर्ताओं और जनता का विश्वास जमने लगा। साथ ही साथ इस दिशा में प्रगति पूर्ववत् चलती रही। परिणामस्वरूप 1931 मे फिर से 52·7% और 1932 में 61·5% कृषक परिवार कोलखोज की सदस्यता मे लाये गये और उनकी संख्या बराबर बढ़ती रही।

इस नीति का कृषि पर बहुत बुरा प्रभाव पडा। किसानो को जब अपने स्वामित्व का विश्वास न रहा तो उन्होने खेतो को बोना बन्द कर दिया और अपने पशुओं को सरकारी सम्पत्ति बनने के पहले मार डाला। यह पशु-वध इतना व्यापक था कि इसमे होने वाली हानि को देश अगले 10 वर्षों मे पूरा न कर सका। किसानो की अरुचि तथा अविश्वास से कृषि उत्पादन मे अचानक इतनी कमी आई कि 1931-32 में भयंकर अकाल पडा; सरकारी तौर पर इस अकाल को केवल अन्न की कमी करके टाल दिया गया है। किन्तु विभिन्न सूत्रो के अनुमान के अनुसार 30 से 90 लाख व्यक्तियो की मृत्यु हुई थी।[1]

जारशाही को उखाडने के लिये अक्टूबर क्रान्ति मे किसानो से 'शान्ति तथा भूमि' का वायदा किया गया था किन्तु उन्हे इनमे से कुछ भी न मिला। विश्व-युद्ध, क्रान्ति, गृह-युद्ध और अन्त मे वर्ग-युद्ध ने उन्हे कभी भी चैन से न बैठने दिया। जब तक भूमि उसके पास थी वह सन्तुष्ट था। 'स्तालिन क्रान्ति' ने खोई हुई शान्ति के साथ

---

[1] S and B Webb Soviet Communism pp. 358-94 and 561-72, W. H Chamberlin Russia's Iron Age, pp 66-92, J. E. Davies: Mission to Moscow, p. 390

किसानो की भूमि भी ले ली। कृषि-क्षेत्र मे इस योजना से भविष्य-निर्माण तो हुआ किन्तु किसानो का वर्तमान बिल्कुल बिगड गया।

पूँजी-निर्माण

किसी प्रकार की भी योजना हो बचत और पूँजी-निर्माण के सफल सङ्गठन बिना उसका उचित विस्तार असम्भव है। पूँजीवाद के प्रत्येक प्रभाव को हटा देने पर भी पूँजी का महत्त्व समाजवादी रूस मे कम न हो सका। एक गरीब कृषि-प्रधान देश के लिये औद्योगिक विकास की आवश्यक पूँजी इकट्ठा कर लेना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसका कारण यह है कि पूँजी-निर्माण की मात्रा-उत्पादन के साधनो में होने वाले वार्षिक ह्रास [Depreciation] से अधिक होना चाहिये। इसी तरह, आबादी के लगातार बढ़ने पर भी राष्ट्रीय पूँजी का विस्तार किया जा सकेगा। अगर इतना न हुआ तो उन्नति और विकास की जगह अर्थव्यवस्था स्थिर हो जायगी। पूँजीवाद मे यह काम व्यक्तियो के ऊपर छोड दिया जाता है। अपनी क्षमता के अनुसार उन्हे इतना धन पैदा करना सभव बनाया जाता है कि वे अपने आप बचत तथा विनियोग करे। समाजवाद मे आय-व्यय और विनियोग का काम राज्य अपने ऊपर ले लेता है। आर्थिक सगठन इस प्रकार किया जाता है कि इस क्षेत्र मे पूर्व-निश्चित पूँजी-निर्माण अनिवार्य रूप से हो जाय। इसी सफलता के आधार पर उत्पादन तथा औद्योगीकरण का पूरा ढाँचा बनता है।

प्रथम योजना काल मे पूँजी विनियोग [capital investment] का निम्नलिखित रूप रहा—

रूस मे पूँजी विनियोग [1]

	बिलियन रूबल में	
	1923-24 से 1927-28	1928-29 से 1932-33
कुल विनियोग	26 5	64 6
उद्योग	4 4	16·4
विद्युतकरण [केवल केन्द्रीय विद्युत् गृह]	8	3 1
यातायातकरण [पूँजीगत मरम्मत सहित]	2 7	10·0
कृषि	15 0	23 2

[1] Grinko Op Cit., p. 58

इसके अनुसार कुल पूँजी विनियोग $2\frac{1}{2}$ गुना बढ़ेगा; राजकीय उद्योग, विद्युत-करण और यातायात में लगभग 4 गुना उन्नति होगी। निर्माण का आरम्भकाल सबसे कठिन होता है क्योंकि इस समय पुरानी 'रुकावटों को हटाकर नये उत्पादन संगठन की नींव डालनी पड़ती है। प्रथम योजना ने यह काम तो किया ही, साथ-ही-साथ इस नींव पर एक प्रभावशाली उत्पादन संगठन खड़ा कर दिया। इसे सम्भव बनाने के लिए बचत और पूंजी-निर्माण का जो विशाल प्रयास रूस ने किया वह मानवी प्रयत्न नहीं, दैवी चमत्कार मालूम पड़ता है। आधुनिक उद्योगों का नया संगठन चन्द वर्षों पहले नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत हुआ। फिर भी प्रथम योजना के लिए आवश्यक साधन संचय करने में राष्ट्रीय आय का 30 5% भाग पूँजी निर्माण के लिए बचा लिया गया। यह इतनी बड़ी मात्रा है जिसकी बराबरी उस समय के श्रेष्ठतम औद्योगिक देश संयुक्त राज्य अमरीका तथा जर्मनी भी नहीं कर सकते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि 1928 के बाद राष्ट्रीय आय में जितनी उन्नति हुई वह लगभग पूरी तरह राष्ट्रीय पूँजी बना ली गई। इतना बड़ा संग्रह [accumulation] केवल समाजवादी अर्थव्यवस्था में सम्भव है।

1925-26 के मूल्य पर निर्धारित राष्ट्रीय पूँजी के बँटवारे के आँकड़े यह बतलायेंगे कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों का आपसी सन्तुलन योजना किस प्रकार बदल रही थी।

उद्योग के अनुसार प्रारम्भिक पूँजी का वितरण : [प्रतिशत में][1]

	अनुपात 1932-33 का 1927-28 से
कुल प्रारम्भिक पूँजी	182·1
उद्योग	300·0
केन्द्रीय शक्ति संस्था	530·0
रेल यातायात	167·4
कृषि	135·5

इसके साथ-साथ विविध सामाजिक अंगों में राष्ट्रीय पूँजी का बँटवारा भी अपना रूप बदल रहा था।

---

[1] Grinko, Op. Cit. p. 60

सामाजिक क्षेत्र के अनुसार प्रारम्भिक पूँजी का वितरण[1]

	प्रतिशत	
	1927-28	1932-33
कुल प्रारम्भिक पूँजी	100 1	100 1
राजकीय साहस द्वारा	51 0	63·6
सहकारी ,, ,,	1 7	5 3
व्यक्तिगत ,, ,,	47 3	31·1

इसके अनुसार राजकीय उद्योग-क्षेत्र की वृद्धि लगभग उसी अनुपात में हुई जिसमें व्यक्तिगत उद्योग कम किये गये। यह परिवर्तन आनेवाली सामाजिक रूपरेखा का पूर्व-संकेत था जिसमे नवीन आर्थिक नीति के व्यक्तिगत क्षेत्र को कोई स्थान नहीं दिया जायगा।

इस प्रकार अगर पूँजी विनियोग का क्रम देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उत्पादन के साधनो का उत्पादन इसका मुख्य ध्येय था। कुल औद्योगिक पूँजी विनियोग का लगभग 75% भारी उद्योगो मे लगाया गया। औद्योगीकरण की इस सफल नीति के कारण देश की पूँजी में उद्योगो का हिस्सा 1928 में 14% से बढ़कर 1932-33 में 23% हो गया। रूस मे विदेशो का असहयोग और पूँजीवादी देशो का डर विदेशी पूँजी को कोई भी महत्वपूर्ण स्थान पाने से रोके रहा। अधिकतर पूँजी-निर्माण राजकीय उद्योगो का लाभ तथा नागरिकों की बचत से पूरा किया गया। बड़े उद्योगो मे लगाई जाने वाली 16,140 मिलियन रूबल की पूँजी का 90% उद्योगों की अपनी बचत से प्राप्त हुआ। स्पष्ट है कि यह केवल राजकीय एकाधिकार और केन्द्रीय संचालन के अन्तर्गत हो सकता है।

उद्योग

आर्थिक स्वतन्त्रता और सैनिक शक्ति के लिए उत्पादन की वृद्धि रूसी योजना का विशेष प्रयत्न था। प्रथम योजना ने प्रतिवर्ष 20% उत्पादन वृद्धि का अनुमान किया था। हर क्षेत्र की तरह यहाँ भी लक्ष्य से अधिक उत्पादन हुआ अर्थात् 24 4% प्रतिवर्ष। योजना के प्रथम वर्षों मे उत्पादन की यह वृद्धि सम्भव बनाना देखकर सारा

[1] Ibid, p. 61.

ससार चकित हो गया क्योंकि इतिहास में कहीं भी उन्नति की यह गति नहीं बन पाई थी। जारशाही के सबसे शान्तपूर्ण और प्रगतिशील काल में भी 10% प्रतिवर्ष से अधिक उत्पादन वृद्धि कभी नहीं हुई। यह अवश्य है कि उत्पादन के आँकड़े अधिकतर केवल राजकीय बड़े उद्योगों से सम्बन्धित होते हैं। इसलिए इनको सामान्य रूसी उत्पादन का नापक मान लेना उचित नहीं। फिर भी उत्पादन वृद्धि की यह गति सयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी तथा इंग्लैण्ड से इतनी अधिक है कि इसका कारण जानना एक रुचिकर विषय होगा।

1 नया विकास होने से यांत्रिक कुशलता का स्तर रूस में बहुत अधिक था। विज्ञान की सबसे नई देन रूसी उद्योग ने अपनायी।

2 1913 के बाद से उत्पादन इतना अधिक गिर गया था कि थोड़ी-सी वृद्धि होने पर प्रतिशत वृद्धि एकदम ऊँची उठ जाती थी।

3. उत्पादन के साधनों को सयोजित रूप से कम प्रकार की वस्तु निर्माण पर खर्च किया गया। योरप के औसत शहर में जितने प्रकार की वस्तुएँ मिलती हैं उसकी 5% भी रूस में नहीं बनाई जाती। इससे साधनों की बचत और उत्पादन में वृद्धि स्वाभाविक है।

4 माँग का स्तर सदा उद्योगों के पक्ष में बना रहा। 1922-23 के संकटकाल [Scissors Crisis] को छोड़कर उद्योग कभी भी जनता की माँग से अधिक उत्पादन न कर सके। प्रथम योजना काल [1928-33] सारे संसार के लिए औद्योगिक मन्दी का समय था जिसका कोई भी चिह्न रूसी उद्योग में नहीं मिलता। एक-सी माँग होने का कारण यह है कि क्रेताओं की इच्छा और क्षमता की समस्या रूस में पैदा नहीं होती। उतना ही उत्पादन होता है जितना योजना कहती है: योजना उतना ही कहती है जितनी क्रय शक्ति उपभोक्ताओं के हाथ में दी जाती है। प्रबल केन्द्रीय निर्देशन के द्वारा यह सम्भव होता है।

5 मुद्रा और साख पर पूर्ण नियन्त्रण होने से राज्य इच्छानुसार वस्तुओं के उत्पादन को निश्चित सीमा में बाँधे रखता है।

उत्पादन-वृद्धि के साथ एक और बात विशेष उल्लेखनीय है। उद्योग-क्षेत्र में लागत को घटाने पर विशेष जोर दिया गया क्योंकि बिना लागत के कम किये हुए उच्चत्तम कोटि का पूँजी-निर्माण सम्भव नहीं था। प्रथम योजना ने पाँच वर्षों में 35% लागत घटाने का अनुमान किया; जबकि थोक दाम कुल 24% घटाने का विचार था। इस दिशा में विशेष ध्यान देने के कारण ही उद्योगों पर राजकीय नियंत्रण तथा आतरिक प्रबन्ध में सुधार हो सके। इस पर इतना अधिक जोर दिया गया कि उत्पादन की किस्म

बना। इसके द्वारा उन्हे हर समय पवित्र कर्तव्य की तरह उत्पादन वृद्धि का दायित्व समझने मे बडी मदद मिली। बाहरी प्रोत्साहन और मनोवैज्ञानिक प्रेरणा ने मिलकर रूसी मजदूर मे अद्भुत कार्यशीलता उत्पन्न की, जिससे राष्ट्रोन्नति मे वे पूरी तरह राज्य के सहयोगी बन सके।

व्यापार :

वस्तु विनिमय तथा उपभोग का एकदम नया रूप सामने आया। प्रथम योजना ने पूँजी-निर्माण और भारी उद्योग की वृद्धि के लिये उपभोग पर पूर्ण नियंत्रण कर लिया। यह नियन्त्रण एक विशेष प्रकार का था। इसके अन्तर्गत राज्य ने सयोजित रूप से बिकने योग्य वस्तुओ का बँटवारा तथा जनता के उपभोग का सचालन अपने हाथो मे ले लिया। नागरिक उपभोग की सीमाएँ एक नये तरह से स्थापित की गई, जिसका सिद्धान्त था कि जो काम नहीं करेगा उसको भोजन करने का अधिकार नही है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को उपभोग की सामग्री उसके काम के महत्व तथा मात्रा के आधार पर निश्चित की जाती थी। उद्देश्य था कि लोग अधिकतम प्रयास करने के लिये उत्तेजित हो। उपभोग की सामग्री का मूल्य निर्धारण इस तरह से होता था कि जनता की माँग उन्ही वस्तुओ के प्रयोग की ओर छोड दी जाय जिसको देश आसानी से बना सकता हो। अन्त मे, इसके पीछे यह प्रयत्न भी था कि मूल्य-निर्धारण सीमित उपभोग की सामग्री के सहारे इस प्रकार हो कि जनता के हाथो से अधिक-से-अधिक आय राज्य के पास आ जाय। बचत का यह रूप रूस के विशाल पूँजी-निर्माण का अवलम्ब था।

1933 से कोलख़ोज के सदस्यो को तथा व्यक्तिगत किसानो को निजी उत्पादन खुले बाजार मे बेचने की स्वतत्रता दी गई। कहने को तो इसका उद्देश्य था कि लोगो की व्यक्तिगत संपत्ति की इच्छा, बिना किसी नुकसान के, आशिक रूप से पूरी हो जाय। किन्तु इसके साथ ग्रामीण जनता को राशनिग के अन्तर्गत अनाज तथा अन्य खाद्य वस्तुएँ नही दी जाती थी। प्रभाव यह पडा कि अपनी व्यक्तिगत भूमि पर उत्पन्न वस्तुएँ व्यापार का अग न बनकर उनकी अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति मे लग गई। इस प्रकार व्यापार नाममात्र का ही चलता रहा। इस समय से रूसी व्यापार को 'व्यापार' की संज्ञा न देकर 'राजकीय वितरण' कहना ही ठीक मालूम पडता है।

संक्षिप्त समीक्षा

अंत मे संसार की पहली योजना की संक्षिप्त समीक्षा आवश्यक है। नवीन आर्थिक नीति मे आर्थिक सगठन का सतुलन सुधारने का प्रयत्न किया गया था। उद्योग के राजकीय नियंत्रण तथा कारखाने के आन्तरिक प्रबन्ध मे सरलता लाने के सभी प्रयास

केवल आंशिक रूप में सफल हो कर रह गये। प्रथम योजना में इन कमजोरियों पर ऊपर से स्तालिन ने काफी ध्यान दिया किन्तु सामान्य कर्मचारी व मजदूर इसका महत्व काफी बाद में समझे। इतना ही नहीं। दृष्टिकोण समुचित रूप में विकसित न होने से योजना के उच्चतम स्तर पर भी सतुलन की कमी थी। सबसे महत्वपूर्ण और भारत के लिये रुचिकर उदाहरण था उद्योगों का स्थानीयकरण। कारखानों की स्थापना उपभोक्ता और कच्चा माल की प्राप्ति के अनुसार न होकर प्रदेशों की राजनैतिक तनातनी और अपनी-अपनी प्रतिष्ठावृद्धि के लिये हुआ।

दूसरी कमी इस क्षेत्र में अधूरे कामों की थी। योजना में जितने भी काम शुरू किये गये, उनमें से अधिकतर योजनाकाल में सम्पन्न न हो सके। बड़े उद्योगों के लिये निर्धारित 24,789 मिलियन रूबल में से 11,728 मिलियन रूबल का काम हो पाया। बाकी अधूरा पड़ा रहा। इससे लक्ष्यपूर्ति का मुख्य भार पुराने कारखानों पर पड़ा जिनको अपनी क्षमता से बाहर काम करना जरूरी हो गया। उनके मशीनों का भयकर ह्रास [Depreciation] सारे देश की हानि थी। इस कमी के मुख्य कारणों में सुस्ती, सगठन और आकार प्रियता [Gigantomania] मुख्य है। आकार-प्रियता सयुक्त राज्य अमरीका की तरह रूस की भी बीमारी बन गई थी। उनका हर एक काम भी ससार में सबसे बड़ा और सबसे महान कहलाने का प्रयत्न होता था। इसमें धन, समय और जोखिम आवश्यकता से अधिक लगता था। जरा-सी भूल सारी योजना को डगमगाने के लिये काफी थी। इससे भी बड़ा नुकसान इन विराट केन्द्रों के निर्माण में यह था कि इनके आरम्भ और पूर्ति की अवधि बहुत लम्बी होती थी। समाज को इनके उत्पादन का व्यय अनेकों वर्ष तक उठाने पर कुछ लाभ प्राप्त होता था।

मुद्रा-सुधार और राजकीय नियत्रण में अधिकतम कठोरता से भी मूल्य की वृद्धि न रोकी जा सकी। मजदूर किसान को अधिक काम की प्रेरणा देने के लिये उनकी आय तो बढ़ा दी गई किन्तु उपभोग की वस्तुएँ न बढ़ सकी। भारी उद्योगों पर अत्यधिक जोर देने का यह कुप्रभाव पूरी योजनाकाल में साथ लगा रहा।

यातायात के साधनों का महत्व शायद पूरी तरह स्पष्ट नहीं हुआ था क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी के सत्रहवें अधिवेशन [1932] में अविकसित यातायात को प्रथम योजना की सबसे बड़ी कमजोरी घोषित किया गया। दूसरी योजना में इसे दूर करने के अच्छे प्रयत्न हुए। मजदूरों की कम उत्पादन शक्ति और वस्तुओं की ऊँची लागत का हल प्रथम योजना में न मिला। वेतन प्रणाली की त्रुटियाँ और अनुभवी इञ्जीनियर तथा कारीगरों की कमी इसका मुख्य कारण था। कुछ भी हो प्रथम योजना ने एक कृषक देश को कृषक-औद्योगिक देश बना दिया। इसके अत में राष्ट्रीय आय का 57.5% उद्योग, यातायात तथा निर्माण से, और 22.9% कृषि से मिला।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना [1933–1937]

इस योजना की पृष्ठभूमि, रूसी पद्धति के अनुसार, रक्त रंजित रही है। आर्थिक क्षेत्र मे प्रथम योजना की सफलता से उत्साहित होकर स्तालिन ने ट्रॉट्स्की के बाद अपने दूसरे प्रतिद्वन्द्वियो को क्षेत्र से हटाना आरम्भ किया। यह काम स्तालिन और इसके कुछ भक्त अनुयायियो ने बडे पक्के तौर पर कठोरता से किया। 1934 मे कीरोव की हत्या का बहाना लेकर अगले 4 सालो तक और दमन का चक्र, साम्यवादी दल से आरम्भ होकर, सारे देश मे फैल गया। सूवेराइन तथा फिशर के अनुसार इस राष्ट्रीय शुद्धि [National Purge] मे गिरे लोगो की सूची पर नये रूस के प्रायः सभी कर्णधारो का नाम मिल जायगा।[1] इसलिए 117 व्यक्तियो को फॉसी, पुराने बोल्शेविक नेताओ मे ९७ व्यक्तियो को कैद, पुलिस तथा सेना के 12 सबसे ऊँचे अधिकारियो की हत्या और लगभग 1 लाख राजनैतिक विरोधियो का देश-निष्काशन किया गया। अपना नेतृत्व सुदृढ करने के लिए और अपने से अधिक प्रतिभाशाली अथवा लोकप्रिय सभी नेताओ की सम्भावित प्रतिस्पर्धा को हटाने के लिए यह शुद्धि की गई। 1917 मे साम्यवादी दल के केन्द्रीय समिति मे 24 सदस्य थे। इनमे से 7 स्वाभाविक मृत्यु से मर चुके थे, 6 को प्राण-दण्ड दिया गया, 1 जेल मे था और 6 अकारण ही गायब हो गये। ट्राट्स्की की देश-निष्कासन के बाद हत्या कर दी गई, और मैडम कोलोन्ताई स्वीडन मे राजदूत थी। इस समय तक उस समिति का अकेला स्तालिन ही बचा था। इसका आर्थिक प्रभाव यह हुआ कि स्तालिन द्वारा निर्धारित नीति और सचालन निर्विवाद रूप से सर्वमान्यता प्राप्त कर सका। प्रभावशाली नेताओ के हट जाने से मनचाहे रूप मे स्तालिन ने देश के नये ढॉचे का निर्माण किया। शुद्धि की विभीषिका से जनता इतनी डर गई कि आज्ञापालन और अनुशासन अपनी चरम सीमा को छूने लगा। नवयुवक साम्यवादियों को मनोवैज्ञानिक रूप से रूस के लौह पुरुष ने राष्ट्रीय विकास का महा प्रभावशाली यत्र बना दिया। उनकी शिक्षा, विचारधारा तथा परिश्रम का केवल एक ही उद्देश्य उनको बताया गया : रूस को शक्तिशाली बनाने मे सहयोग देना। इस प्रवृत्ति से कर्तव्यो के प्रति जागृति और आत्मविश्वास की उत्पत्ति इतनी प्रचुर मात्रा मे हुई कि रूसियो के लिए कुछ भी प्राप्त कर लेना असम्भव नही रह गया। द्वितीय-योजना और उसके बाद के प्रयास मे यह पृष्ठभूमि सबसे महत्वपूर्ण बनी रही।

जर्मनी मे 1931 के बाद बढ़ता हुआ हिटलर का प्रभाव इस बात की पूर्व-सूचना थी कि वार्सेली की संधि द्वारा स्थापित शाति अधिक दिन नही चलेगी। डौ योजना [Dawe's Plan] के अन्तर्गत जर्मनी अधिक दिन तक हर्जाना नही देगा और निकट

[1] Boris Souvarine Stalin. p. 598, and Lous Fisher : Men and Politics, pp 433-439

भविष्य मे युद्ध से ससार न बच सकेगा। इसे स्तालिन की तीव्र बुद्धि ने देख लिया था। इसलिए द्वितीय योजना मे युद्ध के उत्पादन और सैनिक आवश्यकताओ पर पूरा ध्यान दिया गया। इसकी सफलता द्वितीय विश्वयुद्ध [1939–46] मे ससार के लिए वरदान बनी। एलेक्जैण्डर प्रथम की तरह दूसरी बार रूसी शासक ससार की स्वतन्त्रता का आधार सिद्ध हुआ। नेपोलियन और हिटलर दोनो का सूर्य रूस मे ही अस्त हुआ।

उद्योग

उद्योग मे द्वितीय योजना विशेष कार्यशील थी। सैनिक शक्ति के लिए औद्योगीकरण रूसी योजनाओ का केन्द्रीय सिद्धान्त रहा है, किन्तु इस योजना में औसत उत्पादन का कार्य-क्रम कुछ घटा दिया गया था। जितनी वृद्धि प्रथम योजना मे करने की कोशिश की गई, इसमे उनका आकार कम था। इसकाअर्थ यह नही कि इस योजना मे राष्ट्रोन्नति की इच्छा कम थी। काफी बडी मात्रा मे साधन प्रथम योजना के अधूरे निर्माण-कार्यो को पूरा करने मे लगाया गया। निर्माण-कार्य पर व्यय होने वाली धन-राशि का मुख्य भाग पुराने उद्योगो को पुनर्जीवित करने मे और प्रथम योजना के अधूरे काम को पूरा करने मे लगा। सबसे बडा लाभ यह हुआ कि अनावश्यक दुहरा खर्चा और पेचीदा उत्पादन बच गया। प्रथम दो वर्षो मे यह काम पूरा करने के बाद नये कारखानो की स्थापना आरम्भ की गई।

इस समय तक आते-आते योजनाकर्ताओ ने यह अनुभव किया कि स्तालिन की नयी नीतियो से देश के प्रत्येक अङ्ग पर राज्य का इतना पूर्ण अधिशासन हो गया है कि योजना प्रणाली मे कुछ नये प्रयोग बिना हिचक किये जा सकते है। इस अनुभूति का सबसे बडा प्रभाव यह पडा कि लक्ष्य निर्धारण मे पूँजी का महत्व घटा दिया गया। अभी तक आर्थिक साधन की उपलब्धि पर उत्पादन वृद्धि तथा अन्य सामाजिक सेवाएँ निर्भर करती थी। किन्तु इस योजना मे अर्थव्यवस्था से इच्छानुसार त्याग पा लेने पर इतना विश्वास हो गया था कि आर्थिक साधन अपनी प्राथमिकता खो बैठे। पूँजी को स्वामी से सेवक मे परिणित करने मे जो सफलता मिली, उसने पूँजीवाद की नीव [आर्थिक संचालन केवल पूँजी करती है] एक दम हिला दिया।

वस्तु उत्पादन का प्रमापीकरण [Standardisation] इस योजना मे आकर उद्योग संगठन की एक विशेषता कही जा सकती है। यह निश्चित किया गया कि इसके द्वारा अधिकतर साधन तथा श्रम की बचत की जायगी। इस उद्देश्य से कुल चार प्रकार का ट्रैक्टर बनाया गया जब कि उस समय सयुक्त राज्य अमरीका मे 80 प्रकार का ट्रैक्टर बनता था। 1924 मे 2,600 प्रकार का कपडा तैयार किया जाता था। इसे काट कर 187 कर दिया गया। कुछ कारखानो मे तो यह सख्या 500 से 42 तक पहुँची।[1]

[1] M. Aronovitch Planned Economy, pp. 122-123

1937 तक औसत 4 प्रकार का सूत और 2 प्रकार का कपडा हर मिल बनायेगी।[1] व्यापक रूप से इसी तरीके को उत्पादन के साधन तथा उपयोग की वस्तुओ मे प्रयोग किया गया।

दूसरी योजना का आधार देश की यान्त्रिक कुशलता की बडे से बडे पैमाने पर स्थापना और वृद्धि था। इसी की मदद से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को एक नया रूप दिया जा सकता था जिसके अदर बडे पैमाने पर मशीनो से उत्पादन हो और यह मशीनें आधुनिकतम यंत्र विज्ञान का नतीजा हो। जितने भी प्रशिक्षित व्यक्ति प्रथम योजना ने बनाये, उनकी शिक्षा तथा विचारो की सहायता ले कर, अर्थ-व्यवस्था को अमरीका और जर्मनी के स्तर पर लाने मे, सोवियत सङ्घ ने काफी सफलता प्राप्त की। यान्त्रिक कुशलता के यह सफल प्रयास देश को तेजी के साथ उन्नति की ओर ले चले। इस योजना मे 3,69,900 विशेषज्ञ शिक्षित किये गये। जबकि प्रथम योजना मे यह सख्या 1,17,000 थी। 1928 मे 1,000 मजदूरो पर 36 इञ्जीनियर थे। 1936 में औसत रूप से यह सख्या 82 हो गई। इसके साथ काम करने वाले मजदूरो को अपनी कुशलता बढ़ाने के लिये प्रशिक्षण के काम ने बहुत तेजी पकडी। 1933-1937 के बीच श्रमजीवी प्रशिक्षण विद्यालय [Worker's Training Schools] ने 14,00,000 कारीगरो को कुशल कारीगर बना दिया। इस प्रकार इञ्जीनियरो की सख्या 7 7 गुना बढी, वैज्ञानिक कार्य-कर्ताओ की 7·1 गुना और कृषि विशेषज्ञो की 5 गुना। कृषि क्षेत्र में भी इनको काफी महत्त्व दिया गया। लगभग 39,00,000 कुशल कारीगर तैयार हुए जैसे ट्रैक्टर ड्राइवर कार्य सचालक, पशु विशेषज्ञ, मिट्टी वैज्ञानिक [soil scientists] सामुदायिक प्रबंधक तथा एकाउन्टेन्ट।

श्रमिक कुशलता और प्रति व्यक्ति उत्पादन की कृषि मे दो मुख्य बाते हुई। पहला तो स्तालिन का वह प्रसिद्ध नारा था जिसने औद्योगिक प्रबन्ध को एकदम बदल दिया। 'सब निर्णय कर्मचारी करे—[Personnel Decide Everything]। इसके अन्तर्गत औद्योगिक प्रबन्ध मे राजनैतिक प्रभाव और सरकारी हस्तक्षेप कम करने का प्रयत्न किया गया। उद्देश्य यह था कि यदि कारखाना कर्मचारी ही मुख्य निर्णय करेंगे तो उनमें कारखाना के प्रति अपनापन पैदा होगा। असफलता की पूरी जिम्मेदारी उन्हे स्वय उठानी पडेगी। दूसरी विशेषता स्ताख़नोव आन्दोलन [Stakhanov Movement] था। इसका आरम्भ 1935 मे हुआ। यह आन्दोलन यान्त्रिक कुश-लता और कार्य-प्रणाली के सुधार से प्रति व्यक्ति उत्पादन मे आश्चर्यजनक वृद्धि करने मे सफल हुआ। मजदूरो के बीच ही इसका आविष्कार हुआ और शायद इसी कारण इसका प्रचलन मजदूरो मे इतनी तीव्रता से बढा। कोयले की खान मे काम करने वाले

[1] The Second Five Year Plan, p. 358

एक नवयुवक मजदूर, एलेक्सी स्ताखानोव, ने अपने काम में अपने ही खोजे हुए नये तरीकों का प्रयोग किया। उसके उत्पादन ने सबको चकित कर दिया। नयी प्रणाली के अनुसार स्ताखानोव ने एक शिफ्ट में औसत 7 टन कोयला खोदने के स्थान पर 102 टन कोयला खोदा।

एक महीने के अन्दर इस नई प्रणाली को सुधार कर उसने अपना उत्पादन एक शिफ्ट में 227 टन कर दिया। राज्य के तत्वाधान में उसका अनुकरण देश के प्रत्येक उत्पादन-क्षेत्र में होने लगा। यह चमत्कारी उत्पादन वृद्धि तभी से रूसी मजदूरों का एक अङ्ग बन गई। द्वितीय योजना के प्रथम वर्ष में ही स्ताखानोव आन्दोलन से उत्पादन में 30·2% की वृद्धि हुई। इस आन्दोलन से मजदूर संचालन के विज्ञान में अनेकों नये अध्याय जुड़े। यह मान लिया गया कि अधिक उत्पादन के लिये मजदूर को सुशिक्षित, कुशल, अच्छे यंत्रों से सुसज्जित और सन्तुष्ट होना आवश्यक है। इतने पर भी यह देखा गया कि बिना किसी प्रकार के ठोस आर्थिक लाभ [material advantage] के उत्पादन बढ़ाना कठिन होता है। केवल समाजवादी प्रतिस्पर्धा [socialist competition] तथा सामाजिक प्रेरणा [social incentives] के द्वारा यह सम्भव नहीं। इसलिये इनके साथ-साथ आर्थिक पारितोषिक की व्यवस्था की गई है। दूसरी मुख्य प्रगति व्यक्तिगत प्रयास को अपना उचित महत्व देकर की गई। समाजवाद में व्यक्ति की जगह समाज और समूह को इतना ऊँचा स्थान दिया गया कि व्यक्ति को कोई जगह ही न मिल सकी। इस योजना में यह मानना पड़ा कि सामूहिक जागृति और संयुक्त प्रयत्न आवश्यक है किन्तु व्यक्तिगत प्रयत्न को हटाया नहीं जा सकता। अतः व्यक्तिगत प्रयत्न को सामाजिक उद्देश्यों के लिए उत्तेजित करने की नीति अपनाई गई। समान वेतन के पुराने सिद्धान्त को एकदम उठा दिया गया।

औद्योगिक क्षेत्र के विभागों में साधनों के बँटवारे की नीति में भी परिवर्तन हुआ। भारी उद्योगों का महत्व तो वैसा ही बना रहा परन्तु पहली बार उपभोग के उत्पादन को कुछ अधिक स्थान दिया गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपभोग की सामग्री का प्रकार [variety] बहुत कम कर दिया गया था परन्तु अपेक्षाकृत उनकी उत्पादन मात्रा बढ़ा दी गयी। ऐसा अनुमान है कि यह छूट आर्थिक कारणों से नहीं की गई। राजनैतिक शुद्धि [political purge] के कारण देश में गहरा असंतोष था। इसको शान्त करने के लिये ही यह छूट दी गई।

इस समय तक उत्पादन में गिरे हुए गुण [quality] की समस्या का हल करना अनिवार्य हो गया। बढ़ते हुए औद्योगीकरण में निम्न कोटि का उत्पादन बहुत रुकावट पैदा कर रहा था। मशीनों का घिस जाना या पुर्जों का अच्छी तरह फिट न

आना रोजाना की बाते बन गई थी। जब और सभी उपाय असफल सिद्ध हुए तो कानून का सहारा लिया गया। 1940 मे वस्तुओ के गुण [quality] सुधारने के प्रयत्न मे कमी करना, या रुकावट डालना या पूरी कोशिश न करना फौजदारी कानून द्वारा दडनीय बनाया गया।[1]

इस योजना की सफल पूर्ति अर्थशास्त्रियो मे विवाद का विषय है। धातु तथा असल उद्योगो मे तो लक्ष्य से अधिक उत्पादन हुआ किन्तु हलके उद्योग [खास कर कपडा] काफी पीछे रहा। पहले योजना की तरह, इसमे भी उद्देश्यो की सचालित पूर्ति [directed fulfilment of targets] की गई, यह विश्वास सर्वथा निर्मूल नही है।

कृषि

इस योजना मे कृषि-क्षेत्र के नये सोवियत सगठन को और पुष्ट बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रयत्न किये गये। इनका उद्देश्य यह था कि कृषक वर्ग अपना उत्तरदायित्व समझे और मन लगाकर उत्पादन मे सहयोग दे। तीव्र गति से होने वाले सामुदायिक कृषि की प्रगति ने किसानो का सन्तुलन बिगाड दिया था। उसकी पुनर्स्थापना राज्य की सफल उन्नति के लिए अनिवार्य बन गयी। "सफलता का उन्माद" [Dizzy with Success] मे जो ताडना जनता को दी गयी उसका बहुत बडा असर न हो सका। इस समय तक आते-आते यह आवश्यक हो गया कि कुछ ऐसे व्यवहारिक सुधार किये जायँ जो किसानो को लाभपूर्ण मालूम पडे। 1935 मे उत्पादन में इतना सुधार हो चुका था कि समाज की अनेको कमजोरियो की जड—राशनिग—को उठा दिया गया। इस सकटकालीन व्यवस्था के समाप्त होने से कृषक वर्ग मे नयी आशाएँ उत्पन्न हुई।

सहानुभूति, कृषि सगठन मे एकरूपता तथा समान नियन्त्रण लाने के लिए फरवरी 1935 मे कृषि आरटेल के आदर्श नियम [Model Rules of the Agricultural Artel] बनाये गये। इन नियमो को स्तालिन की महानता का एक प्रतीक माना जाता है। इसके अन्तर्गत कृषि पद्धति, भूमि, उत्पादन का बँटवारा, प्रबन्ध, सदस्यता, कोष तथा श्रमिक अनुशासन इत्यादि सभी अगो के लिए नियम बनाये गये जिसके आधार पर देश की सामुदायिक खेती को संगठित किया जा सके।[2] इन नियमो ने किसानो मे आलस्य और गैरजिम्मेदारी, मन लगाकर काम न करना, इत्यादि त्रुटियो को दूर करने मे बहुत मदद किया। सभी तरफ से यह प्रयत्न हो रहा था कि किसानो को

---

[1] Yugow A Russia's Economic Front for War and Peace, p 23

2 Turin, S. P.: The U. S. S. R, pp. 175-189

अपना स्वतन्त्र तथा पृथक रूप से काम करने का तरीका छोड़ने के लिए बाध्य किया जाय जिससे कि उन्हें एक औद्योगिक मजदूर की तरह कठोर अनुशासन में बाँधा जा सके। मजदूरों और किसानों को एक स्तर पर लाकर तथा एक ही प्रकार के संगठन में रखकर उनको आपसी सहयोग, असन्तुष्टि व प्रतिद्वन्दिता से बचाया जा सकता था। इतना ही नहीं उनको एक ही प्रकार के प्रोत्साहन से उत्तेजित करके अधिकतम उत्पादन सम्भाव्य था। उदाहरण के लिए सामुदायिक फार्म में वेतन निर्धारित करते समय कुशलता को महत्व देना, काम के अनुसार भुगतान [Piece wage] और मजदूरों की तरह जितने दिन काम किया है उतना वेतन प्राप्त होगा। इसका किसान पर बहुत अच्छा असर पड़ा। उनके सभी विशेषाधिकार उत्तरदायित्व पर आधारित हो गये।

अनाज वसूली [Procurement] प्रणाली के सुधार बड़े प्रभावशाली थे। पहले इसमें कोई निश्चित नियमावली न होने से किसान के उत्साह पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था। इस समय केवल इनकी मात्रा ही नहीं निर्धारित की गयी बल्कि इसको प्रति एकड़ उत्पादन का एक पूर्व निश्चित अंश बना दिया गया। इससे किसानों को अधिक उत्पादन करने में कोई रुकावट न रही। उनको तथा राज्य को यह पहले से मालूम रहता था कि कितना अनाज लिया या दिया जायगा।

कुलक वर्ग के उन्मूलन का कार्य अविराम चलता रहा। व्यक्तिगत किसानों के ऊपर आर्थिक दबाव तथा पक्षपात के बोझ में वृद्धि होती रही। इसका सबसे प्रचलित रूप राज्य-करों में पक्षपात था। व्यक्तिगत किसान सामुदायिक खेतों के किसान से 5 से 10 प्रतिशत अधिक कर देते थे। अनेकों सुविधाएँ इनको नहीं मिलती थीं। खुले बाजार में अनाज बेच सकने की स्वतन्त्रता से किसानों को बहुत सन्तुष्टि मिली। राज्य को भुगतान करने के बाद जितना अनाज बचे उसे बाजार भाव पर बेचा जा सकता था। इसके साथ शीघ्र ही इस श्रेणी के विक्रय किसानों की आय का महत्वपूर्ण अंग बन गये। इस व्यवस्था से राशनिंग और अन्न वितरण की समस्या सदा के लिए हल हो गयी। अतिरिक्त उत्पादन को बाजार में बेचने के पहले अपनी उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति किसान इसी में से कर लेते थे।

1935 से कृषि-क्षेत्र में व्यक्तिगत सम्पत्ति को दुबारा स्थापित किया गया। अपने नियन्त्रित रूप में व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुविधा एक हानिरहित किन्तु प्रबल प्रोत्साहन सिद्ध हुई। 1933 में स्तालिन के विख्यात नारे का जन्म हुआ—"समस्त सामुदायिक किसानों को समृद्ध बनाओ" [Make all collective farmers prosperous] स्तालिन का तर्क यह था कि पहले किसान दूसरों की मेहनत से, बेईमानी से तथा पड़ोसियों के शोषण से समृद्ध बनने का प्रयत्न करते थे जिससे कि वे पूँजीवादी अथवा कुलक बन सकें। किन्तु नई सोवियत प्रणाली में सामुदायिक किसान यह सब न करके केवल ईमान-

दारी और मेहनत के साथ अपना काम करता है। अतः सामुदायिक किसानों को समृद्ध-शाली किसान बनने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये। स्तालिन के विचार से पुरानी और नयी कृषि व्यवस्था मे केवल इतना अन्तर था कि पहले किसान भूस्वामी से शोषित होकर, उसके जमीन पर, खेती करता था किन्तु अब अपने लिए हितकर सामुदायिक फार्म की भूमि पर काम करता है। इसलिए इसको सम्पन्न बनने का और सुविधाएँ प्राप्त करने का निश्चित अधिकार है। इस नयी विचारधारा के अन्तर्गत पशु को व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह रखने का अधिकार मिला। एक छोटा-सा खेत भी व्यक्तिगत रूप मे दिया गया जिस पर किसान अपनी आवश्यकताओं की वस्तु उत्पन्न कर सके, जैसे, मधुमक्खी, चिड़िया, पशुपालन, फल इत्यादि। इसी समय से किसानों को अपना खोया हुआ व्यक्तित्व कुछ अशों मे दुबारा मिल गया।

कृषि क्षेत्र मे सैद्धान्तिक प्रचार का विस्तार किया गया। इनका मुख्य उद्देश्य कोलख़ोज किसान थे जिनके विचारों को अत्यन्त वैज्ञानिक रूप से सोवियत सिद्धान्तों के आधार पर ढालने की चेष्टा हुई। कुप्रबन्ध, सुस्ती, असहयोग और बेईमानी को दूर करने मे राज्य ने अपना प्रभाव प्रत्येक कोलख़ोज तक फैला लिया। इसके कई उपाय अपनाये गये। मशीन और ट्रैक्टर स्टेशन की मदद बिना कोलख़ोज का सफल होना असम्भव था। इस यान्त्रिक मदद का परिमाण और मूल्य के साथ कुछ शर्ते लगायी गयी जिससे इन्हे पाने के लिए हर दिशा मे सफल और उन्नतिशील बनना आवश्यक हो गया। उधार आर्थिक सहायता देकर सैद्धातिक तथा व्यवहारिक रूप से सन्तोषजनक कोलखोज को पुरस्कृत किया जाता था। इन सब का प्रभाव अत्यन्त स्वास्थ्यकर सिद्ध हुआ। सोवियत व्यवस्था मे पहली बार किसान ने शान्ति और सन्तोष अनुभव किया। उत्पादन का इससे प्रभावित होना अनिवार्य था। इन्ही कारणों से 1935 मे राशनिंग समाप्त की जा सकी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना : [1938–1942]

1928 मे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का जो कार्य आरम्भ हुआ उसे तृतीय योजना बहुत बड़े आकार पर बढ़ाने के लिए बनाई गई थी। इसका दृष्टिकोण अत्यन्त साहसपूर्ण तथा व्यापक था। राष्ट्र का संयोजित विकास मे अनुभव और साधन निरन्तर बढ रहा था। इसी से स्तालिन के कठोर अंकुश से संचालित राष्ट्र अपनी सम्पूर्ण शक्ति से गतिशील बना। नीव की तैयारी प्रथम दो योजनाओं ने कर दिया था। अतः मोलोटोव ने तृतीय योजना के उद्देश्य की घोषणा की : यह योजना समाजवाद को साम्यवाद में बदल देगी।[1] इसका एक और उद्देश्य था राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, संस्कृति एवं समाज कल्याण

[1] Molotov Third Five Year Plan, [1939] p. 5

का स्तर उठाना। यातायात पर विशेष ध्यान दिया गया क्योंकि इस समय तक यह क्षेत्र विकास के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट बन रहा था। इस रुकावट को कम करने के लिए औद्योगिक स्थानीयकरण [Localization] का विशेष ध्यान रखना पड़ा। उद्योगों को कच्चे माल के क्षेत्रों के निकट, और जहाँ तक सम्भव हो, उपभोग के क्षेत्रों के समीप स्थापित करना आवश्यक बना। इससे यातायात पर दबाव काफी कम हो गया। संसार की बिगड़ती हुई राजनैतिक स्थिति ने भी इस योजना को प्रभावित किया। इसी कारण सुरक्षा तथा शस्त्र उद्योग [Armament Industry] विकास का केन्द्र बन गये। इस क्षेत्र में उच्चतम गुण का स्तर [qualitative level] प्राप्त करने की कोशिश की गई। 1939 में द्वितीय महायुद्ध छिड़ने के साथ सुरक्षा पर राजकीय व्यय कुल साधनों के [illegible] से बढ़ा कर 1940 में $\frac{1}{3}$ कर दिया गया।

1939 के मूल्य पर आधारित अनुमान के अनुसार इस योजना पर 192 मिलियर्ड [एक मिलियर्ड = हजार मिलियन] रूबल का व्यय पूँजी के क्षेत्र में रक्खा गया। इसमें से 111.9 मिलियर्ड रूबल उद्योग पर खर्च होने वाला था। यह धन द्वितीय योजना का लगभग दूना था। इसमें 37 मिलियर्ड रूबल यातायात का भी सम्मिलित है।[1] औद्योगिक उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि का प्रयत्न हुआ।

उत्पादन में प्रतिशत वृद्धि[2]

	1942 [1937 के प्रतिशत में]
पूँजी के सामान	207
उपयोग के सामान	172
रसायन उद्योग	237
मशीन निर्माण	229
विद्युत् शक्ति	206
अल्यूमिनियम	346
टिन के योजन	206

लेकिन औद्योगिक उत्पादन की प्रतिवर्ष वृद्धि में कमी हुई। यह 12.4% प्रतिवर्ष रक्खी गई। भारी उद्योगों की प्राथमिकता पूर्ववत: बनी रही। श्रमिक उत्पादन बढ़ाना द्वितीय योजना ने बहुत जरूरी समझा। "समाजवादी प्रतिस्पर्धा [Socialist Com-

[1] Ibid, p 28

[2] Baykov Op Cit, p 289

petition] उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र मे फैला। इसके अतिरिक्त राज्य की ओर से अत्यन्त आकर्षित आर्थिक पारितोषिक देने की नीति अपनाई गई। उस आर्थिक प्रोत्साहन का विधान इस प्रकार बना था कि जिस किसी कारखाने मे आशा से अधिक उत्पादन हो वहाँ से सम्बन्धित राजनैतिक नेता, प्रबन्धक तथा मजदूर सभी को उदार अर्थ-लाभ होता था। नेताओं की प्रेरणा, प्रबन्धको का कौशल एवं मजदूरो का परिश्रम वैज्ञानिकों से सहायता पाकर श्रम-उत्पादकता [Labour Productivity] को ऊपर उठाने मे सफल हुआ। इसमे लगभग 65% की वृद्धि तृतीय योजना ने किया। औद्योगिक उत्पादन में 88.5 मिलियर्ड रूबल की वृद्धि हुई थी। इस वृद्धि का 70% अथवा 62 मिलियर्ड रूबल श्रम उत्पादन बढने से प्राप्त हुआ। इसके विपरीत उत्पादन के मूल्य मे कमी ५ वर्षों मे केवल 10% ही की जा सकी। अतः यह देखा गया कि इस योजना-काल मे श्रमिको को हर प्रकार की उत्तेजना, सुविधा और उत्साह दे कर उत्पादकता बढ़ाने का ऐसा आन्दोलन चला जिससे कोई भी प्रभावित हुए बिना न रह पाया।

अच्छे किस्म के उत्पादन करने का प्रयत्न बराबर होता रहा किन्तु इससे आशातीत सफलता न मिल सकी। गौसप्लान के समापति एन० वोज्नेसेन्स्की [N Voznesensky] के अनुसार सुरक्षा उद्योगों को छोड़कर दूसरे सभी क्षेत्रों मे अच्छे गुणयुक्त माल नही बन पा रहे थे।[1] इसमे सुधार करने के लिए जब सीधे उपाय सफल न हुए तो वैधानिक दबाव का सहारा लिया गया। 1940 के कानून द्वारा खराब किस्म के माल बनाने की जिम्मेदारी सिद्ध हो जाने पर 5 से 8 वर्षों तक का कठोर कारावास दिया जा सकता था।

द्वितीय योजना के अन्तिम चरण मे और तृतीय योजना के आरम्भ से ही कारखानों के आर्थिक आत्म-निर्भरता पर बहुत जोर दिया गया। मौद्रिक मूल्याकन, व्यवस्थित लेखा, और लाभपूर्ण उत्पादन की मदद से यह उद्देश्य बनाया गया कि प्रत्येक कारखाना आर्थिक आवश्यकताओं को बिना-राजकीय सहायता के पूरा कर ले। इससे राज्य पर दबाव और कारखाना प्रबन्ध मे लापरवाही दोनो पर नियन्त्रण हो गया। उत्पादन लागत और [राज्य-निर्धारित] मूल्य के अन्तर से होनेवाली हानि को राज्य पूरा करता था। यही कारण था कि किसी भी कारखाने को प्रबन्ध मे बचत करना और लागत मे कमी करने का कोई प्रभावशाली तर्क समझ मे न आता था। लागत कम हो रही थी, व्यापारिक प्रणाली पर उत्पादन के प्रत्येक अंग का लेखा रखना पुनः आरम्भ किया गया जिससे लागत और मूल्य बराबर किया जा सके; श्रमिक उत्पादकता मे वृद्धि ने भी बहुत

[1] N Voznesensky Economic Results of USSR and the Plan of National Economic Development for 1941. pp 11-12

सहायता किया। कारखानों को आर्थिक स्वतन्त्रता देकर राज्य का भार कम करने के लिए सञ्चित लाभ [reserved profit] की मात्रा असाधारण रूप से बढ़ाई गई। कुछ ही समय में औद्योगिक पूँजी का यह प्रमुख भाग बन गया। इसके साथ साथ केन्द्रीय सञ्चालन में एक उद्योग के कारखानों में आपसी विनियोग [Inter-investment] की प्रथा को खूब प्रोत्साहन दिया गया। दृढ़ और सम्पन्न कारखाने उसी उद्योग के कमजोर कारखानों को आर्थिक सहायता देकर सँभालते रहते थे। पूँजीवादी सगठन की यह भयङ्कर कुप्रथा ने एकाधिकार और उपभोक्ताओं के शोषण को जन्म दिया। किन्तु रूस ने इस विकार को औषधि बनाकर अपनी अर्थव्यवस्था को आन्तरिक बल और दृढ़ता प्रदान किया।

राजकीय नियन्त्रण जब सर्वव्यापी रूप में स्थापित किया गया तो उसके शासन के लिये अफसरशाही [Bureaucracy] का ऐसा जटिल आडम्बर बना कि औद्योगिक सङ्गठन में तत्कालिक निर्णय [Quick decision] और उत्तरदायित्व [Responsibility] अत्यन्त कठिन हो गया। तृतीय योजनाकाल में सङ्गठन सुधार पर विशेष ध्यान देकर दोहरा काम और पेचीदी प्रणाली को बहुत कुछ कम किया गया किन्तु अलग-अलग विभागों में सन्तुलन तथा सम्पर्क [Balance and Co-ordination] की समस्या हल न हो सकी। 1939 में विश्व युद्ध छिड़ गया। कुछ ही समय बाद रूस भी सम्मिलित होने के लिये बाध्य हुआ। प्रभाव यह पड़ा कि यह योजना अधूरी ही छोड़ दी गयी। 1941 से रूस लड़ाई में उतरा और देश सम्पूर्ण शक्ति से हिटलर का प्रभुत्व तोड़ने में जुट गया। युद्ध का विनाश, जनहानि और अव्यवस्था ने रूसी प्रगति में बाधा उत्पन्न किया, प्रगति भी कम कर दिया किन्तु उन्नति के लिये अत्यन्त शक्तिशाली प्रेरणाओं को जन्म देकर भविष्य के विकास का आकार बहुत ही बढ़ा दिया।

इस प्रकार तृतीय योजना लगभग $3\frac{1}{2}$ साल तक चली। किन्तु इतने समय में सोवियत उद्योग ने अच्छी प्रगति दिखाई। औद्योगिक उत्पादन की प्रतिवर्ष वृद्धि 13% थी। भारी उद्योगों में विशेष उन्नति हुई। योजना की दूरदर्शिता के फलस्वरूप देश के पूर्वी भाग का इन तीन वर्षों में विशेष औद्योगीकरण हुआ। यूराल, वोल्गा क्षेत्र, साइबेरिया, मध्य एशिया और कजाख़स्तान का औद्योगिक उत्पादन ३ साल में लगभग 50% बढ़ा। खेती के क्षेत्र में अन्न उत्पादन 1940 में 119 मिलियन टन पहुँचा था। दक्षिणी-पूर्वीय प्रदेशों में विज्ञान की सहायता से अपूर्व अन्न उत्पादन की शक्ति पैदा की गई। सामुदायिक खेती कृषि पर अपना लगभग पूर्णरूपेण प्रभाव जमा चुकी थी। पूँजी-निर्माण कार्य [Capital Construction Programme] में 130 मिलियर्ड रूबल का काम हुआ। इसका एक-तिहाई खर्च देश के पूर्वीय भाग को विकसित करने में किया गया। इसके अन्तर्गत लगभग 3,000 राजकीय मिल-कारखाने, बिजली-

घर तथा दूसरे उद्योगों ने उत्पादन आरम्भ किया। पूर्वीय क्षेत्रों के विकास का महत्व संकट आने के पहले समझ लेने से रूस ने संसार का इतिहास ही बदल दिया। युद्ध आरम्भ होने के बाद आश्चर्यजनक शीघ्रता से उद्योगों को युद्धकालीन उत्पादन में लगाया गया। हिटलर के आक्रमण के बाद केवल एक वर्ष में लगभग एक हजार तीन सौ बड़े कारखाने [मोटर, हवाई जहाज, रेलवे इञ्जन आदि] बढ़ती हुई जर्मन सेनाओं के सामने से उखाड़कर एक हजार मील पूर्व में पुनर्स्थापित कर दिए गए। संसार के साहसपूर्ण कर्मठ पुरुषार्थ का ऐसा दूसरा उदाहरण कभी सामने नहीं आया।

द्वितीय विश्व युद्ध ने रूसी अर्थव्यवस्था पर भयंकर दबाव डाला। विशाल और सुसज्जित जर्मन सेनाएँ बवंडर की तरह रूस पर छा गई। अदम्य साहस तथा अपूर्व सहनशक्ति से देश ने इनका सामना किया। आधुनिक स्तर पर पूर्ण विकसित न होने से मशीनों की कमी सैनिकों तथा नागरिकों के बलिदान से पूर्ण की गई। इसका निश्चित आँकड़ा तो प्राप्त नहीं है फिर भी विभिन्न अनुमानों के अनुसार सब मित्रराष्ट्रों से अधिक रूसी ही युद्ध में काम आये। लगभग 125 से 150 लाख व्यक्ति तक मारे गए।

औद्योगिक प्रदेश तथा प्रमुख कृषि उत्पादन क्षेत्र देश के हाथों से निकल गए। युद्ध के प्रथम दो वर्षों में औद्योगिक उत्पादन में 25% से अधिक और कृषि उत्पादन में लगभग 40% की कमी हुई।

जनता और साधन की इतनी विशाल हानि उठा कर भी देश की प्रगति का प्रयास निरन्तर चलता रहा। युद्ध की समाप्ति होने भी न पाई थी कि स्तालिन ने चौथी पञ्चवर्षीय योजना की घोषणा की। इससे स्पष्ट है कि युद्ध के घोर संकटकाल से आत्म-विश्वास एवं आशावादिता ने रूसियों का साथ नहीं छोड़ा।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—[1946-1950]

इस योजना का केवल संक्षिप्त प्रकरण ही प्रकाशित किया गया। इसके तीन उद्देश्य थे : (1) युद्धकालीन विध्वंस का पुनर्निर्माण, (2) 1939-40 का उत्पादन-स्तर कृषि तथा उद्योग में फिर से प्राप्त करना और (3) जहाँ तक सम्भव हो इसके आगे बढ़ना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति में देश की संपूर्ण शक्ति जुट पड़ी। भारी उद्योग, रेल यातायात, को प्राथमिकता दी गई। लगभग 40 हजार मील लम्बी रेलवे लाइन नष्ट कर दी गई थी जिससे कमजोर यातायात व्यवस्था प्रायः बेकार हो गई। योजना ने इस कमी को पूरा करने का निश्चय किया। 6,000 भाप इञ्जिन, 550 बिजली इञ्जिन और 850 डीजल इञ्जिन के साथ 4½ लाख मालगाड़ी के और 6 लाख यात्री डिब्बे बनाने का प्रयत्न हुआ। रेल के पूँजी निर्माण पर 40 मिलियर्ड रूबल रखा गया। अन्तर्देशीय जल-यातायात में 1950 तक 38% उन्नति का विचार था जिसके लिए नदियों की सफाई

बन्दरगाह और जहाज बनाने के 5 कारखाने स्थापित हुए। इसी प्रकार व्यापारी समुद्री बेड़ा में भी दोगुने से अधिक विस्तार हुआ।

उद्योग के क्षेत्र में 1950 तक आशा की जाती थी कि 1940 से उत्पादन 48% बढ़ जायगा। 1945 के मूल्य में अनुमानित आँकड़ों के अनुसार 1940-50 के बीच उद्योगों में पूँजी निर्माण कार्य लगभग 157 मिलियर्ड रूबल निश्चित किया गया। लोहा और स्पात उद्योग पर ही पुनर्निर्माण की सारी योजनाएँ निर्भर करती थीं। उस योजना ने 1940 से 35% अधिक उत्पादन करने का प्रयत्न किया। 45 स्पात भट्ठियाँ [Blast Furnaces], 165 खुली भट्ठियाँ [open hearth furnaces] 15 कनवर्टर और 90 बिजली की भट्ठियाँ बनाई गई। इन सब का उत्पादन 16 मिलियन टन से अधिक स्पात था। कोयले में 51% वृद्धि आवश्यक समझी गई। दक्षिण-पूर्व में नई कोयले की खानों का पता चला। इन सब का प्रभाव यह था कि 1946-50 के बीच 183 मिलियन टन कोयला पैदा करने वाली खानें उत्पादन में लगीं। पेट्रोल का महत्व युद्ध ने इतना अधिक बढ़ा दिया कि किसी भी मूल्य पर इसके अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित हुआ। विद्युत उत्पादन में भी 1940 से 70% अधिक उत्पादन निश्चित किया गया। मशीन निर्माण उद्योग के प्रत्येक अङ्ग में दूने से अधिक उत्पादन का लक्ष्य था। इसमें प्राय: हर प्रकार के यंत्र सम्मिलित थे। रसायन-उद्योग युद्ध के पहले से 50% अधिक ऊँचा रखा गया। कपड़ा तथा अन्य हल्के उद्योगों पर ऊपर की श्रेणी से बचे हुए साधन खर्च करने की व्यवस्था थी। इसी कारण जनता के त्याग की मात्रा में उस योजना के अन्तर्गत कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

कृषि के क्षेत्र में युद्ध की हानि बहुत अधिक थी। लगभग 10 लाख सामुदायिक फार्म, 1 5 लाख ट्रैक्टर तथा 50 हजार हारवेस्टर कम्बाइन मशीनें नष्ट हो गई। 8 लाख वर्ग मील भूमि जर्मनी के कब्जे में चले जाने से रूसी कृषि टूट गई। इतने बड़े नुकसान को फिर से पूरा करके 27% वृद्धि की योजना बनाई गई। औद्योगिक फसलें एवं पशु-धन को बढ़ाने में सरकार पूरी तरह क्रियाशील बनी। युद्धकाल में भोजन की कमी, दुश्मन का डर और जर्मन सिपाहियों की लापरवाही से रूस में दूसरी बार पशुओं की संख्या बहुत अधिक घट गई। इसमें कुछ तो भोजन के काम आए किन्तु अधिकतर किसानों ने शत्रु से बचाने के लिए स्वयं नष्ट कर दिया अथवा बीमारी और भूख से मर गए। कृषि-क्षेत्र के विभिन्न अङ्गों को पुनर्जीवित करने के लिए लगभग 20 मिलियर्ड रूबल खर्च हुआ। इसमें आधे से अधिक मशीन और ट्रैक्टर केन्द्र पर खर्च किया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि युद्ध के अपार विनाश से 1950 तक देश ऊपर उठ चुका था। इस योजना ने अपने लक्ष्यों की पूर्ति सदा की तरह अपने समय से पहले किया। इतने बड़े

निर्माण कार्य की पूर्ति के लिए विज्ञान और यान्त्रिक कुशलता के विकास पर पूरा जोर देना पड़ा। इस योजना की पूर्ति के आँकड़े इस प्रकार हैं।[1]

	1940	1950	
		योजना लक्ष्य	वास्तविक पूर्ति
1 1926-27 के मूल्य पर राष्ट्रीय आय	100	138	164
2. मजदूर तथा कर्मचारी	100	—	126
3. औद्योगिक उत्पादन	100	148	173
4. रेल-यातायात	100	128	146
5 विद्युत-उत्पादन	100	170	189

पंचम पंचवर्षीय योजना : 1950-1955

ऐसा प्रतीत होता है कि रूसी अर्थशास्त्री प्रयत्न कर रहे थे कि देश में विकास की गति इतनी अधिक रखी जाय कि 10 या 15 सालों में कुल उतनी उन्नति हो जाय जितनी विश्व युद्ध न होने पर होती। दीर्घकालीन योजना में इस प्रकार की रुचि रूस की विशेषता रही है। वहाँ के अर्थशास्त्री देश का विकास योजनाओं की सख्या में नापते हैं। पाँचवी योजना भी कम्युनिस्ट पार्टी के पुराने नक्शे का एक क्रम रही। भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी गई। इसके साथ सुरक्षा को सुदृढ़ बनाना और अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक अङ्ग को इसी दृष्टिकोण से विकसित करना इस योजना का ध्येय था। यांत्रिक प्रगति [Technical Progress] और श्रम-उत्पादकता में वृद्धि उस समय तक अर्थहीन बनी रहेगी जब तक कि उत्पादन करने वाले साधनों का उत्पादन उपभोग की वस्तुओं से अधिक न हो। यही योजनाओं की विचारधारा का मुख्य क्रम था।

पंचम योजना औद्योगिक उत्पादन में प्रतिवर्ष 12% अथवा 5 वर्षों में 72% वृद्धि करने का अनुमान करती थी। 1951-55 में 85% वृद्धि हुई। पूँजी के साधन [Capital Goods] का वार्षिक विकास 13% अथवा 5 वर्षों में 80% रखा गया

1 Strumilin Planning in the Soviet Union, p 52

था, परन्तु विशेष प्रयत्नों द्वारा यह 91% हुआ। इसके विपरीत उपभोग सामग्री का उत्पादन अनुमानित 11% अथवा 5 वर्षों में 65% की जगह वास्तविकता में 76% रहा। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि युद्ध के बाद में उत्पादन तथा उपभोग की सामग्री में विकास की मात्रा समानता की ओर बढ़ रही थी। युद्ध के पहले सुरक्षा पर अत्यधिक महत्व होने से यह सम्भव न हो सका था। अतः यह कहना उचित न होगा कि युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद भी कमी तथा त्याग [austerity and sacrifice] रूसी योजना का मुख्य अङ्ग बना रहा। इस समय उपभोग के औद्योगिक सामान पहले से लगभग दूने की मात्रा में बनाये जा रहे थे। पार्टी अधिवेशन में ख़ुश्चेव ने बतलाया कि इस समय तक भारी उद्योग आशातीत रूप से इतनी उन्नति कर चुके हैं कि आसानी के साथ जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव है। इस उन्नति को उचित तरीके से समझने के लिये तुलनात्मक अध्ययन अधिक लाभप्रद होगा। विकास की यह गति पूँजीवादी देशों के विकास से लगभग 50% अधिक थी। 1950-55 के बीच संयुक्त राज्य अमेरिका के विकास की गति से यह दूनी थी।

औद्योगिक उत्पादन [1929 का प्रतिशत][1]

देश	1927	1937	1946	1950	1955
सोवियत रूस	100	429	466	1,082	2,049
संयुक्त राज्य अमेरिका	100	103	153	190	234
ब्रिटेन	100	124	118	153	181
फ्रांस	100	82	63	92	123
पूँजीवादी देश	100	104	107	148	193

इस प्रकार सोवियत रूस की प्रगति पूँजीवादी देशों से लगभग 11 गुना अधिक है।

औद्योगिक प्रगति का सबसे अच्छा माप-दण्ड अर्थ-व्यवस्था में पूँजी का विनियोग होता है। पंचम योजना में इसकी मात्रा 686·7 मिलियर्ड रूबल थी। यह विनियोग प्रथम योजना के 10 गुने से भी अधिक था। इस विशाल योजना को लगभग 4 वर्ष 4 महीने में ही पूरा कर लिया गया। इसकी सफलता का अनुमान इन आँकड़ों से लगता है।

---

[1] Report to the 20th Congress of Communist Party, 1956 p -

1955 में पूर्ति[1]

	1950	योजना	वास्तविक पूर्ति
1 राष्ट्रीय आय	100	160	168
2 रोजगार	100	115	120
3. औद्योगिक उत्पादन	100	117	185
4 भारी उद्योग	100	180	191
5. अन्य उद्योग	100	165	176
6. विद्युत-शक्ति	100	180	187
7. श्रम उत्पादकता—			
उद्योग	100	150	144
निर्माण मे	100	155	145
कृषि मे	100	140	147

सबसे अधिक विकास इञ्जीनियरिङ्ग उद्योग मे हुआ। 120% की वृद्धि प्राप्त करना सचमुच आश्चर्य की बात थी। तेल का उत्पादन 80%, कच्चा लोहा 74% और कोयला 50% बढ़ा। इस योजना के प्रथम भाग मे कृषि-क्षेत्र मे फिर से असतुलन दिखाई पड़ने लगा। स्टालिन की मृत्यु के बाद कृषि का विकास और उपयोग के उद्योगों का महत्व राज्य-शक्ति के झगड़े मे सबसे बड़ा बहाना बनाया गया। इसमे सदेह नहीं कि कृषि उत्पादन 1953 तक नाममात्र की ही प्रगति कर पाया था। किन्तु इसके बाद कृषि-क्षेत्र पर पूरा ध्यान केन्द्रित होने से 100% से अधिक वृद्धि हुई। 1954-55 मे कम्युनिस्ट पार्टी ने 3 लाख 50 हजार नवयुवकों को बजर भूमि को खेती योग्य बनाने के कार्य पर लगाया। 2 लाख ट्रैक्टर की मदद से 33 मिलियन हेक्टर भूमि 2 सालों मे खेती योग्य बन गई। 1955 मे अन्न उत्पादन 1950 से 129% बढ़ा। औद्योगिक फसलों मे भी अच्छी वृद्धि हुई। पशु-पालन मे सुधार से गायो की सख्या 20%, भेड़ 32% और सूअर 83% बढ़े।

पचम योजना मे योजना पद्धति को और पुष्ट बनाने के प्रयत्न किये गये। आर्थिक निर्णय के विकेन्द्रीकरण के लिये ठोस कदम उठाए गये। केन्द्र के स्थान पर प्रजातत्रो को [Union Republics] को आर्थिक निर्माण का भार मिला। इसके द्वारा अलग-अलग सस्थाओं का कार्य-क्षेत्र बढ़ाया गया जिससे अधिक केन्द्रीयकरण की कमजोरियाँ दूर हो सके। शासन और औद्योगिक प्रबन्ध को सरल बनाने का काम चलता

[1] Strumilin Op Cit, p. 54

रहा। दूसरे विश्व युद्ध के बाद योरप के अनेकों देशों का रूसी प्रभाव-क्षेत्र में आना बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। साधनों में वृद्धि के साथ अधिकार क्षेत्र और बाजार बढ़ जाने से रूस की योजनाओं का दृष्टिकोण और भी व्यापक बनने में सफल हुआ। पंचम योजना तथा उसके बाद के प्रयत्न इसी कारण अपना आकार बराबर बढ़ाते रहे।

छठवीं पंचवर्षीय योजना [1956-60]

कम्युनिस्ट पार्टी का एक ऐतिहासिक अधिवेशन फरवरी 1956 में हुआ। इस अधिवेशन में नये रूसी शासन ने अनेकों महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का निश्चय किया। जोसेफ स्तालिन की मृत्यु के बाद इस अधिवेशन ने आर्थिक ढाँचे को पुनर्संगठित करके नई दिशा की ओर मोड़ना चाहा था। अनेक सैद्धान्तिक परिवर्तनों के साथ-साथ छठवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप भी स्वीकार किया गया। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह योजना स्तालिन की परिपाटी पर तैयार की गई थी और नये नेताओं ने अपने नये जोश में इसके उद्देश्यों पर शुरू में ध्यान नहीं दिया। इसीलिये आरम्भ होने के साथ ही साथ इस योजना के अव्यावहारिक लक्ष्यों को बदलने की जरूरत पड़ी। इसका प्रथम संशोधन 1957 में हुआ और 1958 में इसे स्थगित कर दिया गया।

इस योजना की विशेष बातों पर संक्षेप में ध्यान देना उचित होगा। उद्योग-धन्धों में स्वयं-चालित यंत्रों [Automation] का प्रयोग बढ़ाकर यह कोशिश की गई कि आधुनिक विज्ञान का पूरा लाभ उठाया जाय। कृषि संगठन तथा उत्पादन को बहुत ऊँचा स्थान मिला। अन्न का उत्पादन बढ़ाने के लिये हर प्रकार की चेष्टा की गई थी। अन्य क्षेत्रों से, उद्योग को सदा की तरह महत्व दिया गया। यह आशा थी कि औद्योगिक उत्पादन में 13% उन्नति होगी। निकिता ख्रुश्चेव ने रूसी इतिहास में पहली बार उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन पर अत्यधिक जोर दिया। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि वह समय आ गया है कि रूस के पास बहुत शक्तिशाली भारी उद्योग स्थापित हो चुके हैं। इसलिये यह सम्भव है कि उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि की जाय। 1955-60 के लिये उत्पादन की वस्तुओं में 70% और उपभोग की वस्तुओं में 60% वृद्धि करना तय हुआ। पहले कभी भी जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति पर इतना ध्यान नहीं दिया गया था।

यह योजना कितनी अव्यावहारिक थी इसका अनुमान निर्धारित लक्ष्य [targets] तथा उनकी पूर्ति से पता चलता है।

औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन में वार्षिक वृद्धि [प्रतिशत में][1]

	छठवीं योजना वार्षिक लक्ष्य	1957-1958 में पूर्ति	सातवीं योजना के वार्षिक लक्ष्य
कोयला	8·6	2 8	2·8 से 3·2
पेट्रोल	13·6	9·4	10·7 से 11·4
गैस	31·0	19 6	25·4
बिजली	13·5	9·7	11·5 से 12·2
कच्चा लोहा	10·0	5·3	7 4 से 8·5
स्पात	8·5	5·3	6 6 से 7·3
सीमेंट	19·5	8·6	12·1 से 13 3
चीनी	14·0	5·1	8·7 से 9 9
ऊनी कपड़ा	7·7	5·2	7·6
चमड़े के जूते	8 7	4 9	5 5

इतना ही नहीं, इस तालिका से यह भी स्पष्ट है कि योजनाकर्ताओं ने छठवीं योजना की असफलता से शिक्षा ग्रहण किया। सातवीं योजना के लक्ष्य सब जगह कम तथा व्यवहारिक मालूम पड़ते हैं। यह विचारधारा निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगी।

सोवियत अर्थ व्यवस्था की वार्षिक उन्नति की दर [2]

[प्रतिशत में]

	छठवीं योजना	सातवीं योजना
1. राष्ट्रीय आय	10 0	7·1–7 4
2 औद्योगिक उत्पादन	10 5	8 8
3. उत्पादन के साधनों का उत्पादन	11·2	9 2–9·4
4. उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन	10 7	7 2–7·4
5. कृषि उत्पादन	11·0	8 0
6 श्रम उत्पादकता :		
A. उद्योग	8·4	5 5–6 0
B. निर्माण	8·7	6 9–7 0
C. कोलखोज	14·9	10 4
7. फुटकर व्यापार	8·4	6·7–7 1
8 रेल यातायात	7·3	4·9–5·5

[1] Bulletin, May 1959, p 24 [Institute for the Study of the USSR Munich]

[2] Ibid page 25

कृषि के क्षेत्र में छठवीं योजना ने उन्नति करने का विशेष प्रयास किया था। कुल अन्न का उत्पादन बढ़ाकर 180 मिलियन टन [11,000 मिलियन पूड] करने का विचार था। कृषि के दूसरे क्षेत्र में उत्पादन के लक्ष्य इस प्रकार थे।[1]

	1960 [1950 का प्रतिशत]
कपास	156
फ्लेक्स	135
चुकन्दर	151
आलू	185
अन्य तरकारियाँ	218
मांस	200
दूध	195
अण्डा	254
ऊन	182

अन्त में केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि छठवीं योजना की असफलता एक वरदान सिद्ध हुई। रूसी योजनाओं में से अव्यवहारिकता की मात्रा कम होने लगी। भविष्य के लिए वातावरण आशापूर्ण बनाने में यह बहुत सहायक होगा।

सप्त वर्षीय सातवीं योजना [1959-95]

इस योजना के अध्ययन से पहली चीज यह स्पष्ट होती है कि इसमें जनता का रहन-सहन का स्तर उठाना इसका मुख्य ध्येय था। कम्युनिष्ट पार्टी के 21वें अधिवेशन में इस योजना को स्वीकार करते हुए इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन इतना अधिक बढ़ाया जाय कि रूसी नागरिक सुविधा-जनक जीवन बिताने में समर्थ हों। योजना का समय 5 वर्षों से बढ़ाकर 7 वर्ष कर दिया गया। योजना प्रणाली स्थिर होने से और योजनाकर्ताओं के अनुभव में वृद्धि के कारण भविष्य में और दूर तक देख सकना सम्भव हुआ। साथ ही साथ ऐसे उपाय भी उनके हाथ में आये जिसके द्वारा भविष्य के परिवर्तनों का नियंत्रण अधिक गहराई तक बढ़ा। जो काम इसमें उठाये गये वे इतने बड़े और पेचीदे हैं कि उनकी सफल पूर्ति

[1] National Economy of U. S. S R. Statistical Returns, p 92

के लिये ६ वर्ष का समय कम था। अभिलाषापूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये वही मार्ग अपनाया गया जो अपना सार्थकता सिद्ध कर चुके थे। उत्पादन के साधनों का उत्पादन ही वह मार्ग है। यह योजना रूस की पुरानी इच्छा पूरा करने में सफल होगी अर्थात अनेकों आवश्यक क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमरीका के उत्पादन से देश आगे बढ़ जायगा। इसके लिये 1,600 से अधिक कारखाने स्थापित होंगे जिनमें हल्के उद्योग और भोजन उद्योग [Food Industries] का विशेष महत्व रहेगा। उपभोग के उद्योगों की वृद्धि के लिये मशीनों का उत्पादन और भी बढ़ाना पड़ेगा। कच्चे माल की प्राप्ति के लिये कृषि का महत्व अर्थव्यवस्था में और ऊँचा उठाने का विचार है। 100 मिलियन हेक्टर में अधिक भूमि खेती के अन्दर होने से कृषि यंत्रों की आवश्यकता बराबर बढ़ती जायगी। योजना ने इस क्षेत्र को उचित महत्व दिया है। रसायन उद्योग आधुनिक प्रगति के प्रतीक बनते जा रहे हैं। इसमें न पिछड़ने के लिये 270 बड़े रसायन कारखाने खोले जायेंगे। कहने के लिये तो यह योजना हर प्रकार से उपभोग की सामग्री का उत्पादन इतना बढ़ायेगी कि जनता की सब माँग पूरी हो सके, लेकिन हर स्थान पर यह कहा गया है कि यह उसी समय हो सकेगा जबकि भारी उद्योग और भी विकसित किये जायें। इस-लिये वास्तविकता में यह योजना भी जनता की माँगों को पूरा कर सकेगी, इसमें संदेह होता है। कुछ प्रगति तो इस दिशा में हुई है। बढ़ती हुई शक्ति से प्रेरित होकर उप-भोक्ताओं को छूट भी मिली, किन्तु यह कहाँ तक पर्याप्त होगा या फिर किसी बहाने राष्ट्रोन्नति के पक्ष में कुछ दिन और त्याग तथा धीरज के साथ प्रतीक्षा करने की सलाह दी जायगी, यह नहीं कहा जा सकता। इतना जरूर है कि रूसी योजनाओं की एक पुरानी कमी शायद 1959-65 के बीच पूरी हो सके। मकानों की कमी, बढ़ती हुई आबादी और औद्योगीकरण के कारण जटिल समस्या बन गई है। पिछले दो सालों में लगभग 30 लाख फ्लैट्स [flats] बनाये गये। नयी योजना अपने काल में 150 लाख मकान [houses] बनाने का प्रयत्न करेगी। किन्तु इस क्षेत्र में फिर से यह याद दिलाया गया कि मकानों का निर्माण मशीनों पर निर्भर करता है। इस सुविधा की आशा उस समय तक न करना चाहिये जब तक मकान बनानेवाली मशीनों का उत्पादन आवश्यक मात्रा में न बढ़ जाय। अतः प्रत्येक क्षेत्र में बड़ी सुन्दर आशाएँ दिलाई गईं जिनकी पूर्ति एकमात्र भारी उद्योगों की उन्नति पर निर्भर करती है। सामाजिक सुरक्षा और समाज कल्याण की दूसरी सेवाओं पर व्यय और भी बढ़ेगा। इन पर 1942 में 42 मिलियर्ड रूबल, 1958 में 215 मिलियर्ड रूबल खर्च हुए। यह मात्रा 1965 में लगभग 360 मिलियार्ड रूबल होगी।[1]

---

1. एक मिलियर्ड = 1,000 मिलियन

सप्तम् योजना ने अपने सात साल के कार्यकाल के लिये कुछ लक्ष्य निर्धारित किये हैं : **प्रथम**, 1959-65 के बीच अर्थव्यवस्था की प्रत्येक शाखाओं में नया विकास जिसमें भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी जायगी। इस विकास से आर्थिक और यान्त्रिक प्रगति सबल बनकर साम्यवाद की स्थापना में सहायक होगी। शहरों और गाँवों की जनता की वास्तविक आय में वृद्धि, निम्न तथा मध्यम वर्ग के मजदूरों तथा कर्मचारियों के वेतन में उन्नति, उपभोग के उत्पादन तथा मकान निर्माण पर अधिक जोर दिया गया। नई पीढ़ी को जन्म से ही आदर्श साम्यवादी बनाने के लिये उनको सैद्धान्तिक शिक्षा के प्रसार को विशेष स्थान मिला है। **द्वितीय**, शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतिस्पर्धा को बहुत ऊँचा स्थान मिला है। इसके द्वारा सोवियत संघ का प्रमुख आर्थिक उद्देश्य पूर्ण होगा अर्थात् कम से कम समय में प्रति व्यक्ति उत्पादन में पूँजीवादी देशों का बराबरी करके आगे निकल जाना। इसके लिये उत्पादन की मुख्य शाखाओं को तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को अधिकतम गतिशील बनाना निश्चय हुआ है। राजकीय मामलों पर जो प्रभुत्व रूसी सरकार को प्राप्त है उसके कारण इतना ऊँचा उठ जाना कोई असम्भव नहीं। उत्पादन प्रणाली में बहुत-सी बातों पर ध्यान देने के लिये प्रेरित किया गया है जैसे उत्पादन के गुणों में सुधार, विकास की गति में वृद्धि, हर प्रकार के धातु उद्योग तथा आधुनिक रसायन उद्योग, विशेषकर कृत्रिम धागे तथा वस्तुओं [Synthetic fibres, plastics and other materials] का निर्माण, कोयले के स्थान पर तेल और गैस का प्रयोग, बड़े पैमाने पर थर्मल बिजली उत्पादन, प्रत्येक निर्माण के कार्य का अधिकतम यन्त्रीकरण जिससे श्रम उत्पादकता में वृद्धि हो, रेलों का विद्युतकरण और डीजल इञ्जन का प्रयोग, बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिये कृषि की प्रत्येक शाखा में विकास और मजदूरों के लिये मकान की कमी दूर करना। **तृतीय**, सात सालों में देश के प्रचुर प्राकृतिक साधनों की खोज तथा विकास। लाभपूर्ण उत्पादन शक्ति का बँटवारा करने का प्रयत्न किया जायगा जिससे प्रत्येक क्षेत्र विकसित हो और उद्योग, कच्चा माल, ईंधन, बाजार के अधिकतम निकट पहुँचाये जायें। यहाँ पर पूर्वी रूस के विकास को विशेष स्थान दिया गया है। यह अनुमान है कि पूर्वी क्षेत्रों में रूस का ¾ कोयला, 70% जंगल और 90% जलविद्युत के साधन हैं। इनके अतिरिक्त प्रायः हर प्रकार के रसायन एवं खनिज पदार्थ यहाँ उपलब्ध है। इन सुरक्षित प्रदेशों में हर प्रकार के उद्योग विकसित किये जा रहे हैं। यूराल, साइबेरिया, सुदूर-पूर्व एशिया, कजाखस्तान [Kazakhastan] तथा मध्य एशिया में सप्तम योजना कुल पूँजी विनियोग का 40% से अधिक खर्च करेगी। इसका प्रभाव यह होगा कि 1965 में कुल उत्पादन में पूर्वी क्षेत्रों का भाग बहुत बढ़ जायगा : कच्चा लोहा 43%, स्पात 47%, कोयला 50%, तेल 30% और विद्युतशक्ति 46%। पूर्वी क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी प्राकृतिक

साधनों का विकास किया जायगा। अनाज, औद्योगिक फसलों तथा पशु उत्पादन के विकास में हर प्रकार का सहारा देकर अधिक उपज प्राप्त करने का विचार है। **चतुर्थ**, अर्थव्यवस्था के प्रत्येक अंग में यान्त्रिक कुशलता का विकास [technological progress] अधिक से अधिक किया जायगा। इससे इन्जीनियरिंग उद्योग को सबसे ऊँचा स्थान मिलेगा। इसी की मदद से अणुशक्ति का शान्तिपूर्ण प्रयोग करना भी इस योजना का एक उद्देश्य है। **पंचम**, उत्पादन के बढ़ाने में अर्थव्यवस्था का समाजवादी संगठन, नई प्रणाली तथा यंत्रीकरण का प्रयोग और बराबर बढ़ता हुआ अनुभव तथा कुशलता का सहारा श्रम-उत्पादकता को प्राप्त होगा। इस प्रकार उत्पादन वृद्धि के लिये संगठन सुधार एवं आधुनिक प्रणाली अधिक महत्वपूर्ण मानी गई हैं। इसपर जोर देकर योजना-कर्ताओं ने उत्पादन व्यवस्था को असीम स्थिरता प्रदान की है।

पूँजी निर्माण तथा विनियोग

पूँजी विनियोग का जो आकार इस योजना में प्रस्तुत किया गया है वह एक प्रकार का रूसी चमत्कार है। १९५६-६५ के बीच राज्य द्वारा लगाई रूसी पूँजी 1940 से 1970 मिलियर्ड रूबल होगी। तह अद्भुत विनियोग 1917-58 के बीच जितनी पूँजी देश में लगाई गई है, लगभग उसी के बराबर है। इसका अर्थ यह हुआ कि चालीस वर्षों में रूस की आश्चर्यजनक प्रगति के लिए जितना खर्च किया गया था लगभग उतना ही केवल सात वर्षों में किया जायगा। इस पूँजी के व्यय के लिए मोटे-मोटे सिद्धान्त सामने रखे गए। यह निश्चय किया गया है कि जहाँ पर नये प्राकृतिक साधनों का पता लगा है वहीं पर नये कारखाने स्थापित किये जायँ। इस वर्ग में तेल, गैस, बिजली, खनिज पदार्थ इत्यादि आते हैं। निर्माण उद्योगों में [Manufacturing industries] नये कारखानों पर पूँजी न लगा करके वर्तमान कारखानों का आधुनिककरण व पुनर्संगठन अधिक लाभप्रद होगा। इस नीति के पीछे इतनी पक्की यथार्थवादिता दिखलाई पड़ती है जो प्रत्येक देश के लिए प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। प्रथम योजना में स्थापित अधिकतर कारखाने इस समय तक पुनर्निर्माण माँग रहे हैं। अगर इन पर ध्यान न दिया जाता तो पूँजी, श्रमशक्ति तथा उत्पादन के गुण [quality] पर बहुत बुरा असर पड़ना अनिवार्य था।

1959–65 के बीच कुल पूँजी विनियोग में 80% की वृद्धि होगी। उद्योग के क्षेत्र में पिछले 7 सालों का दूना धन लगाया जायगा। लगभग 100 मिलियर्ड रूबल लोहे तथा स्पात उद्योग में लगेंगे जो 1952-58 से 140% अधिक है। इसी प्रकार कच्चा लोहा उद्योग में 180% की वृद्धि की जायगी। रसायन उद्योग पर भी 100-105 मिलियर्ड रूबल खर्च होगा। इसका आधा भाग प्लास्टिक, कृत्रिम धागे, कृत्रिम रबड़

तथा स्प्रिट बनाने के लिए रखा गया है। तेल तथा गैस उद्योग को विशेष प्रकार से विकसित करने के लिए चुना गया। 170-173 मिलियर्ड रूबल खर्च करके पिछले सात सालों की अपेक्षा 130-140% वृद्धि होने का अनुमान है। कोयले का महत्व कम कर दिया गया किन्तु विद्युत उत्पादन पर 125-129 मिलियर्ड रूबल खर्च होगा जिसमें 70% वृद्धि की आशा है। हल्के तथा भोजन उद्योग [light and food industry] में पिछले सात सालों की दूनी वृद्धि की जायगी। मकान निर्माण के लिए 375-380 मिलियर्ड रूबल अलग किया गया है। इतनी पूंजी लगने पर मकान की कमी सचमुच कम हो जाना चाहिये।

कृषि के क्षेत्र में राज्य ने 150 मिलियर्ड रूबल लगाने की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त, सामुदायिक फार्मों के भूमि तथा पशु उत्पादन से उत्पन्न पूंजी कृषि-विकास में लगेगी। यह अनुमान किया जाता है कि 1959-65 में साम्प्रदायिक फार्म 250 मिलियर्ड रूबल उत्पादन तथा अन्य सुविधाओं के विकास पर खर्च करेंगे और 95 मिलियर्ड रूबल कृषि यन्त्र खरीदने में लगाया जायगा। इस प्रकार कृषि में कुल मिलाकर 500 मिलियर्ड रूबल की पूंजी लगेगी। यह 1952-58 का लगभग दूना है। रेल यातायात में पिछले सात वर्षों से 85-94% अधिक विस्तार होगा जिसके लिए 110-115 मिलियर्ड रूबल सुरक्षित रखा गया है। रेलों के विद्युतकरण पर व्यय में 170% की वृद्धि होगी।

निर्माण के समय तथा पूंजी में अधिकतम बचत करने के लिए सप्तम योजना ने बड़ी महत्वपूर्ण कोशिश की है। विकास में सामंजस्य [Co-ordination] लाना पूंजी विनियोग का विशेष कार्य होगा। अभी तक चली आ रही कमजोरियों को दूर करके यह प्रयत्न किया जायगा कि क्षेत्रों में कारखानों का बँटवारा, विभिन्न कारखानों के उत्पादन में विशिष्टीकरण [Specialization] और एक क्षेत्र के सभी उद्योगों में सहयोग तथा सामंजस्य उत्पन्न हो। एक स्थान के हर कारखाने को एक स्वतन्त्र इकाई की तरह निर्माण करने से पूंजी का व्यय और उत्पादन की लागत अकारण बढ़ जाती थी। नये कारखानों के निर्माण में सुन्दरता तथा प्रतिष्ठा के स्थान पर बचत, सुविधा और अच्छे उत्पादन का दृष्टिकोण सामने रखा जायगा। उद्योगों में आत्म-निर्भरता उत्पन्न हो इसलिए कारखाना निर्माण का प्रारूप [draft] व प्रारम्भिक रूपरेखा तैयार करने का व्यय राजकीय बजट से हटाकर उस कारखाने के बजट में सम्मिलित कर दिया गया है। इस परिवर्तन से उद्योगों का लागत लेखा आधार [Cost accounting basis] और भी दृढ़ होगा।

कृषि

छठी योजना 1960 तक चलने वाली थी किन्तु 1958 में उसको स्थगित कर

दिया गया । छठी योजना के अन्तिम दो वर्ष (1959-60) सातवीं योजना के प्रथम दो वर्ष बन गये । कम्युनिस्ट पार्टी के 21 वे अधिवेशन ने फरवरी 1959 मे नई योजना के ध्येय स्वीकार किये । यह आशा की गई कि सात वर्षो मे कृषि-उत्पादन इतना बढा लिया जायगा कि जनता के भोजन की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जायँगी । इसके अतिरिक्त उद्योगो के लिए कच्चा माल और कृषि उत्पादन की राजकीय माँग 1965 तक पूरी कर ली जायगी । कृषि-क्षेत्र मे प्रत्येक वर्ग का उत्पादन बहुत अधिक मात्रा मे उठाने का विचार है । समाजवादी उद्योगो ने कृषि को आधुनिक यन्त्रो से सुसज्जित करके, कृत्रिम खाद तथा अन्य रसायन प्राप्त करने मे बहुत सहयोग दिया । सामूहिक फार्म अथवा कोलखोज़ मे कुशल श्रम की वृद्धि हुई । बहुत बडी मात्रा मे नई भूमि कृषि मे लाई गई और बंजर भूमि को कृषियोग्य बनाया गया ।

इतना हो चुकने पर 7 वी योजना इस बात का प्रयत्न करेगी कि खेती की उन्नति और समाजवादी उत्पादन को और घनिष्ठ रूप से पास लाया जाय । इसका अर्थ यह होगा कि राजकीय क्षेत्र [state farms] और कोलखोज राष्ट्र की समाजवादी सम्पत्ति होने के नाते एकरूपता की ओर अग्रसर होंगे । यह काम कई तरह से किया जायगा । सामूहिक फार्म पद्धति की उन्नति, उसकी सम्पत्ति [Stocks] मे वृद्धि, अविभाजनीय कोष [Indivisible funds] का विकास व उचित सामाजिक प्रयोग, सामूहिक फार्मो मे पारस्परिक सहयोग द्वारा औद्योगिक उत्पादन करना तथा बिजलीघर, नहरे, कृषि-उत्पादन का संग्रह [Storing and processing], स्कूल एव अस्पताल बनवाना इसका मुख्य कार्य होगा । ऐसा प्रतीत होता है कि नई नीति के अनुसार भविष्य मे कोलखोज और सोवख़ोज को मिलाने का निश्चय किया गया है । राष्ट्रीय सम्पत्ति के इन दोनो रूपो को एक मे मिलाने के लिए तर्क यह है कि जब सामूहिक फार्म का उत्पादन बढ़ेगा, और यह फार्म बड़े पैमाने पर कुशल श्रम तथा आधुनिक यांत्रिक सुविधाओ के साथ विकसित होंगे, तो सामूहिक फार्म के किसानो की अधिकतर आवश्यकताएँ सार्वजनिक आर्थिक साधनो [Public economic resources] से पूरी होंगी । अतः सामूहिक फार्मो की निजी सम्पत्ति [Indivisible fund and its investments] अपना पृथक अस्तित्व खोकर राष्ट्रीय सम्पत्ति मे विलीन हो जायगी ।

राजकीय फार्म का स्थान समाजवादी कृषि मे और ऊपर उठा दिया गया है । यह अपने आदर्श प्रबन्ध, कम लागत पर उत्पादन और श्रम तथा साधनो मे बचत का प्रतीक बनकर सामने आयेंगे । इनके प्रबन्ध संगठन मे श्रम का प्रत्यक्ष सहयोग और भी बढा दिया जायगा । राजकीय खेतो मे उत्पादन बढ़ाने के लिये उनकी मशीनो तथा वस्तुओ की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति होगी । प्रत्येक क्षेत्र मे जलवायु तथा भूमि को देखते हुए उत्पादन मे विशिष्टीकरण [Specialisation] किया जायगा

जिससे राजकीय खेत अधिक लाभप्रद बन सके। उत्पादन की लागत घटाने के लिये पूरा प्रयत्न होगा। आशा है कि 1957 के आधार पर 1965 में अन्न उत्पादन की लागत मे 30% कमी, मास मे 19%, दूध मे 23%, ऊन में 10% और कपास मे 20% होगी।

इन सब परिवर्तनों मे रूसी कृषि मे जो नई उत्तेजना होने की आशा है उसके आधार पर उत्पादन का बहुत ऊँचा लक्ष्य सामने रखा गया है। इनकी पूर्ति मे पूर्वी प्रदेशों की नई भूमि तथा कृषि-विकास का विशेष स्थान होगा। अन्न के उत्पादन मे यह आशा की जाती है कि 160-180 मिलियन टन उत्पादन होगा। प्रतिवर्ग एकड उत्पादन बढाने पर विशेष जोर दिया गया है। 1954-57 के बीच प्रति हेक्टर औसत उत्पादन 620 किलोग्राम रहा। इस योजना मे इसको लगभग 1,000 किलोग्राम तक पहुँचाने की चेष्टा होगी। जहाँ तक नई भूमि खेतो मे लाने का सम्बन्ध है 1954-55 के बीच लगभग 33 मिलियन हेक्टर नई भूमि पर खेती की जा चुकी। यह अद्भुत प्रगति 1956 मे आकर लगभग 3 मिलियन हेक्टर हो गई। इन तीन वर्षो मे यह अनुमान किया जाता है कि 90% नई भूमि पर खेती की जा चुकी है। कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति मे [दिसम्बर 1958] बताया गया कि 1954-58 के बीच राज्य ने नई भूमि के विकास पर 30 7 मिलियर्ड रूबल खर्च किया और लगभग 48 9 मिलियर्ड रूबल की आय नई भूमि से हुई। इस प्रकार यह क्षेत्र सातवीं योजना के पहले ही काफी विकास कर चुका है। नई भूमि पर इतना तीव्र उत्पादन किया जा चुका है कि, वर्तमान योजना मे, उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिये इस भूमि को आराम देना ही होगा। रसायनिक खाद का प्रयोग 1965 तक 31 मिलियन टन हो जायगा, 1958 मे इसकी मात्रा केवल 10 6 मिलियन टन थी।

कृषि के पशुपलान विभाग मे बहुत उन्नति करने का आयोजन है। दूध, मांस, अण्डा और ऊन के उत्पादन पर विशेष ध्यान रखा गया है। 1952-58 के बीच मास का औसत उत्पादन प्रति वर्ष 5 लाख टन था। 1955 तक इसे 11 लाख टन, दूध 31 लाख टन से 59-66 लाख टन, ऊन 18,000 से 35,000 टन कर दिया जायगा। इसके लिये 1959-65 मे, 1952-58 के आधार पर, पशुओं की संख्या मे इस प्रकार वृद्धि होगी—पशु [Cattle] 20%, गाय 90%, भेड लगभग 50%। चारे के उत्पादन मे केवल विकास ही नहीं किया जायगा किन्तु उसमे पौष्टिकतत्व भी बढेगा। आलू और मक्का इसका आधार होंगे।

विकास की इस महत्वाकांक्षी योजना को सफल बनाने के लिये कृषि के प्रत्येक विभाग मे यन्त्र एव बिजली का प्रयोग किया जायगा। सात वर्षों मे 10 लाख ट्रैक्टर

और 4 लाख हारवेस्टर-कम्बाइन और बहुत बडी मात्रा मे अन्य कृषि यत्र बनाने की योजना है। इस अवधि मे सभी सामूहिक खेतो मे बिजली पहुँचा दी जायगी जिससे विद्युत शक्ति का प्रयोग 300% बढेगा। इसके लिये सामूहिक खेतो का अविभाजनीय कोष [Indivisible fund] सक्रिय रूप से सहायक बनेगा। यह प्रयत्न किया गया है कि सामूहिक फार्म आपस मे मिलाकर इस धनराशि की मदद से सामूहिक बिजली-घर अपने-अपने क्षेत्रों मे बनायेंगे। पिछले 40 साल से सञ्चित सामूहिक फार्म के कर्मचारियो की यह बचत अब राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप मे राजा के हाथों सौप दी जायगी।

कृषि मे श्रम उत्पादन [Labour productivity] बढाने का प्रश्न बडे प्रभावशाली रूप मे सामने आया है क्योकि 7 वी योजना कृषि को एक बडे पैमाने के उद्योग मे बदल देगी। किसान और मजदूर सहयोग [Smychka] का जो नारा लेनिन ने लगाया था वह वर्तमान परिस्थिति मे अर्थहीन घोषित कर दिया गया है। सहयोग का अर्थ होता है पृथक अस्तित्व। रूस के नये कर्णधारो ने सहयोग के स्थान पर विलयन [Integration] को अधिक उचित माना है इसीलिये सातवी योजना किसान को बदल कर औद्योगिक मजदूर का रूप दे देगी। इस रूप मे उत्पादकता की समस्या प्रथम आवश्यकता है। यह सम्भावना है कि 7 वर्षों मे सामूहिक फार्म मे श्रमिको की उत्पादकता दूनी कर दी जायगी और राजकीय खेतो मे 60-65% वृद्धि होगी।

योजना ने कृषि मे महान् परिवर्तन करने की रूप-रेखा तैयार की है। 1929-57 के बीच वे सभी आवश्यकताएँ उत्पन्न कर ली गई हैं जिससे वर्तमान योजना की पूर्ति हो सके। कृषको के बीच समाजवादी प्रतिस्पर्धा [Socialist emulation] और अनुभव के आधार पर नये कृषि सगठन का विशाल निर्माण कार्य किया जा रहा है। इससे व्यक्ति तथा व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ पूर्ण रूप से अपना अस्तित्व खो देंगी। राज्य इन सब को अपने मे छिपाकर देश को समाजवाद से साम्यवाद की ओर बढ़ायेगा।

उद्योग

सातवी योजना ने औद्योगिक विकास की प्रणाली मे कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं किया। भारी उद्योगो का सर्वश्रेष्ठ स्थान पूर्ववत् बना रहा। सुरक्षा तथा उत्पादन के साधन इसकी प्रेरणा थे। भारी उद्योगो मे रसायन उद्योग ने विशेष स्थान पाया। नये वैज्ञानिक युग मे रसायनिक उद्योग ही वह साधन है जिसके द्वारा प्रकृति की कमियो को पूरा किया जा सकता है। कृत्रिम रबर और प्लास्टिक के विविध रूपो से आधुनिक सैनिक शक्ति तथा औद्योगिक उत्पादन दोनो को सहायता दी जाती है।

कुल औद्योगिक उत्पादन [1958 की तुलना में] 1965 तक लगभग 80% बढ़ेगा जिसमें उत्पादन के साधनों का उत्पादन 85-88% और उपभोग की सामग्री का उत्पादन 62-65% होगा। प्रति वर्ष उत्पादन की गति 8 6% रखी गई है। इस वृद्धि में प्रथम वर्ग के उद्योग 9 3% प्रतिवर्ष की गति से बढ़ेंगे और द्वितीय वर्ग के 7 3%। औसत वार्षिक औद्योगिक उत्पादन का मूल्य अगले सात सालों तक करीब 135 मिलियर्ड रूबल होगा जब कि पिछले सात सालों में यह 90 मिलियर्ड रूबल था।

लोहा तथा स्पात उद्योग औद्योगिक विकास के आधार माने गये हैं। 1958 की अपेक्षा 1965 में कच्चा लोहा उत्पादन में 64-77%, रोल्ड धातु [Rolled metal] में 53-62% वृद्धि होगी।

वार्षिक उत्पादन वृद्धि [1]

	1952-58	1959-65
कच्चा लोहा	25,00,000 टन	36-44,00,000 टन
स्पात	34,00,000 ,,	44-51,00,000 ,,
रोल्ड धातु	27,00,000 ,,	32-39,00,000 ,,

इनके अतिरिक्त रसायन उद्योग में तीनगुना उत्पादन वृद्धि होगी। कृत्रिम रेशेदार पदार्थ [Synthetic fibres] में 300% उन्नति से प्रकृति की कमियों को पूरा करने का प्रयत्न है। कृत्रिम गोंदयुक्त पदार्थ [resins] की 600% प्रगति से प्राकृतिक रबर की कमी दूर करने में मदद मिलेगी। योजना के समय में लगभग 140 नये रसायन कारखाने स्थापित किये जायेंगे तथा 230 पुराने कारखानों का पुनरुद्धार होगा। ईंधन के विभाग में गैस और तेल से कोयला की बचत करने का विचार है। गैस का उत्पादन तीनगुना और तेल का दुगना हो जायगा। जल-विद्युत [hydro-electricity] तथा कोयला-विद्युत [Thermal electricity] को 110 से 120 प्रतिशत बढ़ाकर देशव्यापी विद्युतकरण करने की आशा है। बिजली का नया साधन—अणु शक्ति का समुचित विकास करने की योजना बनी है। आधुनिक इञ्जीनियरिंग उद्योग के विस्तार से उत्पादन शक्ति का यान्त्रिक उत्थान होगा। अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक अंग में यन्त्रों के प्रयोग से महत्वाकांक्षी उत्पादन-लक्ष्य साकार बनाये जायेंगे।

भारी उद्योग तथा कृषि की प्रगति ने उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा सकना सम्भव बना दिया है। जीवन-स्तर को उठाने के लिए इस वर्ग के उत्पादन भी

[1] Target Figures for the Economic Development of USSR from 1958 to 1965, p 51

पीछे नहीं छोड दिए गए। स्तालिन की मृत्यु के बाद, इस क्षेत्र मे काफी उदारता दिखलाई गई है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि इस समय तक देश की उत्पादन शक्ति इतनी विकसित हो चुकी है कि बिना सैनिक आवश्यकताओं तथा भारी उद्योगों मे कटौती किए हुए, जनता के उपभोग के उत्पादन के लिए साधन अलग किये जा सकते हैं। इसीलिए 1959-65 के बीच हल्के उद्योगो मे 50% वृद्धि होगी जिसके लिए 156 नए बडे पैमाने के कारखाने स्थापित होंगे और 1959 के पहले आरम्भ किये गए 114 कारखानो को पूरा किया जायगा। रूसी जीवन की बुनियादी आवश्यकताएँ सूती-ऊनी कपडे तथा जूते का उत्पादन इसका आधार है। 1958 से 1965 तक सूती कपडे मे 138%, ऊनी कपडे मे 165%, सिल्क मे 176% और जूतो मे 145% की वृद्धि होगी। रूस के समान ठडे देश में इनसे अधिक आवश्यक वस्तु केवल आग और भोजन को माना जा सकता है।

औद्योगिक सगठन इस महान कार्य को सफलता से पूरा कर सके इसलिए विशिष्टीकरण [Specialisation] और आपसी सम्पर्क एव सन्तुलन [Coordination] के साथ यन्त्रीकरण [Mechanisation] की पूर्ण रूप से सहायता ली जायगी। इनके द्वारा उत्पादन प्रणाली मे फिजूलखर्ची [waste], लागत [cost of production] और खराब किस्म का उत्पादन [bad quality] मे कमी होगी तथा श्रम-उत्पादकता बढेगी। देश के प्रत्येक क्षेत्र अपने-अपने साधन, परिस्थिति, जलवायु व आवश्यकता को देखते हुए निर्माण कार्य मे सलग्न होंगे। इस प्रकार आर्थिक साधन व यातायात की बचत तथा लाभपूर्ण प्रयोग हो सकेगा। 1959-65 मे मजदूर कम समय काम करेगा फिर भी श्रम-उत्पादकता प्रति मजदूर लगभग 45 से 50 प्रतिशत बढ जायगी। साथ ही साथ उत्पादन की लागत मे 11.5% कमी होने का अनुमान है।

यातायात

विकास के इच्छुक देशो मे यातायात सबसे बडी आवश्यकता बन जाता है। इसकी उन्नति इतनी महँगी और धीमी होती है कि जटिल समस्या बनने मे कोई देर नहीं लगती। सोवियत रूस मे भी यही हाल रहा। सातवीं योजना ने इसके विकास के लिये जो चित्र बनाया है उसके अनुसार यह समस्या सदा के लिये समाप्त हो जायगी। योजना का विशेष ध्यान रेल और वायु यातायात पर होगा। माल ढोने की क्षमता मे रेल यातायात 39 से 43 प्रतिशत विकास करेगा। इस काम मे बिजली और डीजल शक्ति का अधिकतर प्रयोग होगा। 1958 मे 74% मालगाडियाँ कोयला-इञ्जन प्रयोग मे लाती थी किन्तु 1965 में 85 से 87% मालगाड़ियाँ बिजली और डीजल इञ्जन

से चलेगी। नवविकसित पूर्वी औद्योगिक प्रदेशों [कजाख़स्तान, यूराल, वोल्गा तथा साइबेरिया] में ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे के अतिरिक्त दक्षिणी साइबेरिया और मध्य साइबेरिया तक विशाल रेल लाइनें बनाई जायँगी। रेल यातायात के आधुनिकीकरण से माल ढोने की लागत में 22% कमी होगी।

समुद्र, नदी एवं मोटर यातायात की उन्नति के प्रयत्न जारी रहेंगे किन्तु वायु-यातायात सवारी का मुख्य साधन बन जायगा। यह आशा है कि वायुयानों की सवारी की संख्या में 500% की वृद्धि होगी। यातायात के क्षेत्र में एक नई दिशा पर अत्यधिक ज़ोर दिया गया है। तेल के वाहन के रूप में पाइप लाइन का जाल बिछाया जायगा जिससे तेल वाहन में किसी प्रकार के यातायात की जरूरत ही न पड़े। पाइप द्वारा तेल ले जाने में 450% की बढ़ती करने की योजना है।

जन-कल्याण

लेनिन का कहना था कि आर्थिक प्रेरणा व समृद्धि के दिये बिना करोड़ों व्यक्तियों को साम्यवाद में लाना सम्भव नहीं है। रूसी योजनाएँ इसी लक्ष्यप्राप्ति का साधन रही है। 7 वीं योजना 1959-65 के बीच राष्ट्रीय आय में 62 से 65% की वृद्धि करेगी। इससे राष्ट्र की उपभोग क्षमता [Consumption capacity] में 60 से 63% की उन्नति होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्तमान योजना जीवन स्तर को बढ़ाने के लिये उपभोग-विस्तार का विशेष प्रयत्न है। अर्थ-व्यवस्था के विविध अंगों के निरन्तर बढ़ने से मजदूर व कर्मचारियों [Factory and office workers] की संख्या में 120 लाख व्यक्तियों अथवा 22% की वृद्धि होगी। 1965 तक इनकी कुल संख्या 665 लाख हो जायगी। मूल्य में कमी तथा वेतन, पेन्शन व सहायता में प्रगति होने से मजदूर-कर्मचारियों की वास्तविक आय [real income) 40% बढ़ जायगी। ध्यान देने की बात यह है कि यह योजना कृषि क्षेत्र में भी जीवन-स्तर उठाने में लगी है। उद्योगों को छोड़कर, सामूहिक फार्मों के किसानों की वास्तविक आय भी 40% ही बढ़ेगी। यह अधिक कृषि उत्पादन तथा ग्रामीण श्रम-उत्पादकता में उत्थान से पूरा होगा।

वेतन प्रणाली में कई सुधार किये जायँगे। निम्न तथा मध्यमवर्ग के मजदूर कर्मचारियों के वेतन को ऊपर उठाकर उच्चवर्ग के साथ असमानता को कम कर दिया जायगा। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये दो चरण [Stages] बनाए गए है। प्रथम चरण [1959-62] में लागू होगा। इसके द्वारा न्यूनतम वेतन [minimum wages] 270-350 से बढ़ाकर 400-450 रूबल प्रति माह होगा। दूसरे चरण [1962-65] में दुबारा इसे उठाकर 500-600 रूबल प्रतिमाह तक पहुँचा दिया

जायगा। औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान [hygiene] तथा कारखानों में मशीनों से रक्षा में प्रगति, मजदूर-कर्मचारियों को विशेष सुविधाएँ, नर्सरी तथा किण्डरगार्टेन स्कूल, निःशुल्क शिक्षा, इलाज, सामाजिक बीमा, बड़े परिवार की माताओं को अनुदान [grants], पेन्शन, वृद्धों के लिए विश्राम-भवन, इत्यादि पर राजकीय व्यय 215 मिलियर्ड रूबल [1958] की जगह 360 मिलियर्ड रूबल [1965] में किया जायगा। बीसवीं कम्युनिस्ट पार्टी के अधिवेशन की आज्ञा के अनुसार कार्य काल में कमी करने की योजना कार्यान्वित की जा रही है। जिसका आदर्श पाँच दिन प्रति सप्ताह में 6 से 7 घंटे का कार्यकाल माना गया है। प्रति सप्ताह दो दिन का लगातार अवकाश रूसी मजदूर कर्मचारियों के लिए वरदान बन जायगा। अवकाश व मनोरंजन की उनके जीवन में अत्यधिक कमी थी। 1958 से स्पात और कोयला उद्योग में 7 घंटे प्रति दिन कार्यकाल लागू कर दिया गया। पहिली अक्टूबर 1959 से यह सुविधा अन्य सभी कारखानों तथा आफिसों में कार्यान्वित होगी। खानों में काम करने वालों का कार्य-काल 6 घंटा प्रतिदिन कर दिया जायगा।[1]

सोवियत संघ के इस विकास से विश्व औद्योगिक उत्पादन में समाजवादी उत्पादन का भाग बहुत बढ़ जायगा। 1938 में इस वर्ग के देशों की जनसंख्या तथा उत्पादन संसार का लगभग एक-तिहाई था। सातवीं योजना इसे बढ़ाकर 1965 में आधा तक पहुँचा देगी। समाजवाद और पूँजीवाद की दौड़ में रूस की गति बराबर तीव्र होती जा रही है। रूस के अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क का विस्तार फैल रहा है। 1946 में रूसी व्यापार 46 देशों से था। इस समय 70 देशों से व्यापारिक सम्बन्ध है। सातवीं योजना इसे और भी प्रोत्साहन देगी। समाजवादी देशों के साथ व्यापार में 50% वृद्धि की जायगी। अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों के साथ भी सोवियत संघ का सम्बन्ध निरन्तर उन्नति पर है। 1953-57 के बीच इस व्यापार में पाँच गुना से भी अधिक वृद्धि हुई है।

सातवीं योजना सोवियत रूस के प्रथम लक्ष्य की ओर अत्यन्त सुदृढ़ कदम है: संयुक्त राज्य अमरीका से आगे निकलना इस योजना की सफल पूर्ति से ही सम्भव हो पायेगा। इन सात वर्षों तक देश यदि राजनैतिक भूचाल से अपनी रक्षा कर सके तो लेनिन का स्वप्न सम्भवतः साकार हो जायगा।

---

[1] The "Leader" Allahabad, dated September 21. 1959. p 2

अध्याय १२

अर्द्ध-विकसित देशों के लिये रूसी आर्थिक विकास का संदेश

(Message of Russian Economic Development for Under-Developed Countries]

अर्द्ध विकसित देशों के लिये रूसी आर्थिक विकास का संदेश

प्रोफेसर मारिस डॉब ने ठीक ही कहा—इसमें संदेह है कि पहले कभी भी, संसार के इतने विशाल भू-खंड पर, इस प्रकार के गहन परिवर्तन, इतने अल्प समय में हुए हों जितना कि सोवियत रूस में हुआ। इस कथन का पूर्ण महत्व इस समय सामने आता है जब 1913-1916 के रूस पर दृष्टिपात किया जाय। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उस समय का रूस और आज के अर्द्ध विकसित देश लगभग एक ही स्तर पर है : छोटे टुकड़ों वाली अनार्थिक खेती, तेज से बढ़ती जन-संख्या, अशिक्षा, दरिद्रता व उदासीनता, उपभोग के उत्पादन पर आधारित सामान्य औद्योगिक विकास, विदेशियों पर आश्रित अर्थ-व्यवस्था; सच्चरित्रता एवं कर्त्तव्य-परायणता से गिरी हुई जनता तथा शासन; राज्य और जनता के बीच बढ़ती हुई दूरी विलासिता और भुखमरी का दर्दनाक संयोग की समानता आसानी से देखी जा सकती है। यही कारण है कि विकास की खोज में उन्मत्त यह देश आज रूसी आर्थिक विकास का संदेश इतना आकर्षक तथा अनुकरणीय पाते है।

निःसंदेह, रूस की राजनैतिक पृष्ठ-भूमि भूली नहीं जा सकती। चमत्कारी उन्नति पर एक कालिमा है जिसे सदा दृष्टि में रखना उचित होगा। प्रकृति ने मानव को कुछ आधारभूत अधिकार दिये है। व्यक्तिगत विचार तथा निर्णय की स्वतन्त्रता इनमें सर्वप्रधान है। इसी प्रकार मनुष्य व्यक्तिगत-भावनाविहीन यन्त्र नहीं है जिसे धन या धन से उत्पन्न सुविधाओं द्वारा एक निर्देशित मार्ग पर सदा चलाते रहा जाय। सोवियत रूस की आश्चर्यजनक प्रगति का मूल्य जनता ने अपने प्राकृतिक अधिकार तथा व्यक्तित्व को खोकर चुकाया। इसलिये रूस का अन्ध-अनुसरण करने के पहले आत्मा को पेट के लिये बेच देना होगा।

इसका यह अर्थ नहीं कि सोवियत उदाहरण को उचित स्थान न दिया जाय। रूस एक ऐसा यथार्थ है जिसने विश्व-इतिहास मे नया अध्याय जोड़ा, जिसने विकास का नया मार्ग दिखलाया। यह बात दूसरी है कि कोई इस नये मार्ग से सहमत न हो। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि लक्ष्य-प्राप्ति का यह भी एक साधन है। इसके द्वारा कई असम्भव सम्भव बन गया। लोगो के मन मे यह बात घर कर गई थी कि पूँजीवाद मे पाई जाने वाली बुराइयाँ दूर नही की जा सकती : चंद व्यक्तियो के व्यक्तिगत लाभ के लिये शोषण; कुछ लोगो को अमीर बनाने के लिये औरो को गरीब बने रहना होगा; आय की असमानता आवश्यक है कि बचत, पूँजी निर्माण तथा उत्पादन हो सके जिससे श्रम जनता को रोटी मिलती रहे, औद्योगिक विकास की दौड मे जो देश पिछड गये है, वह सदा पिछड़े ही रहेगे, जब तक कि अपनी स्वतत्रता को बुनियादी मशीनो के लिये बेचना उनको स्वीकार न हो।

रूस ने सिद्ध कर दिया कि [1] कोई भी देश विकास मे इसलिये नही पिछडा कि वह गरीब था या वहाँ बचत और पूँजी निर्माण कम होता था : देश के पिछडने का कारण आर्थिक संगठन [economic organisation] की कमजोरी और लापरवाही होती है। [2] कृषि प्रधान देशो मे औद्योगीकरण से खेती का उत्पादन श्रम के अभाव के कारण कम नही होता क्योकि इन देशो के ग्रामीण क्षेत्र पर आवश्यकता से बहुत अधिक आबादी रहती है। [3] विदेशी पूँजी की अत्यधिक सहायता लिये बिना भी विकास हो सकता है। [4] राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय निर्देशन तथा संचालन, कम से कम समय मे आर्थिक प्रगति सम्भव बना देगा। [5] ब्याज तथा लाभ [interest and profit] बिना भी विशाल पूँजी तथा विनियोग किया जा सकता है। [6] मूल्य निर्धारण पर लागत [cost], माँग तथा पूर्ति का प्रभाव हटाया जा सकता है। [7] औद्योगिक मंदी [trade depression] आवश्यक नही है।

अतः यह देखना उचित होगा कि रूसी आयोजन मे ऐसी क्या विशेषताएँ है जिन्होने इतना कुछ सम्भव बनाया। इनका कहाँ तक लाभ उठाया जा सकता है, यह तो विभिन्न देशो के राजनैतिक संगठन तथा सैद्धान्तिक विश्वास पर निर्भर करेगा। कुछ बातें ऐसी भी है जिनका सरलता से उपयोग किया जा सकता है।

स्वतत्रता संग्राम के सेनानी अधिकतर अच्छे शान्तिकालीन राज्य-कर्मचारी तथा अनुशासनपूर्ण नागरिक नही बन पाते। स्वतत्रता संग्राम का त्याग, कष्ट, उत्तेजना, भय और जोखिम लक्ष्य प्राप्ति के बाद दो मनोवृत्तियाँ पैदा कर सकता है। **प्रथम**, इन व्यक्तियो को शान्ति-चैन का वातावरण एकदम नीरस तथा निष्प्राण लगता है। परिस्थितियो से प्रेरित तत्कालिक जोश और भावावेश मे बह निकलने की पुरानी आदत के कारण सोच-समझकर कदम उठाना इनके लिये बहुत कठिन और अरुचिकर हो

जाता है। इस मनोवैज्ञानिक असन्तोष से उदासीनता [indifference] या विरोध का जन्म होता है। नवीन आर्थिक नीति के समय यह असन्तोष खुले विरोध में बदल रहा था। स्तालिन ने इसे परखा और जोश को समृद्धिशाली किसानों के विरुद्ध, कृषि का सामुदायीकरण [collectivisation] तथा आर्थिक योजनाओं में क्रियात्मक रूप से लगा लिया। द्वितीय, स्वतन्त्रता संग्राम में किये गये त्याग और सेवाओं से दृष्टिकोण विकृत भी हो जाता है। अहकार और निजी महत्व की भावना इनको उद्धारकर्ता से शोषक में बदल देती है। ठीक यही क्रम क्रान्ति के बाद—लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। कठोर राष्ट्रीयकरण से इस पर काबू पाने का प्रयत्न हुआ। विचारों में विकार के कारण ऐसे व्यक्तियों के लिये स्वतन्त्रता निजी कष्ट का पुरस्कार बन जाती है। समाज में अनुचित लाभ उठाना अपना स्वाभाविक अधिकार प्रतीत होने लगता है।

आरम्भिक पूँजीवाद [early capitalism] के स्तर से देश के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने के लिए रूस ने एक नया उपाय खोजा। पूँजीवादी विकास क्रम की गति तेज करने में राजकीय पूँजीवाद [state capitalism] का सहारा लिया जा सकता है। इस द्वारा देश की शीघ्रतम एवं सतुलित प्रगति सम्भव हो सकेगी।

प्रश्न यह उठता है कि राजकीय पूँजीवाद में दी गई व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ क्या स्थाई रूप से बनी रह सकती हैं? रूस के ऐतिहासिक अनुभव में एक उत्तर पाया जाता है। राजकीय पूँजीवाद के विकास में एक समय वह स्थिति आ जायगी जब राजकीय सञ्चालन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं में विरोध उत्पन्न होगा। राज्य शक्ति के आगे व्यक्तिगत अधिकार दबते जायेंगे। इन अधिकारों का पुराना रूप नष्ट हो जायगा। राजकीय संचालन की व्यापकता फैलेगी और संस्थाओं के साथ व्यक्ति भी पूरी तरह इसी में विलीन हो जायेंगे। निष्कर्ष यह निकला कि राजकीय पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था स्वयं एक ध्येय नहीं बन सकती। समाज के क्रमिक विकास में यह केवल एक कड़ी है। अन्त में समाजवाद का आकार अपनाना होगा।

आयोजन के क्षेत्र में रूस को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। व्यक्तिगत पूँजी और निर्णय के अतिरिक्त भी आर्थिक विकास हो सकता है. इसका पहला उदाहरण सोवियत संघ है। केन्द्रीय सचालन, स्वामित्व तथा निर्देशन से अद्भुत प्रगति अत्यन्त कम समय में सम्भव बन गई। इस सम्बन्ध में रूसी कार्य प्रणाली ध्यान देने योग्य है।

सोवियत योजनाओं की सफलता का रहस्य उसके सामाजिक नींव में छिपा है। रूसी योजनाएँ राज्य की इच्छा या आज्ञा के स्थान पर समाज का ध्येय और जनता का प्रथम कर्त्तव्य बनकर कार्यान्वित होती है। प्रत्येक नागरिक को विश्वास है कि योजना को बनाने में वह साझीदार है तथा योजना उसकी अपनी चीज

है। इससे ऐसी कर्त्तव्यनिष्ठा और परिश्रम का वातावरण बनता है कि कोई भी योजना सफल हुए बिना नहीं रह सकती।

योजना को समाज का उत्तरदायित्व बनाने मे दो साधन काम मे लाया जाता है : प्रचार व बलप्रयोग। अत्यत चतुर तथा मनोवैज्ञानिक प्रचार का देशव्यापी जाल जनता की विचारधारा और विवेचना शक्ति को किसी भी ओर मोड देने मे समर्थ है। जीवन का कोई भी समय या पहलू ऐसा नही बचता जिसमे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रचार न चल रहा हो। सोवियत सघ के आरभिक काल मे तो यह कहना भी कठिन था कि शिक्षा द्वारा प्रचार किया जाता है अथवा प्रचार को ही शिक्षा मान लिया गया है। इतने पर भी जनता का जो भाग प्रभावित होने से इन्कार करता है उसके लिये बल-प्रयोग किया जाता है। गुप्तचर और पुलीस इतने प्रबल रूप से क्रियाशील रहते है कि यह सोचना भूल माना जायगा कि दिवालो को कान नही होते। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक सगठन का आधार "प्रचार-शक्ति-सदेह" कहा जाय तो शायद कोई भूल न होगी।

सफल आयोजन मे सिद्धान्त तथा ऑकडो से परिपूर्ण योजना बनाने से भी अधिक महत्वपूर्ण उसे कार्यान्वित करने के लिये सगठन है। इस संगठन के रूपरेखा की तैयारी और विस्तार अत्यत जटिल कार्य होता है। 1922 मे स्थापित रूसी योजना आयोग लगभग छः सालो तक इस काम मे लगा रहा फिर भी हर योजना के समय शासन-सगठन को सुधारना पडता था। उचित सगठन का अभाव अच्छी से अच्छी योजना को निष्क्रिय बना देगा। विकास मे नये उन्नत देश योजना के प्रारूप बनाने मे इतना उलझ जाते है कि सगठन को ध्यान नही मिल पाता। रूस की प्रथम योजना का विशाल अपव्यय और अनावश्यक त्याग का कारण सगठन की कमजोरी भी थी।

आर्थिक योजना के दो विभाग होते है। वित्तीय योजना [financial plan] तथा भौतिक या उत्पादन योजना [physical or production plan]। एक पिछडा हुआ गरीब देश जब आयोजन आरभ करता है तो पूंजी की कमी उसके मार्ग मे सबसे बड़ी रुकावट होती है। आर्थिक साधन उपलब्ध करने का प्रयत्न इतना कठिन और महत्वपूर्ण होता है कि योजनाकर्त्ता, राज्य तथा जनता इसी पहलू पर विचार करने मे लीन हो जाते है। मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह पडता है कि किसी भी प्रकार योजना पर खर्च की जाने वाली धन-राशि इकट्ठा करना और खर्च कर देना ही आयोजन बन जाता है। इस खर्च का प्रभाव क्या पडा यह तो बाद की बात बन जाती है। लेनिन की गायलरो योजना तथा स्तालिन की प्रथम पंचवर्षीय योजना मे यह कमी बहुत स्पष्ट पाई जाती है। द्वितीय योजना से ही आर्थिक पक्ष पर इतना शोर न मचाकर, उत्पादन तथा लक्ष्य प्राप्ति पर जनता का ध्यान केन्द्रित करने का प्रयत्न किया गया। धन का व्यय उस समय तक निरर्थक है जब तक कि उससे आशातीत, प्रत्यक्ष प्रभाव न उत्पन्न हो।

विकास के मार्ग पर आने वाले नये राही को एक विशेष प्रलोभन की ओर से भी आगाह करना आवश्यक है। यह है विशालता [gigantism]। एक तरह से इस प्रवृत्ति को संयुक्त राज्य अमरीका की देन कही जा सकती है। उनके पास जो कुछ भी है, या हो सकता है, वह जरूर ही "संसार में सबसे बड़ा, सुन्दर, अच्छा या महँगा" होना चाहिये। उन्नति के आरंभिक काल में रूस ने इस लालच में पड़कर अपार धन तथा श्रम का अपव्यय किया। बाद में इस आदत पर रुकावट तो लग गई किन्तु इसका उन्मूलन न हो सका। अनावश्यक आकार-वृद्धि का ध्येय उपयोगिता [utility] नहीं होती। इसका उद्देश्य प्रतिष्ठा [prestige] होती है। कोई भी अर्द्ध-विकसित देश केवल प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिये आयोजन करने की विलासिता नहीं कर सकता। अगर करता है तो उपयोगिता आयोजन [utilitarian planning] के अधिकतर लाभ खो देगा।

श्रम के संबंध में भी कुछ विचारणीय धाराएँ सामने आती हैं। प्रथम, श्रमिक अशिक्षित तथा संकीर्ण विचारों वाला व्यक्ति होता है। यह दशा अर्द्ध विकसित देशों में और भी व्यापकता से पाई जाती है। इन्हें आर्थिक प्रेरकों [economic incentive] द्वारा सबसे आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। द्वितीय, केवल वेतन बढ़ा देने से मजदूर अधिक काम नहीं करता। वेतन की वृद्धि उसके अधिक उत्पादन पर निर्भर करनी चाहिये। उत्पादकता और वेतन के घनिष्ट संबंध से संतुष्ट मजदूर और सफल योजना का निर्माण होता है। तृतीय, जब तक शिक्षा तथा प्रचार द्वारा मजदूरों में नागरिक कर्त्तव्य और राष्ट्र ऋण की भावना नहीं उत्पन्न की जाती, आर्थिक प्रेरक भी उनसे पूरा काम लेने में सफल न होंगे। इसलिये परिवर्तनकाल में, बलपूर्वक अनुशासन व्यवस्था की स्थापना करना ही होगा। नहीं तो आये दिन मतभेद, असंभव माँग, लापरवाही तथा सुस्ती उत्पादन में बाधक बन जायगी। चतुर्थ, नई उत्पादन क्षमता [production capacity] स्थापित करके उत्पादन बढ़ाने की चेष्टा करना हर अर्द्ध विकसित देश के लिये महँगी तथा कठिन होती है। इससे कहीं अधिक प्रभावशाली उपाय श्रम-उत्पादकता [labour productivity] में वृद्धि करके उत्पादन को ऊँचा उठाना है। मशीन तथा श्रम का अधिकतम प्रयोग होने से लागत और पूँजी की आवश्यकता दोनों में कमी होती है। रूस की प्रथम दो योजनाओं में इस ओर ध्यान जा चुका था परन्तु तीसरी योजना में ही इसका विशेष लाभ उठाया गया। आयोजित उत्पादन वृद्धि का 70% श्रम-उत्पादकता बढ़ाकर प्राप्त किया गया। यह हर देश के लिए अनुकरणीय है।

परिशिष्ट १

सोवियत रूस का यातायात संगठन

[Transport Organisation of Soviet Russia]

रूस में सफल यातायात विशेष स्थान रखता है। विशाल देश होने से विभिन्न प्रदेशों में सम्पर्क तथा राष्ट्रीय श्रम विभाजन उन्नत यातायात से ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त भौगोलिक और राजनैतिक कारणों से जनसख्या एव प्राकृतिक साधन सारे देश में बिखरे हैं। दक्षिण में अनाज उत्पन्न होता है लेकिन लकड़ी उत्तर में ही मिलती है। दोनेत्स घाटी और बाकू में अधिकतर कोयला और पेट्रोल केन्द्रित है। मास्को के आसपास के बड़े उद्योग मुख्य उपभोक्ता हैं। यह दूरी लगभग 2,000 किलोमीटर है। इसी प्रकार यूराल पर्वत का लोहा प्रयोग करने के लिये 2000 कीलोमीटर से भी अधिक दूर कजनेत्स घाटी से कोयला लाना पड़ता है। विस्तृत प्रदेश पर हल्की आबादी फैली है। यातायात को इन तक पहुँचने के लिये ऊँचे विकास की जरूरत पड़ती है।

रेल-यातायात

विशाल समतल मैदान यातायात की उन्नति को प्रभावित करते हैं। सड़क से अधिक लाभपूर्ण रेल-यातायात सिद्ध हुआ। समुद्र-तट बहुत कम होने से तटीय-जल-यातायात उन्नत न हो सका। वायु यातायात एकदम आधुनिक साधन है। भविष्य में इसी को यात्री तथा हल्के सामान ले जाने का साधन बनाना होगा।

दुनिया के क्षेत्रफल के 1/6 भाग पर फैले इस देश में आधुनिक यातायात का सूत्रपात 1809 में एलेक्जेन्डर प्रथम ने किया। फ्रान्सीसी इन्जीनियरों की सहायता से पहली रेल लाइन 1836 में बनी। प्रगति अत्यन्त कम थी। इस ओर क्रीमिया के युद्ध के कारण ध्यान आकर्षित हुआ। एक विशेष संस्था बनाई गई [General Company of Russian Railways] जिसको रेल यातायात की उन्नति का काम सौंपा गया। इस संस्था के प्रयत्नों से काफी अच्छी प्रगति हुई।

रेल यातायात [1]

वर्ष	यूरोपीय रूस [किलोमीटर]
1840	26
1850	601
1860	1589
1870	11,243
1880	23,857
1890	30,957
1900	48.107
1910	[illegible]9,559
1914	62,200

सोवियत संघ की स्थापना के बाद यातायात को राष्ट्रीय योजनाओं में उचित स्थान न मिल सका। क्रान्ति के बाद जो यातायात संगठन नई सरकार को मिला उसे प्रथम विश्वयुद्ध के तीन वर्षों ने काफी कमजोर बना दिया था। [गृह-युद्ध 1917-21] के समय लगभग 4,000 रेलवे पुल, 5,000 रेलवे बिल्डिङ्ग और 1,00 जलाशय [water reservoir] नष्ट कर दिये गये। इसके साथ-साथ सैनिक कार्य के लिये रेलों पर अत्यधिक दबाव पड़ा। नवीन आर्थिक नीति में इस दशा को सुधारने की चेष्टा की गई। [2]

	1913	192[illegible]-26	1929	1935	1937 रूस	1937 संयुक्त राज्य अमरीका
रेल की लम्बाई [हजार किलोमीटर]	58 [illegible]	74 [illegible]	77	83 8	85	402
वस्तु वाहन [मिलियन टन]	132 4	83 5	188	388·5	517	1928
यात्री वाहन [मिलियन]	84 8	154 4	365	919	1143	497

1 V Obraztsov Soviet Transport, p 3

2 Ibid, p 10

इन आँकड़ो से पता चलता है कि नवीन आर्थिक नीति ने रेल निर्माण में बहुत उन्नति किया किन्तु उसके बाद निर्माण कार्य मे शिथिलता आ गई। नई लाइन बनाने की जगह पुराने निर्माण को अधिक से अधिक प्रयोग मे लाकर आवश्यकताएँ पूर्ण की गई।

रूस का रेल निर्माण राज्य के सरक्षण मे व्यक्तिगत उद्यम [private enterprise] द्वारा आरम्भ किया गया लेकिन शीघ्र ही राजकीय हस्तक्षेप निर्देशन से प्रबन्ध तथा सचालन तक पहुँच गया। राजकीय रेल सचालन तक प्रबन्ध 1889 मे 23·5% से बढ़कर 1913 मे 67·5% हो गया।[1] रूसी रेलो का निर्माण व्यापार तथा उत्पादन के लिए नही किया गया। सैनिक सुविधा मुख्य उद्देश्य था। इसका असर यह हुआ कि देश के आर्थिक विकास मे इनसे पूरी सहायता न मिल सकी।

द्वितीय विश्व-युद्ध मे हिटलर सोचता था कि ब्रिटेन की तटस्थता [neutrality] और रूसी रेलो की कमजोरी के कारण सोवियत सघ की विजय बडी आसान होगी[2] लेकिन कमजोर यातायात व्यवस्था को इतने अच्छे सगठन से प्रयोग मे लाया गया कि ससार चमत्कृत हो उठा। हिटलर द्वारा विनाश के बाद भी लगभग सभी भारी उद्योगो को जर्मन सेना के सामने से हटाकर यूराल पहाड़ के पीछे पहुँचा देना, रेलो की ऐतिहासिक सफलता थी। युद्ध ने पुरानी मशीनो को इतना बेकार कर दिया कि आधुनिकतम रीति से पुनर्सगठन सम्भव बना। चतुर्थ योजना ने 40 मिलियर्ड रूबल से भी अधिक खर्च करके इस क्षेत्र की कमी दूर करने में सहायता दिया। 7,000 कीलोमीटर नई मुख्य लाइन, और 12,500 किलोमीटर शाखा लाइन बनाई गई। इस योजना का ध्येय पुराने लाइनो की मरम्मत और युद्ध से हुई हानि को पूरा करना था।

इतना कहना होगा कि रूसी योजनाओं मे यातायात को उचित महत्व नही दिया गया। विशाल योजनाओ मे बृहद् पूँजी विनियोग का बहुत कम अश यातायात को मिला। 1918-28 मे 23·8%, तृतीय योजना मे 20·4%, चतुर्थ योजना मे 14 2%, पंचम योजना मे 10·1%, सप्तम मे 5·5%। इसमे कोई सन्देह नही कि विनियोग की मात्रा बराबर बढ़ती रही परन्तु गिरते हुए प्रतिशत ने इसको बराबर कर दिया। पिछले 40 सालो मे रेलवे लाइन मे कुल 76% वृद्धि हुई। यही कारण है कि रेलो की चल सम्पत्ति में तीव्रता से ह्रास [depreciation] होता है। प्रत्येक योजना मे इस कमी को पूरा करने मे ही इतनी पूँजी लग जाती है कि प्रगति नही हो पाती। सातवी योजना मे भी अधिकतर यातायात मे होने वाला पूँजी विनियोग इसी दिशा में लगेगा।

---

1. M. S Miller Economic Development of Russia, 1905-14 pp 183-184

2 E Henri Hitler over Russia, p 136.

वर्तमान योजना 110-115 मिलियर्ड रूबल यातायात मे, विशेषतः रेल पर, लगायेगी। पूर्वी रूस में आर्थिक विकास होने से रेल यातायात का महत्व और भी बढ गया है। ट्रान्ससाइबेरियन के अतिरिक्त दूसरी विशाल रेल लाइन [दक्षिणी-साइबेरियन रेलवे] बनाने का निश्चय किया गया है।

नदी यातायात

रूस मे संगठित समाज तथा राज्य का उदय नदियों और झीलों के किनारे ही हुआ। मास्कोवी [Muscovy] राज्य वोल्गा और ओका नदी के बीच स्थापित हुआ था। आगे चलकर यह रूसी सभ्यता का केन्द्र बना। महान् पीटर ने संगठित रूप से जल यातायात को बढ़ाने में सहयोग दिया। नहरें बनाने का सिलसिला भी उसी की प्रेरणा का प्रभाव था। 1815 में पहला भाप का इञ्जन नदी यातायात में प्रयोग किया गया। डीजल इञ्जन के आविष्कार से स्टीमर का प्रयोग पूरी तरह होना शुरू हुआ। 1917 तक वोल्गा नदी पर 500 से 600 तक बडी-बडी नावे हर समय चला करती थी। गृह-युद्ध मे एडमिरल कोलचक ने वोल्गा के जहाजी बेडे को जला दिया। 1919 मे जहाजों तथा नावो की संख्या 1913 की लगभग $\frac{1}{3}$ बची और वस्तु वाहन [freight carriage] कुल 16% रह गया। नवीन आर्थिक नीति के समय मे अधिकतर कमी पूरी कर ली गई। इतना ही नहीं सामान और यात्री ले जाने मे नदी यातायात 1913 के आगे निकल गया।

रेल के बाद रूस मे नदी यातायात को महत्व दिया गया है। प्रकृति ने नदियों का ऐसा जाल रूस में बिछाया कि नदी यातायात की उन्नति स्वाभाविक बन गई। साल-भर बहने वाली, प्रचुर जलयुक्त नदियों की लम्बाई 4,00,000 किलोमीटर से अधिक है। इसका 1,32,000 किलोमीटर यातायात के लिए प्रयोग होता है। नदी यातायात की दूरी लगभग रेल यातायात के बराबर है। नई योजनाओं मे साइबेरिया की अन्य नदियों को नहरों से जोड़कर यातायात के योग्य बनाने का प्रयत्न हो रहा है। नहरों की श्रृङ्खला में सबसे नई कडी वोल्गा-डॉन नहर है जो 1952 मे खुली। बीसवीं शताब्दी मे निर्माण-कला के इस अनूठे नमूने ने कैस्पियन सागर और काले सागर को मिला दिया। उत्तर के बर्फीले प्रदेशों ने नदी यातायात का पूरा विकास नहीं होने दिया। वोल्गा नदी यातायात की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। रूस की सबसे बड़ी नदी होने के साथ-साथ यह अत्यन्त घनी आबादी के प्रदेशों से बहती है। उत्तर से लकडी और दक्षिण से पेट्रोल यातायात की मुख्य वस्तुएँ हैं। अनाज, मछली और नमक के व्यापार मे इस जलमार्ग का विशेष स्थान है। पाँचवी और छठवी योजना में नदियों द्वारा वस्तु वाहन [freight] की मात्रा लगभग 50% बढ़ी। नदियों की गहराई, जहाजों के ठहरने का

स्थान, बन्दरगाहो की उन्नति, जहाज बनाने और मरम्मत करने के कारखानो के विकास मे देश प्रयत्नशील है। सातवी योजना मे आशा की जाती है कि रेलो द्वारा वस्तु-वाहन 60% बढेगा। इसी योजना मे वोल्गा नदी को बाल्टिक सागर से मिला देने का काम भी पूरा हो जायगा। इस प्रकार उत्तर से दक्षिण तक का जलमार्ग आर्थिक विकास और सैनिक सुविधा मे बहुत मदद देगा।

समुद्र यातायात

आर्कटिक और प्रशान्त महासागर के बीच बसे रूस के पास 20,000 किलोमीटर से भी अधिक लम्बा समुद्रतट है। बहुत विस्तृत क्षेत्रफल और आबादी के तटो से दूर होने के कारण इसका उपयोग नही होता। जलवायु ने भी कठिनाइयो को बहुत बढा दिया। आर्कटिक महासागर लगभग पूरा जम जाता है। गर्म जलधारा [गल्फ स्ट्रीम] के कारण थोडा-सा भाग यातायात योग्य रहता है। समुद्री यातायात की दृष्टि से काला सागर सबसे महत्वपूर्ण है। 50% से अधिक निर्यात व्यापार [पेट्रोल, अनाज, कोयला] बतूमी, सुखूमी, ताउप्से, रोस्तोव, सेवास्तोपोल, ओदेसा इत्यादि कालासागर के बन्दरगाहो से होता है। बाल्टिक सागर और प्रशान्त महासागर से निर्यात की मुख्य वस्तु लकडी है। केलीनीनग्राद, रीगा, तैलीन, और लेनिनग्राद—बाल्टिक सागर; मरमस्क—आर्कटिक महासागर, आखन्जीलस्क—श्वेत सागर; ब्लाडीवोस्टक, ओखा—प्रशान्त महासागर, तथा बाकू, अस्ट्राखाँ—कैस्पियन सागर के मुख्य बन्दरगाह है।

प्रथम युद्ध तथा गृह युद्ध के बाद रूस के पास पुराने जहाजी बेडे का कुल 30% ही बचा था। इसमे भी मरम्मत की कमी होने से काम योग्य जहाज और बड़ी नावे बहुत कम थी। 1922 तक कुछ प्रगति उनको सुधारने मे हुई। प्रथम योजना मे जहाजरानी को 1913 से 20% तक बढ़ाने की योजना थी। बन्दरगाहो का पुनर्निर्माण, जहाजी मरम्मत के कारखाने और मालगोदाम पर 200 मिलियन रूबल खर्च हुआ। जहाज निर्माण पर भी 350 मिलियन रूबल खर्च किया गया। इन विशेष प्रयत्नो द्वारा 1933 तक 23·4% वृद्धि हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ तक 1913 से छः गुना विकास हो चुका था। चतुर्थ योजना मे बन्दरगाहो के आधुनिककरण के साथ तीन बडे जहाज-मरम्मत के कारखाने तैयार हुए। काले सागर और बाल्टिक सागर पर दो जहाज बनाने के कारखाने स्थापित हुए। इन प्रयत्नों में सयुक्त राज्य अमरीका द्वारा उधार दिये गये लगभग 50 बडे जहाज और सैकडो छोटे स्टीमर को भी शामिल कर लिया गया। सातवी योजना [1959-1965] मे जहाजो का कुल वजन लगभग दूना कर दिया जायगा, बन्दरगाहो की कार्यक्षमता मे 60-70 प्रतिशत वृद्धि होगी, और सामान उतारने-चढ़ाने का 75% काम यंत्रो द्वारा किया जायगा।

वायु-यातायात

1923 में सोवियत सघ ने एक नागरिक वायु-परिवहन समिति [Civil Aviation Committee] की स्थापना किया। इसके निर्देशन मे वायु-परिवहन का सगठन हुआ। प्रथम योजना से ही इस क्षेत्र मे प्रगति हो सकी। 1933 तक हवाई जहाज का निर्माण रूस मे आरम्भ हो गया। द्वितीय महायुद्ध तक रूसी वायुयान केवल परिवहन मे ही नहीं, कृषि मे भी सहायता दे रहे थे। सैनिक क्षेत्र को छोड़ देने पर, केवल नागरिक क्षेत्र की प्रगति भी विकास का विस्तार बतलाती है। 1923 में कुल 420 किलोमीटर [262 मील] तक ही हवाई-मार्ग था और 221 यात्री हवाई जहाज पर चढे। 1940 मे 1,43,000 किलोमीटर [81,375 मील] के हवाई मार्ग का 3,90,000 यात्री तथा 60,000 टन वस्तु-वाहन द्वारा प्रयोग हुआ। मलेरिया तथा कृषि के कीडो के विरुद्ध वायुयान का प्रयोग विस्तृत रूप से होता है।

द्वितीय महायुद्ध मे वायु यातायात ने सराहनीय कार्य किया किन्तु इसे गहरी क्षति उठानी पडी। इसी समय से वायु यातायात को रूस मे सर्वोच्च स्थान देने का निश्चय हुआ। हल्का सामान और यात्री परिवहन तो इसी के द्वारा होगा। रेल भारी सामान ले जाने का साधन बन जायगी। इस दिशा मे प्रगति अत्यन्त सन्तोषजनक है। युद्ध के बाद के पहले साल मे ही लगभग 200 वायु-मार्ग खोले गये। इनके द्वारा सभी बडे शहर आपस मे सम्बन्धित हो गये। 1949 से मॉस्को-व्लाडीवोस्टक के बीच प्रतिदिन हवाई जहाज चलने लगा। 1950 मे नागरिक परिवहन 1940 का आठ गुना हो गया। सातवी योजना मे जेट हवाई जहाजो का प्रचुर प्रयोग करके यात्री परिवहन मे 500% वृद्धि की जायगी। आधुनिक भारी यानो के योग्य 90 एयरोड्रोम [हवाई स्टेशन] बनाकर वायु यातायात मे सयुक्त राज्य अमरीका तक पहुँचने की चेष्टा की जायगी।

मोटर यातायात तथा सड़कें

मोटर यातायात बहुत बाद मे बढ़ना आरम्भ हुआ। सोवियत शासन के पहले इस ओर विशेष ध्यान नही दिया गया था। 1914 मे रूस के पास कुल 9,000 गाडियाँ थी जिनमें अधिकतर ट्रके थी। यह संख्या 1950 मे 10,00,000 कार, ट्रक तथा बसो तक पहुँच गई। द्वितीय युद्ध मे संयुक्त राज्य ने रूस को 3,00,000 विविध प्रकार की ट्रको से सहायता किया। युद्ध के बाद की योजना मे आधुनिक प्रकार की मोटरे और मरम्मत केन्द्र स्थापित किये गये। सिद्धान्त रूप से यह स्थिर किया गया कि अन्तर-जिला [Inter-district] यातायात मे भारी सामान मोटर से भेजा जाय। कम दूरी के लिये रेल का प्रयोग बराबर घटाया जायगा। इस निर्णय से मोटर यातायात मे बहुत सहायता

मिली। सातवीं योजना में मोटर द्वारा माल भेजने में 90% वृद्धि की जायगी और यात्रियों की संख्या को तीन गुना बढ़ाया जायगा। छोटे-छोटे गैरेज और डिपो को मिला कर आर्थिक समितियों [Economic Councils] के निर्देशन में पुनर्संगठित किया जायगा। बसों की संख्या में 340% उन्नति होगी।

सड़कों का विकास तथा निर्माण पर भी काफी ध्यान दिया जा रहा है। आधुनिक पक्की सड़कों का उन्नति-काल द्वितीय युद्ध के बाद से ही माना जाता है। सारे देश में सड़क निर्माण और मरम्मत स्टेशन [Road Repair and Construction Stations] का जाल बिछाया गया। इस क्षेत्र में कितना काम करना है यह इस बात से पता चलता है कि 1938 में कुल 87'5 हजार किलोमीटर पक्की सड़कें सारे देश में थीं। 1950 तक मोटर योग्य सड़कों की लम्बाई में लगभग 12 हजार किलोमीटर और जोड़ा जा सका। सातवीं योजना में राष्ट्रीय सड़कें कंक्रीट की बनेंगी; क्षेत्रीय महत्व की सड़कें पक्की की जायेंगी, और नव-विकसित प्रदेशों में मोटर योग्य सड़कें बनेंगी। यह अनुमान है कि 1959-65 में पिछले सात वर्षों [1952-1958] से 180% अधिक मोटर योग्य सड़कें बनेंगी।

परिशिष्ट २

रूस में सामाजिक सुरक्षा

[Social Security System in Russia]

सोवियत संघ का संविधान [1936] संसार का अकेला संविधान है जिसमें सामाजिक सुरक्षा को नागरिकों का आधारभूत अधिकार माना गया है। धारा 120 के अनुसार नागरिकों को वृद्धावस्था, बीमारी तथा कार्य-शक्ति के हानि की स्थिति में आर्थिक सुरक्षा का अधिकार है। इसमें सन्देह नहीं कि सैद्धान्तिक घोषणा तथा वास्तविक प्रतिपादन में बहुत बड़ी दूरी हो सकती है। समय के साथ रूस ने इस दूरी को कम करने का लगातार प्रयत्न जारी रखा है। आरम्भ से ही इस दिशा में लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ था। लेनिन ने कहा था कि एक बर्बाद देश की प्रथम आवश्यकता है कि मजदूर की रक्षा की जाय। यदि वह बच जाय, तो सभी कुछ पुनः प्राप्त किया जा सकता है। नागरिकों को समाज की ओर से बहुमुखी सेवाएँ मिलती हैं। स्पष्ट प्रयत्न इस बात का प्रतीत होता है कि सहानुभूतिपूर्ण सहायता का राजकीय सहारा जीवन की लगभग हर विषम एवं विपरीत परिस्थिति में उपलब्ध रहे। रूस की विशिष्ट राजनैतिक तथा सामाजिक भूमिका के कारण सामाजिक सुरक्षा ने जो रूप धारण किया है वह अपने तरह का निराला है। सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के तीन मुख्य भाग किये गये हैं : स्वास्थ्य सेवाएँ; सामाजिक पोषण; सामाजिक बीमा।

स्वास्थ्य सेवाएँ

सोवियत जन-स्वास्थ्य सेवाएँ सम्पूर्ण देश के लिये एक वृहत् योजना के अंतर्गत दी जाती हैं। चिकित्सा विज्ञान [Medical Science] के सभी पहलू इसी में सम्मिलित होते हैं। जन-स्वास्थ्य मन्त्रालय [Ministry of Public Health of the U S S R] के सचालन में हर एक राज्य, क्षेत्र, जिला और शहरों में जन-स्वास्थ्य विभाग हैं। कुछ मन्त्रालयों की अपनी निजी स्वास्थ्य सेवाएँ चलती हैं जैसे सुरक्षा, रेलवे तथा अन्तर्देशीय मन्त्रालय। इन सेवाओं का पूर्ण व्यय केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के बजट से होता है। इसकी वृद्धि से इन सेवाओं के प्रसार का अनुमान लगाया जा सकता है :

रूस का जन स्वास्थ्य बजट [1]

वर्ष	मिलियन रूबल
1928	661
1938	9,433
1955	30,300
1956	35,500
1957	37,900

हर प्रकार की सेवाएँ निःशुल्क दी जाती है। सरकारी दुकानों से निश्चित मूल्य पर दवाइयाँ मिलती है। अस्पतालो मे दवाएँ मुफ्त दी जाती है।

स्वास्थ्य सेवाओं के दो अङ्ग हैं—रोग-रोधक [Prophylactic] तथा चिकित्सा [Treatment] सेवाएँ। यह शहर तथा ग्रामीण क्षेत्र मे काफी विस्तृत रूप मे सङ्गठित की गई है। अस्पतालो की सुविधा शहर, क्षेत्र [Region] तथा जिला मे उपलब्ध है। आम अस्पतालो मे अनेको विभाग होते है। सीमित रूप से लगभग हर प्रकार की चिकित्सा इनमे की जाती है। विशेषज्ञ अस्पतालो मे किसी एक प्रकार के रोग की उच्चतम चिकित्सा का प्रबन्ध रहता है जैसे सक्रामक रोग, मानसिक रोग, मातृत्व, बच्चो के रोग का अस्पताल। 1947 के पुनर्सङ्गठन के पहले भर्ती न होने वाले रोगियो [Out-door Patients] के लिये अलग अस्पताल थे किन्तु उस समय से दोनो प्रकार के रोगी [Out-door and in-door Patients] को एक स्थान पर ही देखा जाता है।

प्रत्येक शहर को चिकित्सा-क्षेत्रो [Medical Areas] मे विभाजित करके उनकी देख-रेख मे लगभग 4,000 व्यक्ति रखे जाते हैं। क्षेत्रीय अस्पताल में प्रायः हर प्रकार के विशेषज्ञ नियुक्त होते है। औद्योगिक उद्यमो मे चिकित्सा सेवाओ के समुचित प्रबन्ध पर जोर दिया जाता है। हर कारखाने में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र का सचालन एक डाक्टर या उसका सहकारी करता है। मामूली तौर पर 1,500 मजदूरो के लिये एक चिकित्सा केन्द्र, खान, रसायन और पेट्रोल उधोग में 500 मजदूरो के लिये एक चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था है। औद्योगिक बीमारी की रोक-थाम करने मे इन्होने अत्यन्त सराहनीय कार्य किया। जनता के स्वास्थ्य की निरन्तर देख-रेख के लिये एक विशेष पद्धति [Dispensarisation] अपनाई गई। हर व्यक्ति को एक बहुमुखी चिकित्सालय

[1] U S S R Reference Book, p 163.

[Polyclinic] से सम्बन्धित रहना पडता है। यहाँ उनकी सामयिक जॉच होती रहती है।

ग्रामीण क्षेत्र मे चिकित्सा सेवाएँ पहुँचाने मे काफी प्रगति हुई। 1913 मे कुल 4,500 ग्रामीण चिकित्सा केन्द्र थे। 1955 तक 65,900 केन्द्र काम कर रहे थे। प्रत्येक जिले मे एक केन्द्रीय अस्पताल होता है। इसके सचालन मे पूरे क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाएँ कार्यान्वित होती है। इनके अतिरिक्त सामुदायिक फार्म, मशीन-ट्रेक्टर स्टेशन, राजकीय फार्म इत्यादि पर चिकित्सा केन्द्र स्थापित हैं। 1955 मे लगभग 12,000 ग्रामीण अस्पताल और 10,000 सामुदायिक फार्म के मातृत्व गृह [Maternity homes] थे। सफाई द्वारा स्वास्थ्य रक्षा, संक्रामक रोगो की रोक-थाम, माँ-बच्चो की देख-रेख, स्वास्थ्य सुधारने के लिये सेनीटोरियम व स्वास्थ्य केन्द्र तथा चिकित्सको की शिक्षा का प्रबन्ध स्वास्थ्य सेवा मे ही सम्मिलित किया जाता है।

सामाजिक पोषण [Social Maintenance]

सामाजिक पोषण पेन्शन की तरह मिलता है। प्रबन्ध की दृष्टि से पेन्शन दो विभागो मे रक्खी गई है जो व्यक्ति प्रासंवदिक सेवा [Contract of Service] मे काम करते है उन्हे पेंन्शन सामाजिक बीमा द्वारा दी जाती है; जो व्यक्ति किसी प्रसंविदा के अतर्गत काम नही करते, उनके लिये राज्य की ओर से निर्वाह के साधन दिये जाते हैं। सामाजिक पोषण मे द्राविक सहायता [Monetary assistance] के साथ-साथ अन्य सेवाएँ भी मिलती है। इनमे वृद्ध व्यक्तियो के विश्राम-गृह, पंगु तथा अन्य लाचार व्यक्तियो के लिये निर्वाह और प्रशिक्षण केन्द्र मुख्य है। राज्य व्यय का पूर्ण भार स्वयं वहन करता है। सामाजिक पोषण पानेवालो पर किसी प्रकार का राज्य-कर नहीं लगता। यह सहायताएँ कई वर्गो के व्यक्तियो को प्राप्त हैं : [1] वैतनिक काम करने वाले, [2] सैनिक, [3] उच्च या विशेषज्ञ संस्थाओ मे पढने वाले विद्यार्थी, [4] अन्य नागरिक जो राज्य अथवा सार्वजनिक कर्तव्य के पालन मे पगु हो गये हो, और [5] इन सभी व्यक्तियो के परिवार का निर्वाह भी किया जायगा यदि उपरोक्त नागरिक अपने परिवारो के पोषक [Bread winner] थे। इस प्रकार सामाजिक पोषण सेवाओं के कई रूप बन गये। वृद्धावस्था पेन्शन [Old age pension], असमर्थता पेन्शन [Disability pension], तथा इनके परिवारो को मिलने वाली पेन्शन [Loss-of-bread-winner pension]

वृद्धावस्था की पेन्शन का आरम्भ सोवियत सघ मे 1927 से हुआ। उस समय यह केवल चन्द उद्योगो मे लागू की गई। 1929 मे इसका क्षेत्र बढ़ाकर सारे मजदूरों [Wage-earners] तक पहुँचाया गया। द्वितीय योजनाओं की सफलता के साथ

इनमें पुनः विस्तार दिखलाई पड़ा। 1937 तक सभी वैतनिक कर्मचारियों को इस सुविधा का लाभ प्राप्त हुआ। आजकल कुछ अस्थायी तथा मौसमी [Seasonal] मजदूरों को छोड़कर अन्य सभी प्रासम्बद्धिक काम करनेवालों को जीवन भर के लिये वृद्धावस्था पेन्शन दी जाती है। जुलाई 1956 में पेन्शन अधिनियम में परिवर्तन किये गये जिस कारण इसके खर्च में करीब $\frac{1}{3}$ की वृद्धि हुई। जनवरी 1957 के लगभग 1,60,00 000 व्यक्ति पेन्शन पा रहे थे। सोवियत पेन्शन प्रणाली की एक विशेषता यह है कि इसकी प्राप्ति एक निश्चित अवधि तक काम करनेवालों को ही होती है। पुरुष कर्मचारियों को 60 वर्ष और स्त्रियों को 55 वर्ष की उम्र में पेन्शन मिलती है यदि उस समय तक इन्होंने कम से कम 25 साल और 20 साल का कार्य-काल क्रमशः पूरा कर लिया हो। कुछ विशेष कठिन और खतरनाक क्षेत्रों में काम करनेवाले व्यक्तियों को पेन्शन जल्दी मिलती है—पुरुषों को 50 वर्ष और स्त्रियों को 45 वर्ष की उम्र में, यदि उस समय तक इन्होंने कम से कम 20 साल और 15 साल का कार्य-काल पूरा किया हो। जिन स्त्रियों के पाँच या उससे अधिक बच्चे हों [और वे आठ वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके हों] तो उन्हें 50 वर्ष की आयु में पेन्शन मिलेगी, यदि उस समय तक उनका कार्य-काल कम से कम 15 साल हो।

निम्न वेतन पानेवाले कर्मचारियों की पेन्शन उनके मासिक वेतन के बराबर होती है। अन्य व्यक्तियों के लिये इसकी मात्रा उनके मासिक वेतन का 100 से 50% तक हो सकता है। किसी भी दशा में यह 300 रूबल प्रतिमाह से कम और 1200 रूबल प्रतिमाह से अधिक नहीं होगा। जिन व्यक्तियों का कार्य-काल 15 वर्ष से अधिक हो चुका है और उनके परिवार में पंगु-आश्रित [Non-able-bodied dependents] हों तो उन्हें पेन्शन के अलावा और सहायता दी जाती है। सातवीं योजना के अनुसार 1963 तक कम से कम पेन्शन की मात्रा शहरों में 300 रूबल से बढ़ाकर 400 रूबल कर दी जायगी। 1966 में यह संख्या 450 से 500 रूबल प्रतिमाह तक पहुँचाने का विचार है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वालों को वर्तमान 255 रूबल के स्थान पर 340 रूबल प्रतिमाह देने का प्रयत्न हो रहा। जिन वृद्ध व्यक्तियों की देख-रेख करनेवाला कोई नहीं होता, उनके लिये विशेष निवास-स्थान का प्रबन्ध रहता है।

असमर्थता पेन्शन [Disability pension] उन व्यक्तियों को दी जाती है जिनकी कार्यक्षमता काम करते समय चोट लगने से या किसी औद्योगिक बीमारी से नष्ट हो गई हो। यह सहायता अन्य बीमारियों की अवस्था में भी मिलती है यदि मजदूर ने कम से कम कार्य-काल की अवधि पूरी कर ली है। इस वर्ग के पेन्शन की मात्रा कम से कम 210 से अधिक से अधिक 1,200 रूबल प्रतिमाह होती है। जिन व्यक्तियों की कार्य-

क्षमता पूरी तरह नष्ट नहीं हुई है उन्हें कुछ न कुछ काम करने के लिये उत्साहित किया जाता है। इस प्रकार होनेवाली आय पेन्शन के अतिरिक्त होती है।

इनके परिवारों को मिलने वाली पेन्शन [Loss-of-bread-winner pension] केवल उन सदस्यों को दी जाती है जो स्वयं कार्य नहीं कर सकते। इन पेन्शन की मात्रा परिवार के आश्रित सदस्यों पर निर्भर करती है। कम से कम 160 से 300 रूबल और अधिक से अधिक 480 से 1,200 रूबल प्रतिमाह तक दिया जाता है। कानून के अनुसार सेना के किसी भी पद पर काम करने वाले व्यक्ति और उनके परिवारों को इस पेन्शन का लाभ मिलेगा।

सामाजिक बीमा [Social Insurance]

सामाजिक बीमा का विस्तार सोवियत सरकार की स्थापना के बाद आरम्भ हुआ। मजदूरों की असतुष्टि तथा माँगों को शान्त करने के लिये जार सरकार ने 1912 में सामाजिक बीमा प्रणाली का सूत्रपात किया था। बीमारी तथा चोट लगने की परिस्थिति में मजदूरों को सहायता देने का प्रयत्न किया गया। सोवियत सामाजिक बीमा को तीन हिस्सों में रक्खा जा सकता है—[1] प्रसविदा के अनुसार काम करने वालों के लिये अनिवार्य राजकीय बीमा, [2] बिना प्रसविदा के काम करने वाले व्यक्तियों के लिये ऐच्छिक आपसी सहायता समितियाँ, तथा [3] इन दोनों वर्गों में न आने वालों के लिये राज्य से प्राप्त सहायता।

अनिवार्य सामाजिक बीमा

क्रान्ति के बाद तुरन्त इस दिशा में नये कानून बने। नवम्बर-दिसम्बर 1917 में नये सिद्धान्तों का समावेश हुआ। इसका क्षेत्र सभी मजदूर तथा कर्मचारियों तक बढ़ा दिया गया। उन हर परिस्थितियों में रक्षा करने का प्रयत्न किया गया जिनमें विभिन्न कारणों से नागरिक की कार्य शक्ति [Capacity to work] नष्ट हो जाती है। इनमें बेकारी [unemployment] का विशेष स्थान था। काम करते समय पंगु होने पर वेतन के बराबर सहायता का विधान बना। बीमा का प्रबन्ध बीमादारों [Insured persons] को सौंपा गया जिससे मालिकों द्वारा गड़बड़ी करने का पुराना डर समाप्त हो जाय। मजदूर सरकार ने अपनी सहानुभूति तथा सद्भावना सिद्ध करने के लिये सामाजिक बीमा का पूरा भार प्रत्यक्ष रूप से कारखानों पर रक्खा। वास्तविकता में कारखानों की समस्त पूँजी राज्य देता था। इस तरह बीमा का भार भी राज्य के ऊपर ही पड़ता था। क्रान्ति के बाद की अशान्ति, अव्यवस्था व अराजकता में यह प्रयास केवल कानून बन कर रह गये। इनको लागू न किया जा सका। कुछ स्थानों पर किया गया प्रयोग असंगठन के कारण बहुत सफल न रहा।

युद्धकालीन साम्यवाद की समाप्ति पर बीमा की ओर फिर ध्यान दिया गया नवीन आर्थिक नीति के आरम्भ मे एक कानून बना। इसका उद्देश्य 1917 के राजाज्ञाओ को सुचारु रूप से कार्यान्वित करना था। यही कानून 1922 के प्रसिद्ध 'श्रम नियम' [Labour Code] मे सम्मिलित कर लिया गया। इसके अनुसार वैतनिक वृत्ति [paid employment] के समस्त कर्मचारियो को बीमा सुरक्षा मिली—जैसे, राजकीय मजदूर व कर्मचारी, व्यक्तिगत क्षेत्र में काम करने वाले तथा घरेलू नौकर। बेकारी, बुढापा, पगु होना, शारीरिक आघात, बीमारी, कर्त्ता [bread winner] की मृत्यु, और स्त्रियो के लिये मातृत्व काल की अवधि मे रक्षा प्राप्त की जायगी। इस सम्बन्ध मे कार्य की श्रेणी तथा नौकरी की अवधि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यह प्रतिबन्ध बाद मे सामने आये। बीमा रक्षा दो रूपो मे मिलती है—आर्थिक तथा अनार्थिक। निःशुल्क चिकित्सा, विशेष प्रकार के स्वास्थ्य सुधार- केन्द्रो मे रहने की सुविधा, बच्चो की देखभाल की सस्थाऍ तथा अन्य प्रकार की सामाजिक एव सास्कृतिक सेवाऍ अनार्थिक सहायता के मुख्य तरीके है।

1922 के 'श्रम नियम' के अनुसार सामाजिक बीमा का प्रबन्ध श्रमिक सघ [Trade Unions] के हाथो मे देने के लिये कहा गया। किन्तु श्रमिक सघो का अधिकार, कार्य क्षेत्र, व राज्य से सम्बन्ध भीषण राजनैतिक तनातनी का कारण बना था जिससे इस दिशा की प्रगति अस्पष्ट बनी रही। 1930 तक स्तालिन का प्रभुत्व स्थापित होने पर श्रमिक सघ और राज्य का लगभग पूर्ण विलयन कर दिया गया। यह सघ मजदूरो के स्वतन्त्र नेतृत्व के स्थान पर राजकीय अनुशासन लागू करने की सस्थाऍ बन गए। 1933 मे, श्रमिक सघ श्रमिक मत्रालय का स्थान वैधानिक रूप मे पा चुके थे। इसी समय से इनके अस्तित्व का एकमात्र कारण सामाजिक बीमा का प्रबन्ध बना।[1] सामाजिक बीमा सम्बन्धित सभी बातो का आम सचालन, बीमा बजट तैयार करना और बीमा धन की मात्रा तथा दर निश्चित करना श्रमिक सघ का कार्य है। इसके लिये अखिल-सघीय केन्द्रीय श्रमिक सङ्घ समिति [All-Union Central Council of Trade Unions or AUCCTU] अपने बीमा विभाग द्वारा देश मे इन सेवाओ का सचालन तथा निर्देशन करती है। 1937 से हर कारखानो मे सामाजिक बीमा प्रबन्ध के लिये एक निर्वाचित बीमा समिति बनी। उस समय तक यह काम पूरी तरह कारखाना श्रमिक सङ्घ समिति निजी रूप से करती थी। इस सुधार का उद्देश्य बीमादारो [insured persons] द्वारा स्वयं ही बीमा सुरक्षा को चलाना था।

---

1 Issac Deutscher Soviet Trade Unions, p 116

...e Dobb in "Organised Labour in Four Continents" Ed. H A Marquand, pp 311-312

सोवियत रूस के सामाजिक बीमा सगठन में कुछ बाते विशेष उल्लेखनीय है। प्रथम] बीमा द्वारा मिलने वाली सहायता की दर व मात्रा केवल परिस्थिति अथवा घटना पर निर्भर नही करती। इसको प्राप्त करने के लिये एक निश्चित अवधि तक काम करना जरूरी है। 1938 तक कम से कम 3 साल तक की नौकरी करना आवश्यक था। इसके बाद से अवधि को बढा कर 6 साल कर दिया गया। द्वितीय] ऊँचे दर पर सहायता प्राप्त करने के लिये एक ही कारखाने मे लगातार किये गये काम की अधिक मान्यता दी जाती है। तृतीय] पूरे दर पर बीमा लाभ केवल श्रमिक सङ्घ के सदस्यों को दिया जायगा। गैर-सदस्यों को उनके वेतन का कुल 50% ही सहायता की तरह मिल सकता है।[1] चतुर्थ] सामाजिक सेवाओं को लाभ की लालच उत्पादकता बढ़ाने मे विशेष प्रोत्साहन की तरह इस्तेमाल की जाती है। स्ताखेनोवाइट मजदूरों को बीमा के अन्तर्गत अधिक सहूलियतें प्राप्त है। पचम] मजदूर तथा कर्मचारी बीमा के लिये कोई चन्दा नही देते। इसका भार कारखाना उठाता है। कुल वेतन [gross wage] का एक प्रतिशत के रूप मे यह लिया जाता है। जोखिम के अनुसार विभिन्न कारखाने 4 से 10 प्रतिशत तक देते है। औसत लगभग $6\frac{1}{2}\%$ पडता है।[2] अन्य प्रकार के मजदूरों [व्यक्तिगत उत्पादकों, तथा घरो मे काम करने वाले] के लिये उनके मालिक अपने अश का बीमा-चन्दा सरकारी हिसाब मे जमा करा देते है। षष्टम] राज्य द्वारा आयोजित बीमा मे वे व्यक्ति नही आते जो प्रसविदा के अन्दर काम नहीं करते जैसे सामुदायिक किसान, निजी उत्पादक तथा स्वतन्त्र काम करने वाले मजदूर जैसे बढ़ई, मोची, लुहार इत्यादि। इन वर्ग के लोगों को ऐच्छिक आपसी सहायता समिति [mutual aid societies] तथा सहकारी रूप से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। सप्तम] बेकारी बीमा [unemployment insurance] 1930 मे उठा दिया गया। प्रथम योजना द्वारा उत्पन्न नये कामो को देखते हुए, सरकारी तौर पर रूस से बेकारी की समस्या की समाप्ति घोषित की गई। सोवियत सङ्घ के अतिरिक्त कोई ऐसा देश नही है जहाँ इतने जटिल प्रश्न का इतना सहज हल निकला हो। अष्टम] प्रत्येक वैतनिक कर्मचारी बीमा का सदस्य होता है। मजदूर से लेकर इञ्जीनियर व डाइरेक्टर चाहे उनकी आय कितनी भी हो, एक प्रकार के बीमा नियमो से सञ्चालित किये जाते है।

ऐच्छिक सामाजिक बीमा

अनिवार्य बीमा के अतिरिक्त बिना प्रसविदा के काम करने वाले व्यक्तियों [people not under contract of service] के लिये सामाजिक बीमा का

[1] H W Laidler Social Economic Movements p 409

[2] Maurice Dobb, Op Cit p 480

लाभ अपने नीजी प्रयत्नों से ही प्राप्त हो सकता है। इस वर्ग में सामुदायिक किसान, व्यक्तिगत फार्म के स्वामी और उनके परिवार तथा अनियमित रूप से काम करने वाले व्यक्ति, जैसे, बढ़ई, लुहार, मिस्त्री इत्यादि आते है। इन लोगों की इच्छा हो तो आपसी सहायता समितियाँ संगठित करके सामाजिक बीमा की सुविधाएँ प्राप्त कर सकते है। यदि ऐसा करना निश्चित किया गया तो इन समितियों का निर्देशन समाज कल्याण मन्त्रालय करना स्वीकार कर लेता है। इनके साधनों के सूत्र इस प्रकार है : [1] सदस्यों द्वारा दिया गया अंशदान अथवा चन्दा; [2] सामुदायिक फार्म मतदान द्वारा इन्हे दी जाने वाली सहायता निश्चित करता है। इसकी मात्रा सामान्यतः वार्षिक फसल का दो से चार प्रतिशत तक होती है और वह द्रव्य तथा वस्तु दोनों में दिया जाता है; [3] राज्य से भी इन समितियों के सहायतार्थ अनुदान मिलता है। इन साधनों से आपसी सहायता समितियाँ अपने सदस्यों को लगभग वह सभी सेवाएँ देती है जो अनिवार्य राजकीय सामाजिक बीमा के अन्तर्गत प्राप्त होती है।

अन्य सामाजिक बीमा

जो व्यक्ति उपरोक्त दोनों प्रकार के सामाजिक बीमा मे नहीं आ पाते उनके लिये राष्ट्रीय सहायता समाज कल्याण मन्त्रालय के तत्वाधान में संगठित किया जाता है। इसके द्वारा इन व्यक्तियों को निःशुल्क वृद्धावस्था पेन्शन मिलती है। यदि किसी कारण से वह व्यक्ति पगु हो जाते है और जीविकोपार्जन के लिये कोई काम नहीं कर पाते, तो इन्हें विशेष सस्थाओं [invalid homes] में रखने का प्रबन्ध होता है। इसके लिये प्रार्थी को मन्त्रालय में अर्जी देनी पड़ती है। मामूली तौर पर इस सहायता का क्षेत्र समिति है क्योंकि बहुत कम व्यक्ति इसके अन्तर्गत आते है।

सोवियत सामाजिक सुरक्षा की विवेचना

इस विषय पर मतभेद है कि सोवियत सामाजिक सुरक्षा का कितना अंश वास्तविक है और कितना केवल प्रचार का साधन है। सोवियत अर्थव्यवस्था के विद्यार्थियों ने एक-दूसरे के विपरीत निष्कर्ष निकालकर परिस्थिति की उचित विवेचना अत्यन्त कठिन बना दिया है। राजनैतिक दृष्टिकोण और सैद्धान्तिक पक्षपात सोवियत अर्थव्यवस्था के अध्ययन मे इतना अधिक पाया जाता है कि निष्पक्ष रूप से सत्यता का अनुमान नहीं हो पाता। श्री और श्रीमती सिडनी वेब के अनुसार रूस में असीमित तथा सर्वव्यापी सामूहिक सुरक्षा मजदूर वर्ग को मिली है। जनता मे सोवियत नागरिकता के प्रति गर्व तथा राज्य के साथ साझेदारी की भावना उत्पन्न करने का यह मुख्य साधन है।[1] इसके

---

[1] Soviet Communism, p 863

विपरीत डी वासीली यह मानते हैं कि सर्वशक्तिशाली राज्य अपने निर्मम शोषण के बदले में सामाजिक सुरक्षा खैरात की तरह देता है।[1] इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण दिये जा सकते है।

सोवियत सुरक्षा की आलोचना में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें मिलेंगी :—

[1] रूस में सामाजिक सुरक्षा का अर्थ एक नये ढंग से लगाया गया। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से मिलने वाली सभी राजकीय सेवाएँ इसमें शामिल कर ली गई है। बीमारी, दुर्घटना, बुढ़ापा, मृत्यु, मातृत्व, स्वास्थ्य सेवाओं के साथ साथ सामाजिक और सांस्कृतिक उद्देश्य से मिलने वाली हरएक राजकीय सुविधा इसमें सम्मिलित है जैसे शिक्षा, बच्चों की देखभाल, छात्रवृत्ति, गृह निर्माण, सार्वजनिक बागीचे, खेलकूद के स्थान [Stadia] इत्यादि। इस बात का विरोध इसलिये किया जाता है कि सामाजिक सुरक्षा, समाज कल्याण तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम में भेद करने से साधनों का बँटवारा और सुविधाओं का निर्विवाद लेखा तैयार करना सम्भव हो सकता है। अन्यथा यह पता नहीं लगता कि व्यय को किस क्रम से अलग-अलग मदों पर बाँटा गया।

[2] यह विश्वास काफी विस्तृत है कि उद्योग से कुल वेतन का जितना प्रतिशत सामाजिक बीमा के लिये जाता है उसका कुछ अंश ही इस काम पर खर्च होता है। सामाजिक बीमा को राज्य ने प्रचार और अप्रत्यक्ष कर का साधन बना लिया है।

[3] नियमों के अनुसार कई परिस्थितियों में मजदूरों को अपने मासिक वेतन के बराबर सहायता प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है। इसमें सन्देह है कि वास्तविकता में ऐसा होता है। प्रचलित धारणा है कि सहायताएँ तथा सुविधाएँ नियम तथा परिस्थिति के अनुसार नहीं मिलतीं। इनकी मात्रा पर मजदूरों के सामाजिक महत्व [Social worth] का गहरा प्रभाव होता है। सामाजिक महत्व अधिक उत्पादन, श्रमिक संघ की सदस्यता, साम्यवादी संघ की सदस्यता, राजनैतिक कार्य तथा राज्य की विशेष सेवाओं से आँका जाता है।

[4] सामाजिक सुरक्षा का उद्देश्य विपरीत परिस्थितियों में सहारा देने के अतिरिक्त, श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि, अच्छा साम्यवादी बनाने का प्रयत्न और राजकीय अनुशासन नियमों का कठोर पालन भी है। इस प्रकार इसे सामान्य अर्थ में केवल सामाजिक सुरक्षा नहीं कहा जा सकता।

[5] समान वेतन के सिद्धान्त का सोवियत संघ ने काफी पहले ही परित्याग कर दिया था। असमान वेतन के साथ सामाजिक बीमा की सुरक्षा भी असमान मात्रा में दी जाती है। सभी नागरिकों को एक-सी सुरक्षा पाने का एक-सा अधिकार होना चाहिये।

1 N de Basily, Russia Under Soviet Rule, p 382

[6] समाज द्वारा मिलने वाली सुविधाओं की प्राप्ति पर व्यक्तिगत पद, प्रतिष्ठा व प्रभाव का अनावश्यक असर देखा जाता है। इस वर्ग के थोडे से लोगों के लिये उच्च कोटि की सुविधा पाना सुलभ है। सामान्य मजदूर को या तो यह सब मिल नहीं पाता, या बहुत मामूली तरह की सेवाएँ मिलती हैं।[1] इसमें सदेह नही कि युद्ध के पहले से आजकल हालते काफी सुधर गई है। फिर भी इस प्रकार की विचारधारा बनी हुई हैं।

[7] 1931 मे सुरक्षा सुविधाओं की मात्रा का निर्णय आधार कार्य-काल की अवधि को बनाया गया। एक ही स्थान पर लगातार काम करने वालो को विशेष मान्यता मिली। इसका कारण मजदूरो के प्रवास की आदत को रोकना था। किन्तु वास्तविकता मे इस प्रतिबध से [काफी समय तक के लिये] मजदूरों का बहुत बडा भाग बीमारी, दुर्घटना इत्यादि मे मदद से वचित हो गया।[2] इतना ही नहीं, इस प्रतिबध ने अपने पसद के अनुसार धधा खोजने की स्वतत्रता को अत्यत सीमित बना दिया।

उपरोक्त चित्र मे सतुलन लाने के लिए इसके दूसरे पहलू पर भी दृष्टिपात करना होगा। किसी भी अच्छी सामाजिक सुरक्षा पद्धति मे कुछ विशेष गुणो का होना आवश्यक है। प्रथम, शरीर तथा काम के कारण उत्पन्न सभी विपरीत परिस्थितियो मे रक्षा करना इसका उद्देश्य होना चाहिए। सोवियत सघ ने समय के साथ लगभग सभी प्रकार की सुरक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध कर लिया है—जन्म, शिक्षा, रोग, दुर्घटना, बुढापा, मृत्यु तथा अन्य सबन्धित स्थितियो तक राजकीय सुरक्षा का विस्तार हो चुका है। यह व्यापकता [Compethensiveness] अत्यन्त सराहनीय है। द्वितीय, सामाजिक सुरक्षा की समरूप योजना [unified scheme] की आवश्यकता तथा लाभ सर्व-विदित है। अखिल सघीय केन्द्रीय श्रमिक सघ समिति [A. U C C T U.] के साथ सोवियत सघ के समाज-कल्याण मत्रालय [Ministry of Social Welfare] का परोक्ष सम्बन्ध स्थापित करके उत्कृष्ट समरूपता उत्पन्न की गई है। तृतीय, विस्तार [Coverage] की दृष्टि से भी लगभग सपूर्ण जन-सख्या किसी न किसी रूप मे सुरक्षा के अन्दर आ जाती है। चतुर्थ, इन व्यापक सेवाओं के बदले मे प्रत्यक्ष तरीके से जनता को कुछ नहीं देना पडता। अधिकतर मालिक वर्ग [employers] तथा सामुदायिक फार्म इसका भार उठाते हैं। कर्मचारी वर्ग पर इसका बहुत सुन्दर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। पचम, यदि सामाजिक सुरक्षा की ओर राज्य की जागरुकता देखी जाय तो सोवियत सरकार के कर्तव्यनिष्ठा का अनुमान लगता है। राजकीय बजट तथा उद्यम कोष [enterprise funds] से दी जाने वाली सुविधाएँ तथा नगद भुगतान की वृद्धि अत्यन्त आकर्षक है।

---

[1] Andrew Smith I was a Soviet Worker 1936, p p 214-226

[2] Yugow Op Cit pp. 166-167

सुरक्षा सुविधाएँ तथा भुगतान[1]

वर्ष	000 मिलियन रूबल में
1940	2
1950	122
1955	154
1956	169
1957	192[2]

चिकित्सा सेवाओं में स्थिति अस्पताल के विकास से आँकी जा सकती है। इन आँकड़ों में फौजी अस्पताल शामिल नहीं हैं :

अस्पताल में बिस्तर-संख्या [3]

वर्ष	'000 में
1913	207
1928	247
1940	791
1950	1,011
1955	1,289
1956	1,360

[1] USSR Reference Book, p. 153

[2] अनुमानित

[3] Ibid p 165

विभिन्न सेवाओं में वृद्धि का क्रम इस प्रकार है [1]

सेवाएँ	मिलियन रूबल में	
	1956	1957
शिक्षा	73,100	78,900
स्वास्थ्य सेवा	35,500	37,900
राजकीय सामाजिक बीमा	18,600	20,900
सामाजिक पोषण	31,400	45,400

अन्त में, प्रचार तथा सामाजिक सुरक्षा कोष के अन्य प्रयोग को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि सोवियत सुरक्षा संगठन तीव्र प्रगति कर रहा है। संगठन, प्रबन्ध तथा प्रयोग की कमजोरियाँ समय के साथ कम होती जायँगी। जिस महत्व तथा उत्साह से सोवियत राज्य ने सामाजिक सुरक्षा को अपनाया है वह केवल प्रशसनीय ही नहीं, अनुकरणीय है।

—०—